परिमार्जित संस्करण

बुद्ध की तलाश में

चीनी बौद्ध-यात्री फाह्यान की भारत यात्रा

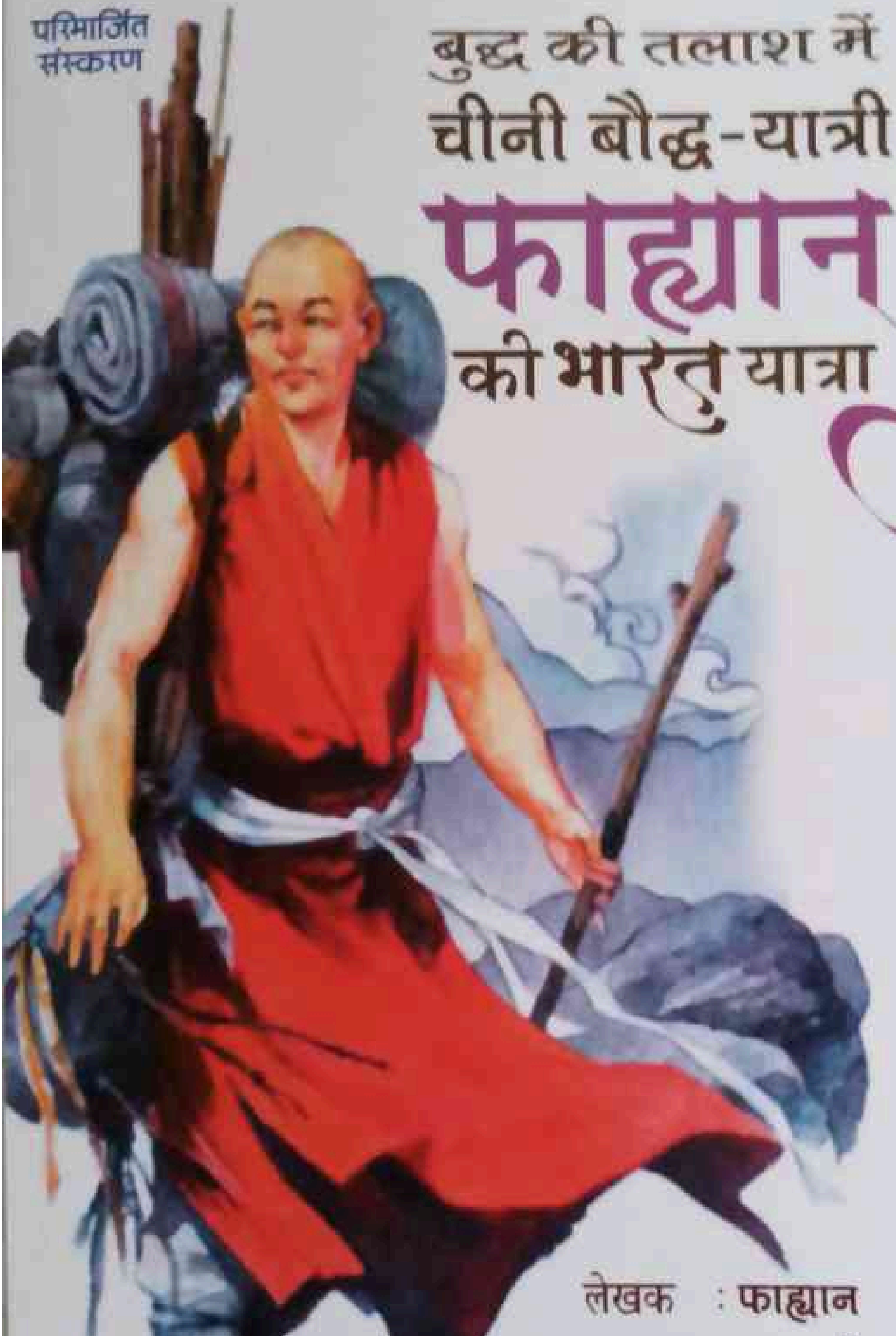

लेखक : फाह्यान

अनुवाद : जगन्मोहन वर्म्मा

संपादक : शांति स्वरूप बौद्ध

प्राक्कथन

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह

सम्यक प्रकाशन

बुद्ध की तलाश में
चीनी बौद्ध-यात्री

फाह्यान
की भारत यात्रा

(ईसवी 399-414)

(परिमार्जित संस्करण)

मूल लेखक
भिक्खु फाह्यान

अनुवादक
जगन्मोहन वर्म्मा

संपादक
बौद्धाचार्य शान्ति स्वरूप बौद्ध

सम्यक प्रकाशन

प्रथम सम्यक संस्करण : 2017 (बुद्धाब्द 2562)
द्वितीय सम्यक संस्करण : 2019 (बुद्धाब्द 2564)
तृतीय सम्यक संस्करण : 2022 (बुद्धाब्द 2567)

ISBN : 978-93-89285-07-9

प्रकाशक : सम्यक प्रकाशन
32/3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली—110063
दूरभाष : 9810249452, 9818390161
Email: hellosamyak1965@gmail.com
Web : www.samyakprakashan.in

© सर्वाधिकार लेखकाधीन

मूल्य : 250 रुपए

अनुवादक : **चीनी बौद्ध-यात्री फाह्यान की भारत यात्रा**
मूल लेखक : भिक्खु फाह्यान
अनुवादक : जगन्मोहन वर्म्मा
संपादक : शान्ति स्वरूप बौद्ध
आवरण : शान्त कला निकेतन
शब्दांकन : संदीप आर्ट एण्ड ग्राफिक्स

मुद्रक : बालाजी ऑफसेट प्रिन्टर्स, नई दिल्ली

समर्पण

यह पुस्तक समर्पित है पुस्तक के मूल लेखक एवं
प्रसिद्ध चीनी बौद्ध-यात्री पूज्य भिक्खु फाह्यान जी के चरणों में जिन्होंने अपनी जान जोखिम में डालकर भारत स्थित बौद्ध तीर्थ स्थलों की यात्रा की और इस यात्रा से संबंधित अपने अनुभवों को चीनी भाषा में लिपिबद्ध करके ऐसा प्रबंध कर दिया कि जब भारत से बौद्ध विलुप्त हो जाए तो इस जैसी पुस्तकों के माध्यम से उसकी पुर्नस्थापना आसानी से हो सकेगी।

आभार

इस पुस्तक के मूल अनुवादक
श्रद्धेय जगन्मोहन वर्म्मा जी
के प्रति आभार व्यक्त करते हुए
यह पुस्तक हम अपने पाठकों
के हाथों में सौंप रहे हैं।

भारत की प्राचीनतम भाषा पालि और संस्कृत से अनुवाद करके किया है। भारत की प्राचीनतम भाषा पालि और संस्कृत से अनुवाद करने के साथ इन भाषाओं में स्वतंत्र ग्रंथ लेखन का कार्य भी कराया गया है।

इसलिए हमारे पास यह प्रामाणिक अनुभव है कि अनुवाद का कार्य करते समय एवं उनका संपादन करते/करवाते समय किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं। जबकि चीनी भाषा दुनिया की सबसे कठिन भाषाओं में शुमार मानी जाती है। चीनी भाषा से हिंदी भाषा में अनुवाद का जटिल कार्य संभव बनाकर माननीय जगन्मोहन वर्म्मा जी ने जिस कालजयी रचना का सृजन किया है, यह कार्य हर दृष्टि से सराहनीय है और अभिनंदनीय है।

हाल ही में हमने इस पुस्तक का एक रिप्रिंट देखा जिसे दिल्ली के ही एक प्रकाशक ने प्रकाशित किया है। इस पुस्तक को देखकर हमें बहुत आश्चर्य हुआ और दुख भी हुआ। इस दुख का कारण कापी राइट का कारण नहीं था, बल्कि यह था कि इस पुस्तक का प्रकाशन प्रथम बार करीब सौ वर्ष पूर्व सन् 1918 में हुआ था। उन दिनों बौद्ध धर्म से संबंधित साहित्य-शब्द और बौद्ध विद्या के विद्वान बहुत कम थे। इसलिए बौद्ध धर्म और दर्शन का भारत की जनता ही नहीं वरन् विद्वानों को भी खास ज्ञान न था। इस प्रकार के अभाव में बौद्धों की शब्दावली से बौद्ध विद्वान तक अनभिज्ञ थे। गाहे-ब-गाहे उनकी रचनाओं में अथवा अनुवादों में ऐसे शब्द अनायास ही आ धमकते थे जो बौद्ध मान्यताओं, अवधारणाओं से मेल नहीं खाते। महत्त्वपूर्ण ग्रंथ होने के बावजूद भी इस ग्रंथ में ऐसे असंगत शब्दों की भरमार है जो बौद्ध मान्यताओं से टकराते हैं। जबकि इस ग्रंथ का अधिकांश भाग बौद्ध इतिहास और पुरातत्व से संबंधित है। यह भी देखने में आया कि अनेक स्थानों पर बौद्ध पारिभाषिक शब्दों की सर्वथा अनुचित व्याख्याएं प्रयुक्त हो गई हैं। इन सब बातों के अतिरिक्त इस बात की भी अनदेखी नहीं की जा सकती की आज से सौ वर्ष पूर्व की वर्णन शैली और भाषा वर्तमान परिवेश में सम्यक परिमार्जन की मांग करती है। इस पुस्तक का रिप्रिंट प्रकाशित करने वाले यदि ये सावधानियां नहीं बरतते हैं तो यह तो प्रकाशन-धर्मिता की घोर उपेक्षा जान पड़ता है जो साहित्यिक अपराध की श्रेणी में भी आता है।

आज भारत का का सामान्य पाठक यह माने बैठा है कि भारत के इतिहास का बौद्ध धर्म के साथ कोई रिश्ता-नाता नहीं है। इस मिथ्या धारणा को आज चीनी यात्रियों के यात्रा विवरण बहुत मजबूती और प्रमाणिकता के साथ धराशायी करते हैं। तमाम चीनी यात्रियों के यात्रा विवरण पूरी ताकत के साथ यह तथ्य स्थापित करते हैं कि भारत वर्ष का गौरवपूर्ण अतीत बौद्धदर्शन और बौद्धधर्म के अलावा कुछ भी नहीं है। इस तथ्य से भारतवर्ष के उन तथाकथित महान इतिहासकारों का झूठ भी पकड़ में जाता है जो गला फाड़-फाड़कर भारत के इतिहास को षड्यंत्रपूर्ण तरीके से बुद्ध और बौद्ध धर्म से बचकर लिखते आए हैं। इस विषय में हम चीनी बौद्ध यात्री फाह्यान के अयोध्या वर्णन का संज्ञान ले सकते हैं। ह्वेनसांग के समय तक बौद्ध धर्म ध्वस्त किया जा चुका था। मगर फिर भी अयोध्या के वर्णन से ईमानदार इतिहासकारों और साहित्यकारों द्वारा सच्चाई जानने के बाद तो दिल दहले बिना नहीं रह सकता।

फाह्यान के अयोध्या के यात्रा विवरण में जो लिखा है, उसे बहुत गंभीरतापूर्वक पढ़ने की जरूरत है।

प्रसिद्ध चीनी बौद्ध यात्री सुएनच्वांग भी बुद्ध दर्शन की खोज में भारत आया था। उसने अयोध्या के बारे में कुछ अधिक विवरण दिया है। सुयेनच्वांग हर्षवर्धन नामक 14वें अध्याय में वे बहुत विस्तारपूर्वक लिख गए हैं। हमारे पाठकों को इस अध्याय का भी बहुत लगन के साथ अध्ययन करना चाहिए।

संस्कृत भाषा को संसार की सबसे प्राचीन यानी पालि-प्रकृत भाषा से भी प्राचीन भाषा बताने वाले भाषाविदों के लिए खुशखबरी है कि किसी भी चीनी यात्री को चौथी शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक, जिस दौरान करीब सौ चीनी यात्री भारत यात्रा पर आए थे, संस्कृत भाषा में कोई भी शिलालेख या धम्मस्तंभ लेख उन्हें नहीं मिला था। इस पुस्तक में कुछ संस्कृत ग्रंथों के नामों का वर्णन जरूर आया है ये वे ग्रंथ हैं जो बौद्ध धर्म के विध्वंस के पश्चात त्रिपिटक को Replace करने के लिए लिखे गए थे। इस वर्णन के पश्चात सुएनच्वांग को डाकुओं द्वारा घेरने और उनकी बलि चढ़ाने का प्रयास करते और फिर उनसे मुक्त होने का रोचक वर्णन दिया गया है।

Xuanzang (600?—64)

'चीनी बौद्ध यात्री सुएनच्वांग की भारत यात्रा' से यहां-वहां ब्राह्मणी ग्रंथों और पात्रों का वर्णन आया है। इससे हमारे विज्ञ पाठकों को भ्रमित होने की जरूरत नहीं है। कारण यह है कि ये वर्णन अनुवादक महोदय ने अपने मत को व्यक्त करते वक्त लिख मारे हैं। पौराणिक संदर्भों को इस प्रकार रखा जाता है ताकि उन्हें बुद्ध से पूर्व का सिद्ध किया जा सके। यह इस देश की असली विरासत को हड़पने का कुत्सित प्रयास भर है। जिसे अब भारत के लोग आहिस्ता-आहिस्ता ही सही, मगर खूब अच्छी तरह समझने लगे हैं।

विद्वान लेखक की इस विलक्षण पुस्तक को तथा उनके हिन्दी अनुवाद को आज के समय में भी प्रासंगिक बनाए रखने के दायित्वबोध के कारण हमें विवश होकर इसे संपादित रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लेना पड़ा है। यह संपादन कार्य कैसा बन पड़ा है, इसका निर्णय तो विषय के पारंगत विद्वान और हमारे सुधी पाठक ही कर पाएंगे। इसी आशा और अपेक्षा के साथ यह पुस्तक संपादित रूप में आपके हाथों में प्रस्तुत है।

इस पुस्तक के द्वितीय संशोधित संस्करण के प्रकाशन के समय वर्तमान जगत के मूर्धन्य पुराविद और भाषा विशेषज्ञ डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह जी की ओर से एक शोधपरक व सारगर्भित प्राक्कथन प्राप्त हुआ, उनके इस विशेष अवदान के लिए हम उनके प्रति मनपूर्वक आभार व्यक्त करते हैं।

आशा है कि हमारे सुधी पाठकगण इस संशोधित संस्करण का पहले से अधिक स्वागत करेंगे और नए-नए विषयों पर प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करने के लिए हमें प्रोत्साहित करेंगे।

॥ भवतु सब्बमंगलं ॥

–शांति स्वरूप बौद्ध

16.07.2019

धम्मचक्कपवत्तनदिवसो

प्राक्कथन :

पुस्तक के बारे में

फाह्यान ने चंद्रगुप्त द्वितीय के राज्य-काल में भारत की यात्रा की थी। अपनी यात्रा में उन्होंने तकरीबन 30 देशों का भ्रमण किया। वे चीनी यात्री थे। उनका जन्म चीन के उयंग नामक स्थान पर हुआ था तथा उनके बचपन का नाम कुङ था। बौद्ध ग्रंथों के गहन अध्ययन एवं बौद्ध-स्थलों को देखने की लालसा से वे चीन से चलकर भारत पहुंचे थे। वे स्थल मार्ग से भारत आए और समुद्री मार्ग से वापस गए।

फाह्यान भारत के बारे में जो समझे तथा देखे, वह उनके यात्रा-विवरण में दर्ज है। यात्रा-विवरण के बारे में जो विवाद है, वह यह है कि उन्होंने यह यात्रा-विवरण अपनी कलम से लिखे या नहीं। जो भी हो, इतना तो तय है कि फाह्यान का यात्रा-विवरण भारत के इतिहास, विशेषकर बौद्ध भारत के इतिहास के लिए बेहद जरूरी सामग्री उपलबध कराता है।

फाह्यान का यात्रा विवरण मूलतः चीनी भाषा में है। इसका बेहतरीन अंग्रेजी अनुवाद जेम्स लेगी महोदय ने किया है। जेम्स लेगी ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में चीनी भाषा और साहित्य के पहले प्रोफेसर थे। ऐसी हालत में यह उम्मीद की जानी चाहिए कि एक चीनी भाषा और साहित्य के प्रोफेसर ने चीनी भाषा में लिखे गए यात्रा-विवरण का अनुवाद अच्छा किया होगा। जेम्स लेगी ने अपने अनूदित ग्रंथ के अंत में यात्रा-विवरण के मूलपाठ भी दिए हैं।

बात 1918 की है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से फाह्यान का हिंदी में यात्रा-विवरण प्रकाशित हुआ। इसके अनुवादक जगन्मोहन वर्म्मा थे। जगन्मोहन वर्म्मा बस्ती जिले के रहने वाले थे। उन्हें अंग्रेजी, हिंदी और उर्दू की अच्छी जानकारी थी। बाद में उन्होंने पालि और प्राकृत का भी अध्ययन किया। कुछ दिनों तक वर्म्मा जी कालाकांकर रियासत में रहे और हिंदुस्तान के संपादन विभाग में काम किया। बाद में वे काशी आए तथा नागरी प्रचारिणी सभा से जुड़ गए। यहीं वे 'हिंदी शब्द सागर' के सहायक संपादक नियुक्त हुए और अंत में काशी में ही चल बसे।

जगन्मोहन वर्म्मा चीनी भाषा से वाकिफ नहीं थे। संयोग से एक चीनी श्रमण जिनका नाम वाङ-हुई था, काशी आए और वर्म्मा जी के सान्निध्य में

प्रकाशकीय (द्वितीय संस्करण का)

कभी-कभी कोई मामूली-सी बात बहुत महान घटना को जन्म देने वाली सिद्ध हो जाती है। मेरी दृष्टि में इस अति महत्त्वपूर्ण ग्रंथ की रचना का कारण भी एक छोटी-सी ही घटना रही है। हुआ यूं कि एक बार कुशीनगर में बर्मी बुद्ध विहार के अध्यक्ष बर्मी मूल के पूज्य भंते चंद्रमणि महाथेरो जी के पास वाङ-हुइ नाम का एक चीनी उपासक आया। वह असंख्य चीनी और तिब्बती यात्रियों की भांति ही भारत में रहकर संस्कृत भाषा का ज्ञान अर्जित करने आया था। भंतेजी ने इसी चीनी शोधार्थी को अपने पूर्व परिचित सम्यक संस्कृत विद्वान जगन्मोहन वर्म्मा जी के पास भेजा। अनुमान है कि इन दिनों जगन्मोहन वर्म्मा जी वाराणसी में अध्यापन कार्य कर रहे थे।

शोधवृत्ति के धनी माननीय जगन्मोहन वर्म्मा जी अपने चीनी शिष्य को संस्कृत भाषा का पाठ पढ़ाते-पढ़ाते स्वस्फूर्त भावना से चीनी भाषा में पारंगत हो गए। इनकी ज्ञान-साधना की महानता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने चीनी भाषा को इतनी दक्षतापूर्वक साध लिया कि वे कम समय में ही चीनी भाषा से इस ग्रंथ का अनुवाद करने में पूर्णता सफल रहे। इतना ही नहीं उन्होंने इस ग्रंथ के अलावा 'चीनी बौद्ध यात्री स्वेनयांग की भारत यात्रा' नाम से एक दूसरा अनुवाद भी प्रकाशित कराया था। हम सम्यक प्रकाशन के ऐसे संचालक हैं, जिनका नाम आंबेडकरी-बौद्ध आंदोलन से संबंधित सभी प्रकाशकों की तुलना में सबसे अधिक अनुवाद कराने वाले संस्थान के रूप में अग्रणी है। हमने न केवल पालि भाषा, संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, बर्मी आदि भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करवाकर प्रकाशित किए हैं। इसके अतिरिक्त हमने हिंदी भाषा से मराठी, गुजराती, पंजाबी, तेलगू, बांगला, असमिया-अरुणाचली, शिंगफो आदि भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं—अंग्रेजी, सिंहली, नेपाली और बर्मी भाषाओं में भी एक सौ के करीब बौद्ध ग्रंथों का अनुवाद प्रकाशित

संस्कृत का अध्ययन करने लगे। वे वर्मा जी के पास अध्ययन के सिलसिले में साल भर से अधिक रहे। वर्मा जी ने उसी चीनी छात्र से चीनी भाषा सीखी जो उनके पास संस्कृत सीखने के लिए आए थे। जब जगन्मोहन वर्म्मा चीनी भाषा के जानकार हुए, तब चीनी यात्रियों के यात्रा-विवरणों का हिंदी भाषा में अनुवाद करने की बात उनके मन में आई। परिणामतः एक दिन वे फाह्यान के यात्रा-विवरण को हिंदी में बखूबी अनुवाद करने में सफल हुए। यही अनुवाद 1918 में नागरी प्रचारिणी सभा से छपा।

जगन्मोहन वर्म्मा मौलिक अनुवाद थे। उन्होंने जेम्स लेगी जी के अंग्रेजी अनुवाद का अंधानुकरण नहीं किया, बल्कि यात्रा-विवरण के मूलपाठ से भी मिलान कर उसका हिंदी में अनुवाद प्रस्तुत किया। मिसाल के तौर पर, जेम्स लेगी ने अपने अंग्रेजी अनुवाद में आले से शांचे की दूरी तीन योजन बताई है, जबकि फाह्यान ने मूलपाठ में यह दूरी दस योजन बताई है। वर्म्मा जी ने जेम्स लेगी की ऐसी अशुद्धियों को मूलपाठ से मिलान कर अपने हिंदी अनुवाद में संशोधित रूप में प्रस्तुत किया। अनेक जगहों पर अपनी मौलिक टिप्पणियां भी दीं। मगर इतना जरूर है कि वर्म्मा जी भी हिंदी अनुवाद में कई जगह हिंदू मानसिकता के शिकार हो गए हैं। मिसाल के तौर पर, वर्मा जी ने जेम्स लेगी के Make offerings का हिंदी अनुवाद पूजा किया है, जबकि बौद्ध धम्म के अनुसार इसे श्रद्धाभाव संप्रेषण होना चाहिए। कारण कि पूजा मूलतः हिंदू धर्म के लिए रूढ़ है।

खुशी की बात है कि फाह्यान के इस यात्रा-विवरण का संपादन शांति स्वरूप बौद्ध ने किया है। वे बौद्ध साहित्य के गंभीर अध्येता और बौद्ध परंपरा के विद्वान भी हैं। पुस्तक के संपादन में उनकी नजर ऐसे स्थलों पर गई है, जहां यात्रा-विवरण का हिंदूकरण हुआ है। हमें आशा है कि बौद्ध नजरिए से संपादित किया गया यह यात्रा-विवरण पाठकों-अध्येताओं के लिए उपयोगी साबित होगा।

–डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह
प्रोफेसर, हिंदी विभाग (स्नातकोत्तर केंद्र)
एस.पी. जैन कॉलेज, सासाराम
(बिहार) 821115

मूल भूमिका

पिछले छह वर्षों की बात है कि एक चीनी श्रमण जिसका नाम वाङ-हुई था, काशी में संस्कृत पढ़ने आया था। श्रद्धेय श्रीचंद्रमणि भिक्खु ने मेरे पास उसे संस्कृत पढ़ने के लिए भेजा। वह मेरे पास साल भर से अधिक रहा। उसे संस्कृत पढ़ाते हुए मैंने चीनी भाषा का अभ्यास करना प्रारंभ किया। पहले तो कुछ उच्चारण करके अभ्यास किया पर जब मैंने देखा कि चीनी भाषा में वर्णक्रम नहीं है, जिससे शब्दों का ठीक उच्चारण हो सके, किंतु प्रत्येक सत्व और भाव के लिए पृथक-पृथक संकेत नियत हैं, तो मैंने उच्चारण को छोड़ दिया और संकेतों का ही अभ्यास करना प्रारंभ किया। इस प्रकार थोड़े समय में जितना अभ्यास कर सका मैंने संकेतों का अभ्यास किया।

चीनी भाषा यद्यपि हमारे पूर्वजों को सुगम रही हो क्योंकि हम देखते हैं कि भारतवर्ष के अनेक बौद्धाचार्यों ने जैसे आचार्य कश्यप मातंग, धर्मरक्षक, कुमार जीव, बुद्धभद्र इत्यादि ने भारतवर्ष से चीन देश में जाकर वहां की भाषा ही का ज्ञान नहीं प्राप्त किया था, किंतु अनेक धर्म-ग्रंथों का अनुवाद भी वहां की भाषा में किया था जिनका मान अब तक वहां के भिक्खुसंघ में है; तो भी वह हमारे लिए एक अद्भुत भाषा है। वहां के शब्द प्रायः सबके सब एकाच हैं, पर लिपि से उनके उच्चारण का कुछ भी न तो संबंध ही है और न लिपि से उनके उच्चारण का ज्ञान ही हो सकता है। उनकी लिपि चैत्रिक है। प्रत्येक भाव और सत्व के लिए पृथक-पृथक संकेत है। ये संकेत चित्रलिपि के विकारभूत हैं। एक ही भाव के लिए चाहे शब्द में भेद भले ही पड़े पर संकेत में भेद नहीं है।

इन कठिनाइयों पर भी मुझसे जहां तक हो सका मैंने अभ्यास किया और इच्छा थी कि यदि चीनी भाषा का कोई कोश मिल जाता तो और अभ्यास बढ़ा लेता। पर दुर्भाग्यवश कोई ऐसा कोश नहीं मिल सका।

जिस समय वाङ-हुई मेरे पास थे उस समय मैंने यह निश्चय किया था कि चीनी यात्रियों के यात्रा विवरणों का हिंदी भाषा में अनुवाद करूं और यदि कोई प्रकाशक मिले तो उनका अनुवाद अंग्रेजी में भी करूं। पर उस समय कोई प्रकाशक न मिला और मेरा यह निश्चय मेरे मन ही में रह गया। श्रमण वाङ-हुई भी मेरे पास से चले गए।

नागरी प्रचारिणी सभा ने माननीय मुंशी देवीप्रसाद जी मुंसिफ जोधपुर के प्रस्ताव से ऐतिहासिक ग्रंथमाला निकालने का विचार किया और फाह्यान का हिंदी अनुवाद प्रकाशित करने का निश्चय किया। इसके अनुवाद करने का भार मुझे दिया गया। संयोग से जो प्रति मुझे मिली उसमें लेगी महोदय का अनुवाद और अंत में मूल भी था। मूल को देख मेरा पूर्व संकल्प फिर जाग्रत हो आया और मैंने मूल को विचारना प्रारंभ किया। यद्यपि मैं अंग्रेजी का अनुवाद करता तो थोड़े काल में करके बोझा टाल देता पर मैंने मूल से ही अनुवाद करना उचित समझा। ऐसा करने में यद्यपि मुझे श्रम अधिक पड़ा तथापि इसमें और अंग्रेजी के अनुवाद में जो भेद है उसे वे ही पाठक अनुमान कर सकेंगे जिन्होंने अंग्रेजी के अनुवाद को व तदाश्रित भाषानुवादों को देखा होगा।

इस अनुवाद में मैंने लेगी महोदय और बील के अंग्रेजी अनुवादों से तथा प्र[illegible] समहार के बंगला अनुवाद से सहायता ली है जिसके लिए मैं उनका अनुगृहित हूं।

इस अनुवाद में अंग्रेजी अनुवाद से बहुत अंतर दिख पड़ेगा, क्योंकि मैंने अनुवाद को चीनी भाषा के मूल के अनुसार ही जहां तक हो सका है करने की चेष्टा की है। अनेक स्थलों पर विरोध का हेतु भी टिप्पणी में दे दिया है। इसमें संदेह नहीं कि यदि मैं यह अनुवाद उस समय करता जब श्रमण वाङ्-हु जी यहां उपस्थित थे तो इसमें मुझे बड़ी सुगमता होती और अनुवाद भी अच्छा होता। पर फिर भी मैंने अनुवाद को यथातथ्य करने में कुछ कमी नहीं की है। अनुवाद के प्रारंभ में एक उपक्रम है जिससे पाठकों को इसका अनुमान हो जाएगा कि फाह्यान किस मार्ग से भारतवर्ष आया, उसमें यूरोपीय विद्वानों का क्या मत है और मेरे मत से वह क्या ठहरता है। अंत में अनुवाद में आए हुए उपयोगी शब्दों की अकारादि क्रम से एक सूची भी लगा दी है जिसमें बौद्ध धर्म संबंधी शब्दों तथा अन्य शब्दों की पर्याप्त व्याख्या व विवरण दे दिया गया है।

इतने पर भी यदि कुछ त्रुटि रह गई हो, तो पाठकों से प्रार्थना है कि वे उसकी सूचना मुझे देने की कृपा करें जिससे उसका सुधार दूसरे संस्करण में कर दूं।

[illegible]
[illegible]
[illegible]

—जगन्मोहन [illegible]

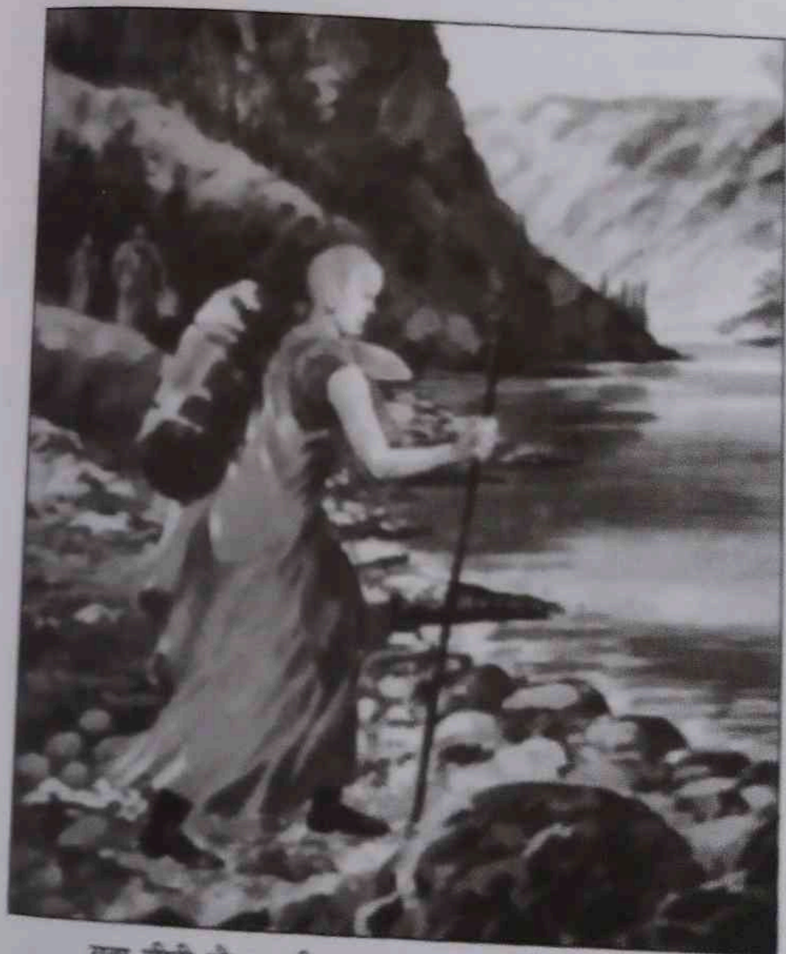

युवा चीनी बौद्ध यात्री 'फाह्यान' भारत पहुंचने के रास्ते में हिमालय की दुर्गम घाटियों से गुजरते हुए

विषय सूची

समर्पण 1
आभार 3
प्रकाशकीय 5
पुस्तक के बारे में 9
मूल भूमिका 13
उपक्रम 15

1. यात्रारंभ 83
2. शेनशेन और ऊए 85
3. खुतन 86
4. सीहून और जीहून 88
5. कीचा व कैकय 89
6. तोले वा दरद 90
7. नदी पार करना 91
8. उद्यान जनपद 93
9. सुहोतो जनपद 95
10. गांधार 95
11. तक्षशिला 97
12. पुरुषपुर 97
13. नगार व नगरहरा 100
14. [illegible] की मृत्यु–लोई और [illegible] जनपद 102
15. पीदू व पंजाब 103
16. मथुरा 103
17. संकाश्य 106
18. कन्याकुब्ज 110
19. [illegible] व [illegible] 110
20. श्रावस्ती 111
21. [illegible], [illegible] और [illegible] के जन्मस्थान 116
22. कपिलवस्तु ....
23. रामग्राम और रामस्तूप ....
24. महापरिनिर्वाण स्थान ....
25. वैशाली ....
26. आनंद का परिनिर्वाण स्थान ....
27. पाटलिपुत्र ....
28. राजगृह ....
29. गृध्रकूट पर्वत ....
30. सप्तपर्णी गुफा ....
31. गया ....
32. सम्राट अशोक ....
33. कुक्कुटपाद ....
34. वाराणसी ....
35. दक्षिण ....
36. पाटलिपुत्र में खोज और विद्याध्ययन ....
37. चंपा और ताम्रलिप्ति–सिंहल यात्रा ....
38. सिंहल पर्व ....
39. एक अर्हत का दाह-संस्कार ....
40. यात्रा का अंत ....
उपसंहार ....
परिशिष्ट ....

उपक्रम

ईसा के जन्म से कई शताब्दी पहले ही से चीन देश में भारत के धर्म, नीति, सभ्यता आदि की ख्याति फैल गई थी। यह ख्याति संभवतया पारसी वा यूनानी किसके द्वारा पहुंची इसका ठीक पता अब तक नहीं चला है। 'सू-मा-चेइन' नामक लेखक ने सबसे पहले ईसा के जन्म से एक शताब्दी पूर्व अपने इतिहास में भारतवर्ष के वृत्तांतों का उल्लेख किया है। उस समय चीन देश में बौद्ध-धम्म का अधिक प्रचार नहीं था। इसमें संदेह नहीं कि सम्राट अशोक ने बौद्ध-धम्म के धर्म प्रचारकों, शिक्षकों को मध्य एशिया में धर्म प्रचारार्थ भेजा था और वे लोग प्रचार करने में बहुत कुछ सफल मनोरथ भी हुए थे।[1]

बौद्ध-धम्म की उदार नीति की चर्चा चीन देश में दिनों-दिन फैलती गई और ईसा के जन्म से 67 वर्ष पश्चात चीन के सम्राट मिंगटो[2] ने भारतवर्ष से बौद्ध आचार्यों को बुलाने के लिए अपने दूत भेजे। दूत कश्यप मातंग

1. सम्राट अशोक ने अपने राज्य काल में लोककल्याण की उदात्त भावना के वशीभूत होकर अपने देश के समीपवर्ती देशों में 9 धर्म प्रचारक दल भेजे थे। इन दल के प्रमुख भिक्खुओं के नाम तथा जहां वे गए थे उन देशों के नाम तिपिटक के प्रसिद्ध ग्रंथ 'सासनवंस' और लंका मूल के बौद्ध ग्रंथ 'दीपवंस' में इस प्रकार दर्शाए गए हैं–1. मज्झंतिक थेर (कश्मीर तथा गंधार देश), 2. महारक्षित थेर (यवन देश), 3. मज्झिम थेर (हिमालय क्षेत्र), 4. धर्मरक्षित थेर (अपरांतक, गुजरात), 5. महाधर्मरक्षित थेर (महाराष्ट्र), 6. महादेव थेर (महिष मंडल, मैसूर), 7. रक्षित थेर (वनवासी) 8. सोण तथा उत्तर थेर (स्वर्ण भूमि, बर्मा), 9. महिंद व संघमित्ता (लंकाद्वीप) उक्त विद्वानों को मध्य एशिया में धर्मप्रचारार्थ भेजा था और वे लोग प्रचार करने के मनोरथ में बहुत कुछ सफल भी हुए थे।–संपादक
2. चीनी ग्रंथों में लिखा है कि सम्राट मिंगटो ने सन् 61 ई. में स्वप्न देखा कि एक तप्त कांचनवर्ण पुरुष आकाश में उसके प्रासाद के ऊपर मंडरा रहा है। मंत्रियों से इस स्वप्न का फल पूछा तो सबने कहा कि पश्चिम में गौतम नामक एक देवता है, वही आपको दर्शन देने आया था। सम्राट ने एक विद्वान और कई राजकर्मचारियों को उसके चित्र और उपदेश ग्रंथों के लिए भेजा। वे लोग भारत की ओर से कश्यप मातंग और धर्मरक्षक को लेकर चीवंशी राजकुमार ने बौद्ध-धम्म स्वीकार किया। मिंगटो ने उसके लिए एक संघाराम बनवा दिया और अनेक चित्र वहां स्थापित कर दिए। यह संघाराम 'माटेंग चीकलान' कहलाता है।

और धम्मयश नामक दो आचार्यों को उद्यान (गंधार यानी अफगानिस्तान का पश्चिम नामक भाग) से अपने साथ चीन देश ले गए। इन्होंने बौद्ध धम्म के अनेक ग्रंथों का अनुवाद चीनी भाषा में कर वहां बौद्ध-धम्म का प्रचार किया। बौद्ध-धम्म के प्रचार से भारतवर्ष के साथ चीन देश का गुरु-शिष्य का संबंध सूत्र में मजबूत होता गया। बौद्ध-धम्म के प्रचार के साथ-साथ चीन में इस धर्म के अनेक अनुयायियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की और इस प्रकार चीन देश में भिक्खुसंघ की स्थापना हो गई। तब से अनेक भिक्खु भारतवर्ष की ओर धर्मयात्रा के लिए लगातार आते रहे, पर पंजाब से आगे कोई नहीं बढ़ा और न ही किसी ने अपनी धर्मयात्रा का विवरण ही लिख कर छोड़ा जिससे कि उनकी यात्रा का कुछ पता चल सके।

ऐसे यात्रियों में जिन्होंने भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न नगरों और देशों में यात्रा की और अपना यात्रा विवरण लिखकर छोड़ गए थे, 'फाह्यान' सबसे पहले चीनी यात्री हैं। 'फाह्यान' का जन्म कब हुआ और किस आयु में उन्होंने यात्रा का आरंभ किया, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता है। कोई [illegible] और कोई तुङ-वंश के सुंग घराने का बतलाता है। पर यह निश्चित है कि उनका जन्म 'उयांग' में हुआ था। उयांग 'पिंगयांग' जिले में है और अब तक 'शान सी' के अंतर्गत आता है। उनका पहला नाम 'कुंग' था। उनके जन्म के पूर्व उनके माता-पिता की संतान जीवित नहीं रहती थी। तीन लड़के आठ-दस वर्ष की अवस्था में दूध के दांत टूटने से पहले ही मर चुके थे। उनके पिता ने 'कुंग' को जन्मते ही भिक्खुसंघ को सौंप देने के लिए दान कर दिया था। भिक्खुसंघ उसे 'सामनेर' बनाकर [illegible] घर ही पर रखता था। एक बार 'कुंग' कठिन रूप से रोगग्रस्त हो गया। पिता ने घबराकर उसे एक विहार में दान कर दिया। वहां 'कुंग' अच्छा हो गया और जब पिता उसे घर लाने के लिए गए, तो 'कुंग' ने घर जाने से मना कर दिया और इस प्रकार 'कुंग' विहार में ही रहने लगा।

'कुंग' की आयु दस वर्ष की थी तब उसके पिता का देहांत हो गया। अब उसकी विधवा माता ही शेष रह गई। कुंग का चाचा दौड़कर उसके पास विहार में आया और उसने बहुत चाहा कि वह विहार से घर आकर अपनी दुखियारी माता का सहारा बने, पर 'कुंग' घर न आया।

'कुंग' ने स्पष्ट कह दिया कि मैं अपने पिता की इच्छा से घर त्यागकर यहां नहीं आया हूं, बल्कि मैं स्वयं ही गृहस्थों की संगत से अलग रहना चाहता हूं। यही कारण है कि मैं यहां आया। मुझे भिक्खु रूप से अच्छा लगता है। बेचारे चाचा को विवश होकर उसकी बात माननी पड़ी और विशेष आग्रह न कर वह अपने घर वापिस लौट गया। थोड़े दिनों बाद उसकी माता का भी देहांत हो गया। यह समाचार सुनकर 'कुंग' अपने घर आया और माता का अंतिम संस्कार कर फिर अपने विहार को लौट गया।

एक समय की बात है कि 'कुंग' 20 सामनेरों (श्रामणेरों) के साथ कुछ विहार के खेत[1] में धान काटता था। इसी बीच कुछ चोर खेत में पहुंचे और काटे हुए धान को बलपूर्वक उठा ले चले। उन्हें देख सब सामनेर भाग निकले पर कुंग खेत में ही डटा रहा। वह कहने लगा "ले जाना ही चाहते हो तो जितना ही सके उठा ले जाओ। पर भाई पहले जन्म में दान न देने का ही यह फल है कि तुम इस जन्म में दरिद्र हो गए। अब इस जन्म में तुम दूसरों की चोरी करते फिरते हो, भावी जन्म में इससे अधिक क्या दुख पाओगे, मुझे तो यही सोचकर दुख होता है।" यह कह कर कुंग खेत छोड़कर अपने साथियों के साथ कुछ विहार में चला आया। उसकी बातों का चोरों पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे सबके सब खेत से ही लौट गए और उन्होंने धान को हाथ से भी न छुआ। 'कुंग' के साहस को सुन विहार के सब भिक्खु उसकी प्रशंसा करने लगे।

'सामनेर' अवस्था समाप्त कर कुंग ने 'प्रव्रज्या' (भिक्खु बनने का संस्कार) ग्रहण की। उस समय उसका नाम 'फाह्यान' पड़ा। चीनी भाषा में 'फा' का अर्थ 'धम्म', 'हियि' और 'हियान' का अर्थ 'आचार्य', 'रक्षक' होता है। अतः 'फाह्यान' का अर्थ हमारी भाषा में 'धम्मगुरु' होता है। धर्म और दर्शन की शिक्षा ग्रहण कर जब 'फाह्यान' त्रिपिटक[2] ग्रंथों का अध्ययन

---

1. *जैसे भारतवर्ष में बड़े-बड़े बुद्ध विहारों को जागीर के रूप में कुछ गांव और खेत मिलते थे। भिक्खुगण उनमें खेती-बाड़ी करते थे, वैसे ही चीन देश में भी विहारों और तपस्वियों को जागीरें मिली हुई थीं। विहार की ओर से खेती बाड़ी होती थी।*
2. *बुद्ध देशनाओं के संग्रह को त्रिपिटक कहा जाता है। त्रिपिटक का मतलब ग्रंथों के तीन पिटारे। त्रिपिटक यानि बुद्धोपदेशों के तीन संग्रह—1. सुत्तपिटक, 2. विनयपिटक 3. अभिधम्मपिटक। (त्रिपिटक ग्रंथों की सूची [illegible] परिशिष्ट में देखें)*

चांगनान से चलकर लंग से होकर वे क्योनकी[1] के जनपद[2] में पहुंचे और वर्षा के लिए टिके। वर्षा बिताकर वे नवतन[3] के जनपद में गए और यांगलो पर्वत पारकर चांगयी[4] के नाके पर पहुंचे। चांगयी: में अशांति फैली हुई थी, मार्गों से होकर जाना संभव न था। चांगयी: के अधिपति ने वहीं आग्रहपूर्वक उन्हें रोक कर रखा और दानपति[5] बना।

यहां चेयन, हेकौन, सांगसाव और सांगकिंग से भेंट हुई। ये लोग भी वहीं जा रहे थे। उनके साथ वहां वर्षा बिताकर उनके साथ-साथ तुनहांग

1. शेनसी के पश्चिमी और कानसु: के पूर्वीय भाग मिलाकर, उस समय [illegible] के नाम से प्रख्यात थे।
2. यह पश्चिमीय चीन का दूसरा राजा था। उसकी राजधानी कानसु देश के [illegible] प्रांत में थी। वह सीनपे जाति का था और उसका वंश केयेन्-फू कहलाता था। उस वंश का पहला शासक क्वोजिन था और चीन के महाराज ने सन् 385 ई. में उसे नियत किया था। क्वोजिन के परिनिर्वाण पर कीनकी 388 ई. में उसके स्थान पर पश्चिमी चीन का शासक हुआ और सन् 398 ई. में वहां का राज [illegible] दिया।
3. फाह्यान ने 'जनपद' का नाम अपनी यात्रा में तीन प्रकार से रखा है—1. शासक के नाम पर, 2. नदी के नाम पर, 3. प्रचलित नाम।
4. बमा आदि के भिक्खु वर्षा ऋतु में तीन मास एक ही स्थान पर रहते हैं।
5. सभी महाशय का विचार है कि नवतन दक्षिण लियांग के राजसिंहासन पर सन् 402 ई. में बैठा था। उस समय उसका भाई ले-तुक्-फू पाप का अधिपति था। नवतन लियांग का तीसरा राजा था। पर अन्य अनुवादकों का मत है कि नवतन सीलन के पश्चिमोत्तर में होसा प्रदेश का शासक था।
6. यह स्थान कान-सु देश के कानचाउ प्रांत में है जिसने इसे Military Station और सैमी महोदय ने Emporium लिखा है। यथार्थ में यह वह नाका है जहां से होकर लोग एक देश से दूसरे देश में व्यापार की वस्तु ले जाते हैं। यह लानचाउ के उत्तर-पश्चिम में चीन की दीवार के पास है।
7. दान महायान की छह पारमिताओं (हीनयान में दस पारमिताएं मानी जाती हैं, दान पारमिता उनमें भी सम्मिलित है) में से एक है। दान को भवसागर के पार और निर्वाण का हेतु माना गया है। दान का इतना महत्व है कि स्वयं भगवान बुद्ध ने अनेक जन्मों में विविध दान दिए हैं। यहां तक कि (जातक कथाओं के अनुसार) उन्होंने अपना सिर, देह आदि तक दे दिए थे।
8. कान-सु प्रदेश के शानसी प्रांत का एक विभाग। यह चीन की दीवार के बाहर की ओर है।

था। इसकी प्राचीर (नगर दीवार) पूर्व-पश्चिम 80 ली और उत्तर-दक्षिण में 40 ली लंबा-चौड़ा है। यहां कुछ दिन अधिक एक मास रहे। 'फाह्यान' आदि चार जन, एक अगुआ दूत[1] के साथ आगे चले। पावयुन आदि का साथ वहीं छूट गया।

तुनहांग के शासक लेहाव[2] ने मरुभूमि[3] पार करने के लिए सामग्री का सुभीता कर दिया। सुना कि मरुभूमि में राक्षस फिरा करते हैं, गर्म हवा चलती है, वहां जाकर उनसे कोई बचकर नहीं आता। न ऊपर कोई चिड़िया उड़ती है और न नीचे कोई जंतु दिखाई पड़ता है। आंख उठाकर जिधर देखो कहीं चारों ओर जाने का मार्ग नहीं सूझता, बहुत ध्यान देने पर भी कोई मार्ग नहीं मिलता। हां, मुर्दों की सूखी हड्डियों के चिह्न भले ही मिलते हैं।

2
शेनशेन और ऊए

सत्रह दिन में लगभग 1,500 ली चलकर 'शेनशेन'[4] जनपद में पहुंचे। यह पहाड़ी प्रदेश है। भूमि यहां की पथरीली और बंजर है। साधारण निवासी मोटे वस्त्र पहनते हैं जैसे हमारे हान देश में (पहना जाता है)। कोई पश्मीना और कोई कंबल पहनते हैं, मात्र इतना ही अंतर है। इस देश के राजा का धर्म हमारा ही है। यहां लगभग चार हजार से भी ज्यादा भिक्खु रहते हैं। सबके सब हीनयान बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। इधर के देश के सभी लोग क्या भिक्खु क्या गृहस्थ उपासक सब भारतीय आचार और नियम का पालन करते हैं, अंतर इतना ही है कि एक सामान्य और दूसरे विशेष। यहां से पश्चिम जिन-जिन देशों में गए सभी देशों में ऐसा ही पाया। भेद इतना ही था कि देश की भाषा न्यारी-न्यारी और अनोखी थी। पर सब गृहत्यागी

1. संभव है कि तुनहांग के शासक ने मरुभूमि में राह बताने के लिए फाह्यान के साथ किसी व्यक्ति को कर दिया हो। उसी को उसने दूत लिखा है।
2. यह उस समय तुनहांग का शासक था। उत्तरी लियांग के राजा ने इसे सन् 400 ई. में तुनहांग के शासक के पद पर नियुक्त किया था। यह बड़ा विद्वान, दयालु और कुशल प्रकाशक था। बढ़ते-बढ़ते यह पश्चिमी लियांग का अधिपति हो गया था। इसका परिनिर्वाण सन् 417 ई. में हुआ था।
3. चीनी भाषा के मूल में बालु की नदी लिखा है। यह मरुभूमि गोबी की मरुभूमि थी।
4. यह जनपद 'लोब' व 'लोपनार' झद के दक्षिण किनारे पर था।

बालू के नीचे दब गए हों। इन्हीं जनपदों के नगरों और बुद्ध विहारों के कुछ खंडहरों का पता रूसी और अन्य यूरोपीय यात्रियों को मरुभूमि में मिला है, जहां की खुदाई से अनेक खरोष्टी और ब्राह्मी आदि लिपियों में लिखी हुई अनेक प्राचीन पुस्तकों की प्रतियां उपलब्ध हुई हैं। परंतु जब 'फाह्यान' ने यह लिखा है कि हम 'ऊए' से दक्षिण-पश्चिम चलकर 'खुतन' में आए तो 'ऊए' 'खुतन' से उत्तर-पूर्व रहा होगा। 'ऊए' वालों की सभ्यता के विषय में 'फाह्यान' ने लिखा है कि "ऊए के अंदर, बाहर से आकर बसने वालों ने सज्जनता और उदारता को छोड़कर विदेशियों के साथ क्षुद्रता का आचरण किया।" इसे जब 'सांगइयान' और 'हुईसांग' के 'तुर्किस्तान' के वर्णन से, जिसे उन्होंने इन शब्दों में किया है कि "इस देश के निवासियों के आचार व्यवहार असभ्य हैं" मिलाया जाए तो यह कहना पड़ेगा कि 'ऊए' कहीं 'तुर्किस्तान' के निकट ही तो नहीं था।

'फाह्यान' आदि 'ऊए' के 'उद्देशिक' कुंगसन के यहां ठहरे। उसने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया। वहां वे करीब दो ढाई महीने तक रहे। 'पावयुन' आदि जिनका साथ 'तुनह्वांग' नगर में छूट गया था, वे भी यहां आ गए, पर इस देश के निवासियों के अशिष्टाचार और दुर्व्यवहार से पीड़ित हो 'चेयेन', 'ह्वेकीन' और 'ह्वेवीई' तो 'कावचांग' वापिस लौट गए और शेष 'फाह्यान' आदि 'फूकुंगसन' की कृपा से दक्षिण-पश्चिम की ओर चले। आगे के देश उन्हें निर्जन मिले और राह में अनेक नदियों को पार करना पड़ा, भांति-भांति के कष्ट उठाने पड़े। 'फाह्यान' ने लिखा है कि "ऐसे दुख किसी ने कभी न उठाए होंगे।" सभी कठिनाइयों को झेलते-झेलते 5 महीने स्थित चलकर सब यात्री 'खुतन' में पहुंच गए।

'खुतन' नगर 'खुतन' नामक नदी के किनारे स्थित है। वहां बौद्ध-धम्म का उस समय अच्छा-खासा प्रचार था। इसमें विभिन्न बुद्ध विहार और संघाराम भी थे, निवासी बड़े धर्मभीरु थे, घर-घर स्तूप थे, श्रमणों का बड़ा आदर था। 'फाह्यान' मित्रों सहित 'गोमती' नामक एक प्रसिद्ध विहार में ठहरे। 'ह्वेकिंग', 'तावचिंग', 'ह्विता' तो वहां से 'फाह्यान' आदि का साथ छोड़ 'कीचा' (कैकय) देश की तरफ चले गए। 'फाह्यान' आदि वहां भगवान की रथयात्रा देखने के लिए तीन मास तक के लिए ठहर गए। रथयात्रा

चतुर्थ मास की प्रथम तिथि से आरंभ हुई और चौदहवीं को समाप्त हुई।[1] रथयात्रा देखकर 'सांगशाओ' तो एक 'तातार' के साथ 'कुफेन' देश को, जिसे अब 'काबुल' कहते हैं, चला गया और 'फाह्यान' आदि 25 दिन चलकर 'जीहो' में आए। यात्रा में यह नहीं लिखा है कि 'खुतन' से किस ओर चले, केवल इतना लिखा है कि 'फाह्यान' आदि 'जीहो' की तरफ चले। मार्ग में 25 दिन चलकर उस जनपद में पहुंचे। इस जनपद का पता अब तक हमारे यूरोपीय विद्वानों को नहीं लगा है, कोई इसे 'यारकंद' और कोई इसे 'माशकुर्गल' बताते हैं। यहां का पता जो कुछ यात्रा विवरण से चल सकता है, वह यह है कि 'फाह्यान' आदि यहां 15 दिन रहे, फिर 'जीहो' से दक्षिण चार दिन चले और 'सुंगलिंग पर्वत' पारकर 'यूह्वे' जनपद में पहुंचे। 'यूह्वे' का भी पता हमारे सुविज्ञ विद्वानों को अब तक नहीं चला है। केवल वाटर साहब बहादुर ने इतनी अटकल लगाई है कि यह वर्तमान 'अकताश' होगा। 'सुंगलिंग पर्वत' के बारे में इतना भी नहीं लिखा गया है कि इसका कुछ पता चला है अथवा नहीं। लेगी महोदय ने इतना और कर दिखाया है कि 'सुंगलिंग शब्द का अनुवाद अध्याय के आदि में 'Onion Mountains' (प्याज पर्वत) मोटे भव्य अक्षरों में छाप दिया है। अब विचारणीय बात यह है कि ये दोनों जनपद 'जीहो' और 'यूह्वे' कौन से हैं और कहां हैं? क्या आजकल हम उनको निर्दिष्ट कर सकते हैं अथवा नहीं? पहले हमें यह देखना चाहिए कि यात्रा विवरण से इन दोनों जनपदों का किस स्थान में होना संभव है। 'खुतन' से यात्री लोग किस दिशा में चले, 'फाह्यान' के

1. संभवतया फाह्यान ने इस वर्ष अपना वर्षावास छठे महीने में प्रारंभ किया था। चौथे मास का शुक्ल पक्ष तो रथयात्रा में ही व्यतीत हो गया था। यदि पंचम मास की कृष्ण प्रतिपदा से वर्षावास प्रारंभ करता तो केवल एक ही मास रह गया था। इस मध्य फाह्यान आदि को 'खुतन' से 'जीहो' पहुंचने में 25 दिन लगे। 'जीहो' में वे 15 दिन तक ठहरे फिर 4 दिन दक्षिण चलकर 'सुंगलिंग पहाड़' मिला और उसे पारकर 'यूह्वे' जनपद गए। इसमें फाह्यान को 25154=44 दिन लगे। अब यदि पंचम मास के मध्य कृष्ण प्रतिपदा से वर्षावास आरंभ करना चाहता तो उसे 'जीहो' में वर्षावास पड़ता, सो भी यदि वह ठीक चतुर्थ मास की कृष्ण प्रतिपदा को खुतन से रवाना होता। पर इसमें संदेह नहीं कि वहां चौथे मास के द्वितीय पक्ष के भी अधिक दिन व्यतीत हो गए थे और पंचम मास का मध्यकाल मार्ग में ही व्यतीत हो गया। निदान आपत्ति धर्म के अनुसार उसने अपना वर्षावास षष्ठ मास के मध्य से 'यूह्वे' में आरंभ किया।

यात्रा विवरण से कुछ भी मालूम नहीं चलता। इतना निश्चय ही कहा जा सकता है कि 'जीहो' और 'खुतन' के बीच के मार्ग को यात्रियों ने 25 दिन चलकर पार किया। यद्यपि इसका कुछ उल्लेख नहीं है, पर इतना अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि यह मार्ग सुखकर रहा होगा। यह अनुमान ठीक भी है। अन्यथा कष्टकर होता व मार्ग में पर्वत और नदियां अधिक पड़तीं, तो इसका अवश्य कुछ उल्लेख होता। 'जीहो' और 'यूहे' जनपदों के मध्य 'सुंगलिंग पर्वत' पड़ता था और दोनों जनपदों के मध्य केवल इतना अंतर था कि यात्री मात्रा चार दिनों में 'जीहो' से 'सुंगलिंग पर्वत' पारकर 'यूहे' में पहुंच गए। इतना ही नहीं, यह भी उसी के आधार पर निश्चित रूप से अनुमान किया जा सकता है कि 'यूहे जनपद' 'सुंगलिंग' दक्षिणी ओर पर्वत के मूल में पड़ता था। 'यूहे पर्वत' के दक्षिण और 'जीहो पर्वत' के उत्तर में थे। इतनी बात और भी ध्यान देने योग्य है कि 'फाह्यान' ने जनपदों का नाम जहां ठीक पता और नाम नहीं मालूम हो सका है, प्रायः उन नदियों के नाम पर ही लिखा है, जो उन जनपदों में थीं। 'खुतन', 'कुफेन' आदि इसके अनेक स्पष्ट उदाहरण हैं। फिर यह कहना अनुचित न होगा कि 'जीहो' और 'यूहे' अवश्य ऐसी नदियां थीं जो उन जनपदों से होकर प्रवाहित होती थीं। 'सुंगलिंग पर्वत' का ठीक-ठीक पता आज तक नहीं लगा है और न कोई पर्वत मध्य एशिया का इस नाम से निर्दिष्ट होता है। इस पर्वत के नाम का जो अनुवाद लेगी महोदय ने प्याज (Onion) किया है वह भी ध्यान देने योग्य है। पर्वत का नाम यात्रियों ने 'सुंगलिंग' व 'प्याज' अवश्य किसी कारणवश ही रखा होगा और अधिक संभव है कि उसकी आकृति और वर्ण पर ही ध्यान देकर उन्होंने ऐसा नाम रखा होगा। 'सुंगलिंग पर्वत' का उल्लेख इस पुस्तक में कई स्थानों पर आया है। उनके देखने से यह प्रतीत होता है कि 'हिमालय', 'हिंदुकुश', 'कराकोरम' और 'पामीर' के लिए यह पद लाया गया है। ये पर्वत हिमाच्छादित रहते हैं और ऊपर से देखने से प्याज जैसे दिखाई पड़ते हैं। अब यदि मध्य एशिया के नक्शे पर ध्यान देकर इस पहेली पर विचार करें कि वह कौन-सी दो नदियां हैं जिनके बीच की भूमि प्याज के आकार की सफेद उभरी हुई हो अथवा जिनके मध्य कोई ऐसा पर्वत हो जो प्याज के समान उभरा हुआ अधिक ऊंचा-नीचा न हो और दोनों नदियों के बीच अंतर भी इतना कम हो कि यात्री उसे पारकर झट से उत्तर से दक्षिण पहुंच जाएं, तो यह झट विचार

में आता है कि ये दोनों नदियां 'दरिया' नदी और 'आक्सस' नदी हैं और उनके बीच की वह प्याज सी उभरी हुई भूमि पामीर'[1] है, जिसे यात्रियों ने अपनी यात्रा में हिमालय का विस्तार समझकर 'सुंगलिंग' लिखा है। इन दोनों नदियों के प्राचीन नामों पर ध्यान देने से इस अनुमान की और भी पुष्टि होती है। 'दरिया' का प्राचीन नाम 'सीहून' और 'आक्सस' का नाम 'जीहून' है। इन दोनों के मध्य पामीर भी है और दोनों उत्तर और दक्षिण में पड़ती भी हैं। अधिक संभव जान पड़ता है कि 'फाह्यान' ने 'सीहून' को 'जीहो' और 'जीहून' को 'यूहे' लिखा हो। 'खुतन' से 'सीहून' नदी की ओर आने में मार्ग भी उतना दुष्कर नहीं है और न मध्य में कोई बड़ी नदी व पहाड़ है। उनके बीच का अंतर भी इतना ही है जिसे यात्रियों को 10-12 दिनों में चलकर तय करने में कोई विशेष अड़चन नहीं पड़ सकती। अवश्य यात्री ही 'खुतन' से पश्चिम की तरफ चले थे और संभवतया 'समरकंद' के आसपास ही से दक्षिण की तरफ घूमे थे। वहीं कहीं 'सीहून नदी' के किनारे वह नगर था, जहां पंद्रह दिन रहकर चार दिन दक्षिण चलकर 'पामीर', पारकर वे 'जीहून' नदी के किनारे पहुंचे। 'सीहून प्रदेश' को सुएनच्वांग'[2] ने अपने यात्रा-विवरण के तृतीय अध्याय में 'शीहून' लिखा है। अधिक संभव है कि चीनी भाषा में भी किसी ऐसे संकेत का प्रयोग हो, जिसका उच्चारण 'शीहोन' व उससे कुछ मिलता-जुलता हो। प्रदेशों का संकेत दो भिन्न-भिन्न यात्रियों के विवरणों में प्रायः विभिन्न देखने में आया है। उनका उच्चारण भी उन लोगों के श्रवण (सुनने) में जैसा आया, लिख दिया है। हमारे यूरोपीय सज्जनों ने भी दिल्ली को 'डेलही' लिखा 'सीहून' को 'जीहो' और 'जीहून' को 'यूहे' करने में क्या आश्चर्य है? अतः यह बात सुनिश्चित जान पड़ती है कि 'जीहो' और 'यूहे' 'सीहून' और 'जीहून' के आसपास के ही प्रदेश थे और 'सुंगलिंग पर्वत' 'पामीर' ही था।

---

1. *यह पामीर हिमालय की पश्चिमी नोक है। इसीलिए छठे अध्याय में हिमालय को ही 'सुंगलिंग' ही लिखा है। हिमालय का प्रसार 'जरफसा' तक माना जाता है और ऊंची भूमि जो 'थियनशान' और 'कराकोरम' के मध्य 'सीहून' और 'जीहून' के बीच में है, हिमालय का ही विस्तार थी। पुराणों में 'थियनशान' को 'मेरु' लिखा है। चीनी भाषा में थियन स्वर्ग को कहते हैं।*
2. *'चीनी बौद्ध यात्री सुएनचांग की भारत यात्रा' नामक पुस्तक सम्यक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित है।*

'यूहें' में यात्रियों को रास्ते में वर्षा पड़ी और वहीं उन्होंने वर्षावास शुरू किया। तीन मास वर्षा व्यतीत कर वे 'कीचा' गए। 'कीचा' जाते हुए यात्रियों को पर्वत पर होकर जाना पड़ा। इतना तो उन लोगों के यात्रा-विवरण में है परंतु यह पता नहीं चलता कि 'यूहें' से किस दिशा में वे गए, मात्र इतना लिखा है कि "पहाड़ में 25 दिन चलकर 'कीचा जनपद' में पहुंचे।" 'कीचा' का भी ठीक पता अब तक यूरोप के विद्वानों को नहीं चला है। कोई इसे 'कश्मीर', कोई 'लद्दाख', कोई 'खस', कोई कुछ अनुमान करता है, तो कोई कुछ। तीसरे अध्याय के इस वाक्य से ही "हेकिंग', 'तावचांग' और 'हेता' पहले ही 'कीचा' जनपद की ओर प्रस्थान कर गए"। यह निश्चय होता है कि 'कीचा' का प्रदेश चीनियों को ज्ञात था। वहां का मार्ग वे लोग जानते थे, इसी कारण 'हेकिंग' आदि बिना किसी अगुआ (मार्ग दर्शक) के झट 'कीचा' की ओर प्रस्थान कर गए। 'कीचा' में भगवान बुद्ध का दांत और उनकी एक पीकदान भी थी। इसी के दर्शन के लिए यात्री आया करते थे। कीचा के प्रदेश को 'फाह्यान' ने 'पहाड़ी और ठंडा स्थान' लिखा है, और लिखा है कि वहां गेहूं के अलावा और अन्न नहीं होते। इससे यह भी प्रतीत होता है कि यह जनपद पर्वत के अंतर्गत था। यात्रियों को 'कीचा' तक आने में 25 दिन लगे थे, अतः 'जीहो' से 'कीचा' तक का अंतर 250 मील से लेकर 500 मील तक हो सकता है, सो भी पर्वत से जहां उतार-चढ़ाव हो। 'फाह्यान' के 'खुतन' से 'जीहो' की ओर चले जाने से यह भी कहा जा सकता है कि वह 'कीचा' होकर आना नहीं चाहता था। उसने समझा था कि भारतवर्ष कहीं 'खुतन' से पश्चिम में होगा, पर जब वह 'जीहो' पहुंचा तो उसे मालूम हुआ होगा कि वह दक्षिण-पूर्व दिशा में है। 'निदान' के तीर पर उन्हें 'पामीर' उतरकर 'यूहें' वा 'जीहून' के किनारे आना पड़ा और वहां से पर्वतों में से होकर वे 'कीचा' पहुंचे, जो उन्हें पहले से ही ज्ञात था।

अब विचारणीय बात यह है कि 'कीचा' कौन-सा प्रदेश था? कीचा से यात्री पश्चिम दिशा में चले और 30 दिन तक पर्वतों में चलकर 'तोलेः' में पहुंचे थे और वहां झूले से निकलकर सिंधु नदी पार करते ही 'वूचंग' व 'उद्यान प्रदेश' में पहुंच गए थे। फिर 'उद्यान' से दक्षिण की ओर उतरकर, 'सुहोतो' व 'सुआत' में आए थे। यद्यपि यात्रियों ने यह नहीं लिखा है कि 'उद्यान' से कितने दिनों में 'सुआत' पहुंचे, तो भी 'उद्यान' का 'सुआत' के उत्तर में होना पाया जाता है।

आने में यात्रियों को अवश्य कुछ समय लगा होगा। 'उद्यान' प्रदेश के पूर्व सिंधु नदी पड़ती ही नहीं है। यदि सिंधु नदी मानी भी जाए तो 'उद्यान' पहुंचते-पहुंचते यात्रियों को एक बार और सिंधु नदी चाहे वह 'स्कर्दो' के पास हो या कहीं और, अवश्य पार करनी पड़ती, पर इसका उल्लेख यात्रा विवरण में कहीं देखने में नहीं आता। इस पर ध्यान देते हुए यह अनुमान किया जा सकता है कि यात्रियों ने किसी अन्य नदी को पार किया होगा जो 'उद्यान' के पूर्व मिली, जिसे या तो भ्रमवश सिंधु नदी लिख दिया है या उन चिह्नों का कुछ और अर्थ है।

यह अनुमान ठीक भी जंचता है। वाल्मीकिय रामायण के अयोध्याकांड सर्ग 71 में भरत जी को कैकय से अयोध्या आते निम्नलिखित जनपदादि उज्जिहान तक पड़े थे–[1]

स प्राङ्मुखो राजगृहादभिनिर्याय वीर्यवान्।
ततः सुदामां द्यु तिमान्संतीयविक्ष्य तां नदीम्॥

ह्रादिनीं दूरपारां च प्रत्यक् स्रोतस्तरङ्गिणीम्।
शतद्रु मतरच्छीमान्नदीमिक्ष्वाकुनन्दनः॥

ऐलधाने नदीं तीर्त्वा प्राप्य चापरपर्वतान्।
शिलामाकुर्वतीं तीर्त्वा आगनेयं शल्यकर्षणम्॥

सत्यसंधः शुचिर्भूत्वा प्रेक्षमाणः शिलावहाम्।
अभ्यागत्स महाशैलान्वनं चैत्ररथं प्रति॥

सरस्वतीं च गंगां च युग्मेन प्रतिपद्य च।
उत्तरान्वीरमत्स्यानां भारुण्ड प्राविशद्वनम्॥

वेगिनीं च कुलिंगाख्यां ह्रादिनीं पर्वतावृताम्।
यमुनां प्राप्य संतीर्णो बलमाश्वासयत्तदा॥

राजपुत्रो महारण्यमनभीक्ष्णोपसेवितम्।
भद्रो भद्रेण यानेन मारुतः स्वमिवात्यगात्॥

भागीरथीं दुष्प्रतरां सोंऽशुधाने महानदीम्।
उपायाद्राघवस्तूर्णं प्राग्वटे विश्रुते पुरे॥

---

1. *वाल्मीकिय रामायण आदि ब्राह्मणी ग्रंथों के वर्णन और संदर्भ अनुवादक महोदय की ओर से जोड़े गए हैं–सं.*

स गंगा प्राप्य तीर्त्वा समायात्कुटिकोष्टिकाम् ।
सवलन्तां स तीर्त्वात्र समगाद्धर्मवर्द्धनम्॥
तोरणं दक्षिणार्येन जम्बूप्रस्थं समागमत् ।
वरुथं च ययौ रम्यं ग्रामं दशरथात्मजः॥
तत्र रम्ये वने वासं कृत्वा सौ प्राङ्मुखो ययौ ।
उद्यानमुज्झिहानायाः प्रियका यत्र पादपाः॥

यहां सरस्वती, गंगा, यमुना, भागीरथी और फिर गंगा से इन शतद्रु, गंगा, यमुना और सरस्वती के अलावा अन्य छोटी-छोटी और तीक्ष्णप्रवाह पहाड़ी नदियों से अभिप्राय है जो सिंधु नदी में 'कराकोरम', 'हिंदुकुश' आदि पर्वतों से निकलकर आ मिली हैं। यहां ऊए-निवासी 'सांगयुंग' और हुईसांग के यात्रा विवरण से भी हम थोड़ा-सा अंश उद्धृत करते हैं, जिससे पाठकों को यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनके विवरण का उससे कहां तक साम्य है। वे 'खुतन' से सीधे उद्यान को आए थे। उनका कथन है कि "सन कोहाई के द्वितीय वर्ष के सातवें महीने की 29वीं तिथि को हम लोग यारकिंग राज्य में पहुंचे। यहां के लोग पर्वत पर रहते हैं। साग-भाजी यहां खूब उत्पन्न होती हैं। वही सब लोग खाते हैं, उसे पीसकर आटा बनाकर रोटी पकाते हैं। वे लोग हिंसा नहीं करते। जो मछली खाते हैं, वे मुर्दा पशुओं का मांस भी खाते हैं। इन लोगों की रीति-नीति बोलचाल सब 'खुतन' देशवालों की सी है, पर लिपि उनकी ब्राह्मी है। यहां ये पांच दिन में पहुंचे।

"आठवें महीने के पहले सप्ताह में वे कबंध देश में आए और 6 दिन पश्चिम की ओर चलकर 'सांगलिंग'[1] पर्वत पर चढ़े। फिर पश्चिम की ओर और 3 दिन चलकर 'किटाएउ' नगर में पहुंचे। वहां से तीन दिन चलकर 'पुशेई' पर्वत माला में पहुंचे। यह स्थान बड़ा ठंडा है। जाड़े, गर्मी दोनों ऋतुओं में बर्फ से ढका रहता है। पर्वत पर एक हृद है, जिसमें एक नाग व्यक्ति रहता है। पूर्वकाल में एक व्यापारी रात्रि के समय इस हृद के किनारे पहुंचा। उस समय नाग कुपित था, इसलिए उसी क्षण उसने बनिए को मार डाला। 'प्यांटो' राज्य का राजा इस समाचार को सुनकर अपने पुत्र को राजसिंहासन

1. संभव है कि मूल में 'सुंगलिंग' हो और अनुवादकों ने सांगलिंग कर दिया हो। पिकाओ अध्याय 7 'फाह्यान'

पर बैठाकर ब्राह्मणों से मंत्र की शिक्षा प्राप्त करने के लिए 'उद्यान' जनपद में गया। वहां चार वर्ष रहकर और मंत्र के प्रयोगों को सीखकर वह अपने राज्य में आया और नाग पर अपने मंत्र का प्रयोग करने लगा। देखते ही देखते नाग बाहर निकला और अपने पाप-कर्म पर पश्चाताप करता हुआ राजा के पास आया। राजा ने उसे उस हद से बाहर निकालकर 'सांगलिंग पर्वत' पर भेज दिया। वर्तमान राजा उससे बारहवीं पीढ़ी में है।

"इस स्थान से पश्चिम की तरफ का मार्ग अत्यंत ऊंचा-नीचा है। यह बहुत ही ऊबड़-खाबड़ और ऊंचे-नीचे पर्वतों से परिपूर्ण है। इसके सामने 'मांगमेन पर्वत' के मार्ग कुछ नहीं हैं। शनैः-शनैः सरक कर हम लोग 'सांगलिंग पर्वतमाला' के ऊपर चढ़े और चार दिन में पर्वत के शिखर पर पहुंचे। यहां से नीचे देखने से मालूम होता था कि हम लोग आकाश में लटके हुए हैं। 'हान पानरो' राज्य इस पर्वतमाला के शिखर तक है। यहां यह कहावत प्रचलित है कि यह स्थान स्वर्ग और पृथ्वी के बीचोंबीच ठहरा हुआ है। यहां के लोग खेत सींचने के लिए नदी के जल को काम में लाते हैं। यहां के लोगों से कहा जाए कि मध्यदेश (मज्झम देस—भारत का गंगा-जमुना का मैदानी क्षेत्र) में लोगों के खेतों में पानी बरसता है और उससे उनकी खेती पानी पाती है तो ये लोग हंसते हैं, और कहते हैं "हुं: स्वर्ग में भला इतना पानी कहां है?"

"इस देश की राजधानी के उत्तर-पूर्व में एक वेगवती नदी है। 'सांगालय पर्वतमाला' के ऊपर कोई वृक्ष या वनस्पति नहीं उपजती है। इस महीने में ठंडी हवा बहती है और उत्तर में सहस्र मील तक बर्फ गिरती रहती है।

"नौवें महीने के मध्य में हम लोग 'पीहो' प्रदेश में पहुंचे। इस स्थान के भी पर्वत ऊंचे हैं और वहां जाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यहां के राजा ने एक नगर बसा रखा है। जब वह पर्वत पर आता है तो इसी नगर में रहता है। इस देश के लोग अत्यंत सुंदर कपड़े पहनते हैं और कभी-कभी चमड़े का भी व्यवहार करते हैं। यहां कड़ी सर्दी पड़ती है कि लोग पर्वत की कंदराओं में छिपे पड़े रहते हैं और शीतलहर चलने के कारण मनुष्य जंगली जानवरों के साथ रहने पर बाध्य होते हैं। इस देश के दक्षिण में 'हिमालय पर्वत' पड़ता है। इस पर्वत से सायं-प्रातः मोती के मुकुट के सदृश भाप उठा करती है।

"दसवें महीने के पहले पक्ष में हम लोग 'ईखा' प्रदेश में पहुंचे। इस देश के खेतों में पहाड़ी नदियों से जल पहुंचता है। सारी धरती उपजाऊ है। प्रत्येक घर के द्वार पर नदी बहती है। यहां कोई ऐसा नगर नहीं जिसके किनारे प्राचीर हो, यहां शांतिरक्षा के निमित्त स्थायी सेना है। वह सदा एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलती-फिरती रहती है। यहां के लोग ऊन के वस्त्र पहनते हैं। जिन प्रदेशों में नदियां हैं वहीं अन्न की अच्छी उपज होती है। ग्रीष्म ऋतु में आदिवासी लोग पर्वत के ऊपर चले जाते हैं और शीत ऋतु में वहां से उतरकर अपने-अपने गांवों में चले आते हैं। इनकी अपनी कोई लिपि नहीं है, सभी असभ्य हैं। ये न तो तारों की गति जानते हैं और न इनके वर्ष में महीनों के दिन नियत हैं। सभी महीने बराबर हैं, बारह भागों में वर्ष विभक्त है चारों ओर की सब जातियां इन्हें कर (Tax) देती हैं। इस जनपद के दक्षिण में 'तिलो' उत्तर में 'लिलो' पूर्व में 'खुतन' और पश्चिम 'पोसी' है। प्रायः चालीस जनपद के लोग इन्हें कर देते हैं। जब इन जनपदों से कोई राजा के पास उपहार लेकर आता है तो 40 हाथ लंबी चौड़ी जाज़िम बिछाई जाती है और ऊपर चांदनी व शामियाना टांगा जाता है। राजा स्वर्ण सिंहासन पर राजकीय वस्त्राभूषण धारण करके बैठता है। सिंहासन चार सार्दूलों पर स्थापित रहता है। जब ऊई देश के राजदूत आए तो राजा ने बार-बार प्रणाम करके उनसे पत्र लिया। सभा में प्रवेश करने पर एक मनुष्य नाम और उपाधि बताता है, फिर अभ्यागत को आगे करके लाया जाता है। आवश्यक कार्य हो जाने पर सभा का विसर्जन होता है। यह केवल नियम ही का प्रतिपालन करते हैं। कोई बाजा आदि नहीं है। 'ईखा' देश के राजा के अंतःपुर में स्त्रियां भी राजकीय वस्त्र पहनती हैं। इनके परिच्छद गज-गज भर भूमि पर लोटते चलते हैं। उन्हें उठाने के लिए अलग से नौकर लोग होते हैं। स्त्रियां इसके अतिरिक्त फुट भर या इससे भी अधिक लंबी आठ सींगें मस्तक पर धारण करती हैं। ये तीन फुट तक लंबी लाल मूंगे की जड़ित और अनेक रंगों में रंगी होती हैं, यही उनका मुकुट (ताज) है। राजा के अंतःपुर की स्त्रियां जब कहीं अन्यत्र जाती हैं तो इन सबको धारण करके जाती हैं। घर में वे स्वर्ण जड़ित पीढ़ों पर बैठती हैं, जिनकी पीठ हाथी के दांत की होती है और नीचे सिंह की चार मूर्तियां बनी रहती हैं। इसके अलावा मंत्रियों की स्त्रियों और राजा के अंतःपुर की

स्त्रियों का आचार-व्यवहार शेष बातों में समान है। मंत्रियों की स्त्रियां भी मुकुट पर सींग धारण करती हैं। इन सींगों से चंदवे के सदृश झब्बे लटका करते हैं। धनी और दरिद्र दोनों के परिच्छद (पोशाक) भिन्न-भिन्न हैं। असभ्य जातियों में यही जाति सबसे अधिक सभ्य है। इन लोगों का बौद्ध-धम्म पर बहुत कम विश्वास है। प्रायः अधिक लोग अन्य धर्म के मानने वाले हैं। ये लोग जीवित प्राणी को मारकर उसका मांस खा लेते हैं। पास के देशों से अनेक पशु कर स्वरूप आते हैं, उन्हीं का मांस ये खाते हैं। 'ईखा' से हम लोगों की राजधानी 20 हजार मील पर है।

"ग्यारहवें महीने के पहले सप्ताह में हम लोग 'पोसि' देश की सीमा के प्रदेश में पहुंचे। 17 दिन चलकर एक पहाड़ी और दरिद्र जाति के देश में आए। इसका आचार-व्यवहार सभ्य नहीं था। यहां कोई राजा का सम्मान नहीं करता। राजा भी बाहर निकलने पर व अंतःपुर में रहने पर अधिक परिचारकों को साथ नहीं रखता। इस देश में एक नदी है। पहले तो यह इतनी गहरी नहीं है पर ज्यों-ज्यों पर्वत में नीचे घुसती गई नदी आदि की चाल बदलती गई है और दो बड़े-बड़े कुंड पड़ गए हैं। एक दैत्य यहां रहता है और बड़ी हानि पहुंचाता है। ग्रीष्मकाल में तो दैत्य जल बरसाता है और जाड़े में तुषार (बर्फ) गिराता है। इसके परिणामस्वरूप यात्रियों को अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। यहां का तुषार इतना स्वच्छ और चमकीला है कि उसे देखने से दृष्टिशक्ति मारी जाती है। आंख न मूंदें तो अंधे होने में कुछ देर नहीं लगती। यदि यात्री लोग दैत्य (असुर) की पूजा चढ़ा देते हैं, तो उन्हें आने-जाने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती।

"ग्यारहवें महीने के मध्य भाग में 'सिमि' जनपद में पहुंचे। यह प्रदेश 'सुंगलिंग' पर्वतमाला की सीमा पर है। देश की भूमि ऊबड़-खाबड़ है। यहां के रहने वाले बहुत गरीब हैं। मार्ग ऊंचा-नीचा बड़ा ही भयानक और दुखदायी है। घोड़ा सवारी लेकर इस मार्ग पर बड़ी कठिनाई से आ-जा सकता है। 'पुकालाई' से उद्यान प्रदेश तक सेतु[1] बना है। सेतु लोहे की जंजीरों का है। पर्वत की घाटी को पार करने के समय इन्हीं जंजीरों के सहारे पार होना पड़ता है। ये जंजीरें अधर में लगी हैं। नीचे देखने से घाटी की तरी दिखाई

1. फाह्यान ने जिस सेतु का उल्लेख किया है या तो यही है अथवा कोई दूसरा होगा, जो इस नदी पर रहा होगा।

नहीं पड़ती है। जंजीर हाथ से छूटते ही यात्री 40,000 फुट नीचे गिरकर चकनाचूर हो जाते हैं। इसलिए यात्री लोग पानी व झड़ी के समय पर्वत की घाटी को पार करने की चेष्टा नहीं करते।

"बारहवें महीने हम लोग उद्यान प्रदेश में पहुंचे। इस देश के उत्तर में 'सुंगलिंग पर्वतमाला' और दक्षिण में 'भारतवर्ष' है।"

अब विचारने की बात यह है कि 'फाह्यान' ने भी तूले जनपद से उद्यान के बीच सिंधु नदी के उतरने के समय सेतु का जैसा वर्णन किया है वह 'सांगयांग' और 'हुईसांग' के सेतु के उस वर्णन से ठीक-ठीक मिलता है जो अभी ऊपर 'पुकालाई' और 'उद्यान' के बीच वर्णन हो चुका है। वास्तव में वह नदी सिंधु नहीं जान पड़ती। यह वही नदी है जिसका वर्णन 'सांगयांग' और 'हुईसांग' ने 'पोसो' के संबंध में किया है। यही नदी आगे चलकर गहरी हो गई और अंत में खड्ड बन गई, जिसके पार करने के लिए झूले बनाए गए थे। यदि सिंधु नदी होती तो 'सांगयांग' और 'हुईसांग' ने अवश्य उसका उल्लेख किया होता। अब 'कीचा' से 'तूले प्रदेश' तक वे ही जनपद थे और उनमें वही नदियां आई थीं, जिनका वर्णन वाल्मीकीय रामायण में भारत की यात्रा के साथ है व 'सांगयांग' और 'हुईसांग' ने ऊपर उद्धृत किए शब्दों से किया है।

'कीचा' जनपद के विषय में यदि उसको 'खश' का ही रूपांतर मानें तो Sylvain Levi के "खरोष्ट देश और खरोष्टी लिपि" में निम्नलिखित वाक्य विवेचनीय है "Khacas, Khacya or Khasya, in Chinese Kiacha, or K'ocha or K'oso (मैं Keicha को भी इसी से स्फोट संबंधवान कह सकता हूं) Corresponding to the Sanskrit variants Khaca, Khasa, Kasa, and this writing is classed between that of Daradas (To-lo; Ta-lo-to with note "mountain on the boarder of On-tchand, that is Udyana) and that of Cin. Thus, the land of Khaca, occupied the space between Dardistan of the lower Indus and the frontier of China proper." *भावार्थ यह है कि–'खश' को ही चीनी भाषा में 'कोचा', आदि लिखा गया है। 'खश' लिपि 'दरद' और चीन के मध्य रखी गई है। अतः 'खश जनपद' वह स्थल है, जो 'दरदिस्तान' और 'चीन' के मध्य में है।*

इससे पूर्णतया साफ हो जाता है कि 'सिंधु नदी' के दक्षिण के प्रदेशों में (उसके दक्षिण दिशा में फिरने तक) जो 'कराकोरम' और 'हिंदुकुश' के इस पार पड़ते थे, पश्चिम में 'दरद' व 'तूले' और पूर्व में 'कीचा' का प्रदेश था। इनके अंतर्गत इधर-उधर अनेक और प्रदेश पड़ते थे, जिनका उल्लेख 'फाह्यान' ने नहीं किया है। उनका विशेष वर्णन 'सांग-इयानादि' के यात्रा विवरण में है। इसीलिए 'यूह्वे' से 'फाह्यान' पूर्व की तरफ 'कराकोरम' के किनारे से 'कीचा' को गया और फिर 'कीचा' से दरद होता हुआ 'उद्यान' में आया।

'कीचा' में पहुंचकर 'फाह्यान' को 'ह्वेकिंग' और उसके दो अन्य साथी, जो 'खुतन' से पहले यहां चले आए थे, मिले। यहां उस समय पंच परिषद का उत्सव पड़ा था। यह उत्सव पांचवें वर्ष पश्चात पड़ा करता था। इसका पूर्ण वर्णन पांचवें अध्याय में सांगोपांग मिलता है। 'फाह्यान' ने इस देश के विषय में मात्र इतना ही लिखा है, "यह देश पहाड़ी है और ठंडा है, सुनते हैं यहां गेहूं के अतिरिक्त और कोई अन्न नहीं होता। (इस) पर्वत के सामान्य लोग मोटा-झोटा वस्त्र पहनते हैं। यह जनपद 'सुंगलिंग' पर्वतमाला के मध्य में है। इस पर्वतमाला से आगे बढ़ने पर वनस्पति, वृक्ष और फल सब प्रकार के मिलते गए। केवल बांस, विल्व और ईख ये ही तीन हमारे देश के हैं।" उस देश में भगवान बुद्ध की पीकदान और दांत पूज्य पदार्थ थे। श्रमणों के आचार-व्यवहार आश्चर्यजनक और इतने विधिनिषेधात्मक थे कि कहे नहीं जा सकते।

'कीचा' से यात्रियों ने पश्चिम की तरफ एक मास तक चलकर 'सुंगलिंग पर्वतमाला' पार की। यहां यह जानना हितकर व अति आवश्यक है कि 'सुंगलिंग पर्वत' से यात्रियों का अभिप्राय उन सारी पर्वतमालाओं के जाल व विस्तार से है, जो 'सुंगलिंग' से दक्षिण 'पामीर' तक फैली हुई हैं और वहां 'थियनसान' से मिली हुई हैं। चूंकि पहले भी वे 'जीहो' और 'यूह्वे' के मध्य इसी के एक अंश को पारकर चुके थे, पर फिर भी इस और हिस्से को पार करना पड़ा। 'फाह्यान' ने लिखा है, "सुंगलिंग पर्वतमाला ग्रीष्म से हेमंत तक तुषारावृत (बर्फ से ढ़की) रहती है। उस पर विषधर नाग हैं। वे क्रोधित होने पर विषयुक्त वायु छोड़ते हैं, तुषार बरसाते हैं, अंधड़ चलाते हैं और पत्थर बरसाते हैं। यहां इन आपत्तियों से बचकर दस हजार में एक

भी नहीं निकल पाता। इस देश के निवासी इसे 'हिमालय पर्वत' कहते हैं।" इस देश में उसने मैत्रेय बोधिसत्व की प्रतिमा की अलौकिक गाथा लिखी है।

इस देश से दक्षिण-पश्चिम की ओर पंद्रह दिन चलकर यात्रियों को दो पर्वतों के बीच में एक नदी मिली। उसे उन लोगों ने सिंधु नदी लिखा है, पर वह सिंधु नहीं जान पड़ती। 'सांगयांग' और 'हुईसांग' की यात्रा के विवरण से मिलाकर देखने से यह कोई दूसरी नदी जान पड़ती है। डॉ. एम. स्टीन महोदय के मध्य एशिया के वर्णन में जो उन्होंने इंडियन अंटीक्वेरी सन् 1909, पृ. 299 में लिखा है, ये वही वाक्य हैं—

But it was on far more interesting ground that I was soon able to verify the accuracy of those Chinese annalists, who are our chief guides in the early history and geography of Central Asia. Reasons, which cannot be set forth here in detail, had years before led me to assume that the route by which in 749 A.D. a Chinese army coming from Kashghar and across Pamirs had successfully invaded the territories of Yasin and Gilgit, then held by Tibetians, led over the Baroghil and Darkot passes, I was naturally very anxious to trace on the actual ground the route of this remarkable exploit, the only recorded instance of an organised force of relatively large size, having surmounted these passes, the formidable natural barriers which the Pamirs and Hindukush present to military action. The ascent of the Darkot Pass, circ. 15]400 feet above the sea, which I undertook with this object on May 17, proved a very tarrifying affair, for the miles of magnificient glacier over which the ascent led from the north were still covered by deep masses of snow, and only after nine hours of toil in soft snow, hiding much crevassed ice, did we reach the top of the pass. Even my hardy Mastuji and Wakbi guides had held it to be inaccessible at this early season. The observation, gathered there, and subsequently on the marshes accross Buroghil to the Oxus, fully bore out the exactness of the topographical indications furnished by the Official account of Koo-hsenr-che's expendition. As I

stood on the glittering expanse of snow marking the top of the pass and looked down the precipitous slopes leading some 6,000 feet below to the head of Yasing valley, I felt sorry that there was no likelihood of a monument ever rising for the brave Corean general who had succeeded in moving thousand of men across the inhospitable pamir and over such passes.

यह अपार हर्ष की बात है कि मुझे यहां चीनी लेखकों की सत्यता प्रमाणित करने का सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ। मध्य एशिया का इतिहास और भूगोल के विषय में वे ही हमारे अगुआ और मार्गदर्शक हैं। मुझे यहां उन कारणों को भली-भांति लिखने का अवकाश नहीं है कि क्यों सन् 749 ई. में चीनी सेना 'कासगर' से 'पामीर' होती हुई 'यासीन' और 'गिलगिट' आई। 'यासीन' और 'गिलगिट' उस समय तिब्बत के अधिकार में थे। चीनियों की सेना 'बरोगिल' और 'दरकोट' के दर्रों को पार कर आई थी। मैं चीनियों की इस विशाल सेना के आने के मार्ग को जानने का बड़ा उत्सुक था। इस सेना ने पामीर और हिंदुकुश की प्राकृतिक रुकावटों को पार किया था। 'दरकोट' दर्रा समुद्र की सतह से 15,400 फुट ऊंचा है। मैं 17 मई को वहां पहुंचा। मीलों तक बर्फ की नदी चमक रही थी। उसका चढ़ाव उत्तर से बड़े-बड़े बर्फ के ढोकों से ढंका था। मैं बड़ी कठिनाई से पिलपिली बर्फ से होकर ऊपर गया। 9 घंटे लगे। मेरे मार्गदर्शकों ने इसे पार करना संभव नहीं बताया था। मैंने जब इन चमकते हुए हिम-खंडों के ऊपर से नीचे देखा तो 'यासीन की घाटी' 7,000 फुट की गहराई में दिखाई पड़ी। खेद है कि 'कोरिया' के उस वीर सेनापति का यहां कोई स्मारक चिह्न नहीं है, जो अपने कौशल से सहस्रों मनुष्यों की सेना लिए यहां पहुंचा था। इससे ज्ञात होता है कि उद्यान से इधर-उधर दुष्पार पर्वत के दर्रे और घाटियां थीं। ऐसी ही और घाटी रही होगी जिस पर से उस समय दरद देश से उद्यान आने के लिए झूले का पुल बना रहा हो। पर मात्र इतने से उसे 'सिंधु नदी' मानना ठीक प्रतीत नहीं होता। यह भी संभव है कि कोई और नदी हो जो दो पर्वत के मध्य होकर 'उद्यान' और दरद के बीच बहती हो और उसके दोनों ओर दो ऊंचे पर्वत रहे हों। इसकी सत्यता दोनों यात्रियों के विवरणों से प्रमाणित होती है। भरत जी को उद्यान पहुंचने में 'भागीरथी' नामक नदी उतरनी पड़ी थी, जिसे महाकवि ने "दुष्प्रतरां" लिखा है। वह

नदी 'अंशुधान' पर्वत के निकट थी। यहां डॉ. ओर्फ्रेंक महोदय का मत भी विचारणीय है। वह लिखते हैं कि 'हियनतू' शब्द का अर्थ 'रस्सी का झूला' है। इस यात्रा में 'हियन' और 'तू' नामक दोनों संकेत दो बार आए हैं। एक अध्याय 7 में और दूसरे अध्याय 14 में। अध्याय 15 में 'तू' शब्द अकेला आता है और यहां नदी-वाचक है। इसके अलावा और भी कई जगह पर यह शब्द नदी-वाचक आया है। अतः 'हियन' का अर्थ सिवाय झूला या पुल के और दूसरा नहीं प्रतीत होता। सिंधु नदी के लिए वे ही संकेत प्रयुक्त हो सकते हैं, जो भारत के लिए आए हों। शब्द के उच्चारण-साम्य से यह भ्रम अनुवादकों को हुआ होगा।

यहां नदी पार करने पर अनेक भिक्खु मिले और उन भिक्खुओं ने 'फाह्यान' से सवाल किया कि बतलाओ बौद्ध-धम्म कैसे यहां से पूर्व की ओर गया। इस पर 'फाह्यान' ने जवाब दिया कि "हमने उस ओर वालों से पूछा था। वे कहते थे कि बाप-दादाओं से सुनते आये हैं कि 'मैत्रेय बोधिसत्व' की प्रतिमा स्थापन कर भारत के भिक्खु 'सूत्र' और 'विनय' भिक्खु नियम लेकर नदी पार गए। मूर्ति की स्थापना तथागत बुद्ध के महापरिनिर्वाण काल से 300 वर्ष पश्चात् हुई। उस समय 'हान देश' में 'चाउ' वंशी महाराज पिंग का शासन था। इस वाक्य से प्रमाणित है कि हमारे धर्म का प्रचार इस मूर्ति के स्थापन से प्रारंभ हुआ है। भगवान मैत्रेय धर्मराज हैं। उसी शाक्य वंशावतंस ने त्रिरत्न की घोषणा की है और यहां आकर पार के लोगों को धर्म का उपदेश दिया है।"

फाह्यान 'उद्यान' जनपद पहुंचा। यह 'उद्यान' जनपद 'उर्द्ध-स्वात' के दून में था। वहां उस समय अनेक संघाराम (बुद्ध विहार) थे, जिनमें बहुतों का पता डॉ. स्टीन महोदय ने सन् 1898 में चलाया। डॉ. स्टीन महोदय ने 'मंगाली' के पास एक बड़े नगर का खंडहर भी खुदवाया था और उनका दृढ़ विश्वास था कि 'उद्यान' की प्राचीन राजधानी यहीं थी। यहां के देशवासियों से ज्ञात हुआ कि यहां भगवान बुद्ध के पद-चिह्न (बुद्धपाद) की प्रतिमा है, यहां एक चट्टान भी थी, जिस पर भगवान बुद्ध ने आकर अपने वस्त्र भी सुखाए थे।

यहां 'फाह्यान' के साथ 'ह्वेकिंग', 'ह्वेता' और 'तावचिंग' तो 'नागर जनपद' में भगवान बुद्ध की छाया का दर्शन करने चले गए पर वहां से

आकर 'फाह्यान' और शेष लोगों ने यहां ठहरकर वर्षावास पूरा किया। वर्षा बीत जाने पर 'फाह्यान' आदि दक्षिण की तरफ उतरकर 'सूहोतों' में आए।

'सूहोतो प्रदेश' का नाम प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में शिवि[1] दिया गया है। 'फाह्यान' ने इस जनपद के विषय में एक जातक की कथा का वर्णन किया है। वह राजा शिवि की कथा से, जो बौद्ध साहित्य में मिलती है, अक्षरशः मिलती-जुलती है। भेद केवल इतना है कि 'फाह्यान' ने शक्र (इंद्र) को ही परीक्षा करने वाला लिखा है, पर पुराणों में शक्र और अग्नि को परीक्षक लिखा है। उनमें शक्र श्येन और अग्नि कपोत का रूप धारण करके आए थे। शेष ज्यों का त्यों है।

यह 'सूहोतो' प्रदेश वही है जहां आजकल 'बुनेर' नामक नगर है। वहां पर उस समय एक बौद्ध स्तूप था जिस पर सोने-चांदी के पत्र चढ़े थे। वहां बौद्ध-धम्म का अच्छा-खासा प्रचार-प्रसार था। उस स्तूप का खंडहर अब तक 'गिरारै' में है।

यहां से एक दिन फाह्यानादि 'सूहोतो' से पूर्व की ओर चले और 'गांधार' जनपद में गए। इस जनपद के बारे में केवल एक जातक कथा का उल्लेख किया गया है, जिसमें भगवान बुद्ध के एक जन्म में किसी को नेत्रदान करने की कथा है। उस जगह उन दिनों एक स्तूप था और वहां के लोग बौद्ध धर्म के 'हीनयान पंथ' के मानने वाले थे। स्तूप के खंडहर का पता अभी तक नहीं चला है।

'गांधार' से चलकर फाह्यानादि पूर्व की ओर लगातार 7 दिनों तक चलकर 'तक्षशिला' पहुंचे। 'तक्षशिला' को बौद्ध लोग 'तक्कसिला' कहते हैं। 'फाह्यान' ने 'तक्कसिला' के यह नाम पड़ने का यह कारण दिया है कि भगवान बुद्ध ने अपने एक जन्म में अपना सिर एक मनुष्य को दान कर दिया था। यहां एक स्तूप था। वहां से दो दिन पूर्व की ओर चलकर उसे एक और स्तूप मिला, जहां भगवान बुद्ध ने (एक जातक कथा के अनुसार) किसी जन्म में अपना शरीर भूखी बाघिन को खिलाया था।

फाह्यानादि फिर वहां से दक्षिण की तरफ चले और चौथे दिन 'पुरुषपुर' पहुंचे, जिसे आजकल 'पेशावर' कहते हैं। यहां पर 'फाह्यान' को ज्ञात हुआ

1. शिवि (पालि=सिवि) राष्ट्र का वर्णन 'सिवि जातक' (499) में आया है।

कि भगवान बुद्ध ने वहां पधारकर अपने शिष्य 'आनंद' थेर से 'कनिष्क' के विषय में भविष्यवाणी की थी। यहां 'कनिष्क' का बनवाया हुआ एक विशाल-स्तूप था जिस पर सोने-चांदी के पत्र चढ़े हुए थे। यहां बुद्ध का एक भिक्षापात्र भी था, जिसकी पूजा होती थी। यहां के लोगों से उसने सुना कि 'यूशे' नामक राजा उस पात्र को उठा ले जाना चाहता था परंतु जब अनेक कोशिशें करने पर भी उसे न ले जा सका, तो विवश होकर उसने वहां एक स्तूप और संघाराम (बुद्ध विहार) बनवा दिया और उसके व्यय के लिए इंतजाम कर दिया। 'पावयुन' और 'सांगकिंग' भिक्खापात्र की पूजा कर चीन देश लौटने के विचार में थे कि 'हेता' भी जो 'हेकिंग' और 'तावचिंग' के साथ 'उद्यान' से ही 'नागर' को भगवान बुद्ध की छाया के दर्शन के लिए गया था, लौटकर पहुंचा। उसने कहा वहां 'हेकिंग' अस्वस्थ पड़ गया था और जब उसकी हालत सुधरती न दिखाई पड़ी तो 'तावचिंग' को उसकी सेवा के लिए छोड़कर हेता यहां लौट आया। पेशावर पहुंचने पर 'फाह्यान' आदि से मिलकर 'पावयुन' और 'सांगकिंग' तो 'हेता' के साथ चीन देश को लौट गए और 'फाह्यान' अकेला 'नागर' की ओर चल दिया।

'नागर प्रदेश' 'पुरुषपुर' के पश्चिम में पड़ता था। यात्री 'पुरुषपुर' से 16 योजन चलकर वहां के नगर 'हेलो' में पहुंचा। हेलो आजकल 'हिड्डा' कहलाता है और काबुल देश की सीमा के अंतर्गत 'जलालाबाद' से दक्षिण 5 मील की दूरी पर है। यहां भगवान बुद्ध के कपाल की एक हड्डी थी। वह एक सुंदर बुद्ध विहार में थी और नित्य उसकी पूजा बड़े विधान से होती थी। यहां कोई छोटा राजा भी था और एक बड़ा विहार भी था। उसके उत्तर में एक योजन पर 'नागर की राजधानी' थी। कहते हैं कि भगवान बुद्ध ने यहां पूर्व जन्म में, जब दीपंकर बुद्ध थे, तीन डालियां फलों की मोल लेकर उन्हें चढ़ाई थीं। वहीं भगवान बुद्ध का एक दांत भी था। 'नागर' के उत्तर पूर्व एक योजन पर एक दून पड़ता था। इसके मुहाने पर भगवान बुद्ध का दंड और भीतर उनकी संघाटी थी, तथा नागर के दक्षिण आधे योजन पर एक गुफा में भगवान बुद्ध की छाया (चित्र) थी। 'फाह्यान' ने लिपिबद्ध किया है कि "दस पग से अधिक दूर जाकर देखने से इसका साक्षात दर्शन होता है। परंतु ज्यों-ज्यों पास जाओ यह स्वप्नवत विलीन हो जाती है।" इसी के नजदीक उसे एक वृहत स्तूप और बुद्ध विहार भी मिले थे। उस स्तूप को उसने भगवान बुद्ध का रचा हुआ लिखा है।

'नागर देश' में 'फाह्यान' जाड़े की ऋतु में तीन महीने तक रहा। फिर 'फाह्यान', 'हेकिंग' और 'तावचिंग' साथ-साथ 'स्वेरत' पर्वत या 'सफेद कोह' पर चढ़े। वहां पहाड़ पर चढ़ते समय इतनी ठंडी और तीक्ष्ण वायु चली कि सबके सब ठिठुर गए। 'हेकिंग' बेचारा पहले ही से बीमार था। वह बेकाबू होकर गिर पड़ा। उसके मुंह से फेचकुर बहने लगा और वह मर गया। 'फाह्यान' और 'तावचिंग' बड़ी कठिनाई से 'सफेद कोह' पार करके 'लोए' जनपद में गए।

'लोए' प्रदेश 'सफेद कोह' के दक्षिण मूल ही में था। वहां उस समय 'फाह्यान' वर्षा ऋतु भर रह गया। 'लोए' प्रदेश में महायान और हीनयान दोनों के अनुयायी भिक्खु मौजूद थे। वर्षावास बिताकर 'फाह्यान' और 'तावचिंग' 10 दिन तक दक्षिण की ओर चलकर 'योना' में आए जिसे अब 'बन्नू' कहते हैं। यहां से फिर 3 दिन चलकर सिंधु नदी के पास पहुंचकर उस पुल पर उतरकर पार हुए।

पूर्वकाल में 'उद्यान' से लेकर सभी जनपद 'गांधार देश' के अधीन थे। 'फाह्यान' ने खुद आगे 39वें अध्याय में भारतीय पंडित व्याख्यान का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "भगवान बुद्ध का भिक्खापात्र पहले 'वैशाली' में था, अब 'गांधार' में है", यद्यपि उसने अपने यात्रा विवरण अध्याय 12 में लिखा है कि "भगवान बुद्ध का भिक्खापात्र भी इस 'पुरुषपुर' जनपद में है।" इससे भी स्पष्ट है कि ये सब जनपद 'गांधार' के अधीन थे अथवा गांधाराधिप के राजपुरुष उन पर शासन करते थे। 'पुरुषपुर' उसकी प्रधान राजधानी थी।

'सिंधु नदी' पार करके 'फाह्यान' और 'तावचिंग' 'पीतू जनपद' में आए। इस जनपद के भिक्खु उन्हें बाहरी देख बड़े अचंभे में आए और जब उन्हें उनसे पूछने पर यह पता चला कि वे 'चीन देश' के रहने वाले हैं और इतनी दूर धर्म और धर्मग्रंथों को ढूंढ़ते हुए आए हैं तो उन लोगों ने बड़े आश्चर्य से उनके साहस की सराहना की और उनसे बड़ी सहानुभूति प्रगट की।

यह प्रदेश उस समय 'सिंधु नदी' के इस पार जमुना के किनारे तक विस्तृत समझा जाता था। इस जनपद से होते हुए यात्री दक्षिण-पश्चिम की ओर अग्रसर हुए। मार्ग में उन्हें अनेक संघाराम (बुद्ध विहार) मिले जिनमें लाखों भिक्खु थे। इनमें से होते हुए वे 'मथुरा' में पहुंचे। कितने दिनों में

पहुंचे इसका कुछ भी पता हमारे यात्री के यात्रा-विवरण से नहीं चलता। 'मथुरा' में आकर उन्होंने विश्राम किया या नहीं इसका भी कुछ उल्लेख यात्रा में नहीं है और न कुछ 'मथुरा' का हाल ही लिखा है। हां, इतना मात्र जरूर मिलता है कि "यहां से दक्षिण-पूर्व दिशा में 80 योजन चले। एक जनपद में पहुंचे, जिसका नाम 'मथुरा' है। पुना (यमुना) नदी के किनारे-किनारे चले। दाहिने, बाएं 20 बुद्ध विहार थे, जिनमें तीन हजार से अधिक भिक्खु थे। बौद्ध-धम्म का अच्छा प्रचार अब तक है।" यात्रा विवरण में एक और वाक्य है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'गोबी की मरुभूमि' से इधर के देश या तो भारतवर्ष के अंतर्गत समझे जाते थे अथवा बुद्ध-धम्म का प्रचार और भारतीय आचार-विचार देखकर हमारे यात्री ने उन्हें भारतवर्ष के देश लिख डाला है। वह वाक्य यह है, "मरुभूमि से पश्चिम भारत के सभी जनपदों में जनपदों के अधिपति बौद्ध-धर्मानुयायी मिले।"

'फाह्यान' ने इस (मथुरा) दक्षिण के देश को मध्य देश[1] पालि लिखा है। उसने वहां की प्रजा को बड़ा ही शुद्धाचारी और धर्मनिष्ठ लिखा है। 'फाह्यान' के शब्द इस प्रकार हैं–

"प्रजा प्रभूत और सुखी है। व्यवहार की लिखा-पढ़ी और पंचायत कुछ नहीं है। वे राजा की भूमि जोतते हैं और उसका अंश देते हैं। जहां चाहें जाएं, जहां चाहें रहें। राजा न प्राण दंड देता है, न शारीरिक दंड देता है। अपराधी को अवस्थानुसार उत्तम साहस व मध्यम साहस का अर्थदंड दिया जाता है। बार-बार दस्यु कर्म करने पर दक्षिण करच्छेद किया जाता है। राजा के प्रतिहार और सहचर वेतनभोगी होते हैं। साथ ही देश में चांडाल के अतिरिक्त कोई निवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन, प्याज खाता है। दस्यु को चांडाल कहते हैं। वे नगर के बाहर निवास करते हैं और नगर में जा बैठते हैं तो सूचना के लिए लकड़ी बजाते चलते हैं, जिससे कि लोग जान जाएं और बचकर चलें, कहीं उनसे स्पर्श न हो जाएं। जनपद में सूअर और मुर्गी नहीं पालते, न ही जीवित पालतु पशु बेचते हैं, न कहीं सून और मद्य की दुकानें हैं। क्रय-विक्रय में कौड़ियों का व्यवहार है। केवल चांडाल मछली मारते, मृगया करते और मांस बेचते हैं।"

1. पालि भाषा में और बर्मा आदि देशों में भारत (जम्बुद्वीप) के लिए 'माज्झिमदेश' शब्द का प्रयोग किया गया है।

ऐसे देश से होकर दक्षिण-पूर्व 'मथुरा' से 18 योजन चलकर वे 'संकाश्य' नगर (वर्तमान संकिसा)[1] में पहुंचे। संकाश्य नगर फर्रुखाबाद के जिले में शमसाबाद के परगने में है। इसे अब 'संकसिया' कहते हैं। यहां अब तक विभिन्न विहारों और स्तूपों के चिह्न मिलते हैं। यहां दो अशोक धम्म स्तंभों के भी चिह्न हैं जिनमें से एक पर हाथी की मूर्ति अभी भी विद्यमान है। दूसरे स्तंभ का कहीं अतापता नहीं है। पर हाथी युक्त धम्म स्तंभ की मूर्ति वहां ही मिली थी।

कहते हैं कि भगवान बुद्ध जब इस लोक से त्रयस्त्रिंश लोक में अपनी माता (महामाया) को, जो उस स्वर्ग में देवयोनि में जनमी थीं, अभिधर्म का उपदेश करने गए थे और वहां वर्षावास पूरा करके इस लोक में अवतरित हुए थे, तो वहां से यहीं पर उतरे थे। जिस स्थान पर उतरे थे वहां सीढ़ियां बनी थीं, जिस पर महाराज अशोक द्वारा निर्मित विहार और दो पाषाण स्तंभ थे। वहां पर एक तीर्थ भी था जहां भगवान बुद्ध ने स्नान किया था। उनके चंक्रमणस्थान[2] पर तथा जहां केश-आदि कर्तन किए थे और बैठे थे, स्तूप थे। 'फाह्यान' ने इस स्थान के संबंध में एक और स्थान का उल्लेख इन शब्दों में किया है कि "यहां से पश्चिमोत्तर पचास योजन पर एक विहार है, जिसे 'आळवक' विहार कहते हैं। 'आळवक' नामक एक दुष्ट यक्ष था। भगवान बुद्ध ने उसे धर्मोपदेश दिया था। तदुपरांत लोगों ने उस स्थान पर विहार का निर्माण करवाया था। जब एक अर्हत को इस विहार को दान देने के लिए उसके हाथ पर पानी छोड़ने लगे तो पानी की कुछ बूंदें गिरी थीं। पृथ्वी पर उस जगह वे अब तक हैं, कितने ही बार पोंछी जाती हैं पर मिटती नहीं।" ये बातें 'फाह्यान' ने लोगों से सुनकर लिखी हैं। वास्तव में वह उस स्थान पर गया नहीं था। वहां एक नाग का विहार भी था।

'फाह्यान' ने इसी 'नाग विहार' में विहार किया था। नाग विहार संकाश्य नगर में उसी स्थान के आसपास था, जहां भगवान बुद्ध त्रयास्त्रिंश-लोक से शक्र और ब्रह्मा के साथ अवतरित हुए थे। 'नाग विहार' के संबंध में 'फाह्यान' ने लिखा है कि "इस स्थान के समीप एक 'श्वेत-कर्ण नाग' है।

1. यह स्थान वर्तमान में फर्रुखाबाद जिले में पड़ता है।

2. टहलने अथवा चहल-कदमी करने का स्थान जिसका आकार हाथ भर चौड़ा और 8 हाथ लंबा होता है–(संदर्भ–निदान कथा)

वही भिक्खुओं का दानपति है। जनपद में उसी से पुष्कल अन्न होता है, समयोचित वृष्टि होती है और ईतियां (बाधाएं) नहीं पड़तीं। इस उपकार के बदले में भिक्खुओं ने नाग के लिए विहार बना दिया है, उसके बैठने के लिए आसन कल्पित है, भोग लगता है और पूजा होती है। भिक्खुसंघ से हमेशा तीन लोग नाग विहार में जाते, और भोजन करते हैं। वर्षा बीतने पर नागराज कलेवर बदलता है। एक छोटा-सा संपोला बन जाता है जिसके कानों के पास सफेद बुंदकियां होती हैं। भिक्खुसंघ उसे पहचानते हैं। तांबे के कलश में दुग्ध भरते हैं और नाग को उसमें डालकर सब ऊंच-नीच के पास ले जाते हैं। यह कृत्य अकथनीय होता है। ऐसी यात्रा वर्ष में एक बार होती है।" यह अद्‌भुत बात कुछ बुद्ध की छाया से कम आश्चर्यजनक नहीं है। कुछ भी हो उस समय के लोग एकदम सीधे थे और सरलता से बातों पर भरोसा कर लेते थे। विदेशियों के यात्रा विवरणों में ऐसी बातों की कमी नहीं। स्वयं 'वर्नियर' और 'वर्नियर' की यात्राओं को जिन लोगों ने देखा है वे इसे भली-भांति जानते हैं। पंडे-पुरोहितों और पुजारियों का यह साधारण हथकंडा है कि वे अपने यात्रियों से ऐसी रोचक और डरावनी कथाएं प्रायः कहा करते हैं, जिससे वे उनके श्रद्धालु भक्त हो जाएं। एक बार की बात है कि मैं अपने एक मित्र के साथ 'काशी' में 'करवट' का दर्शन करने गया। मार्ग से ही दो दिन 'काशी' के छोकरों ने पीछा किया और वे उन्हें उस जगह पर ले गए। मेरे मित्र थे बड़े श्रद्धालु पर साथ ही कुछ कृपण भी थे। वहां पहुंचकर और दर्शन करके उन्होंने दो पैसे चढ़ाए। इसी बीच में एक और मनुष्य ने जो प्रायः उन्हीं का कोई सिद्धसाधक था पंद्रह रुपए लाकर उस स्थान के पुजारी के चरणों पर रख दिए और कहा कि महाराज मेरे मनोरथ सफल हो गए, यह मेरी पूजा है, ग्रहण कीजिए। पंडाजी ने झट अपने पास से चार पैसे निकालकर दिए और कपूर मंगाया। कपूर को जलाकर एक गहरे कुएं में छोड़ दिया। फिर हम लोगों को दर्शन करा कहा कि यहां चढ़ाने और प्रार्थना करने से सभी मनोरथ सफल होते हैं। यह कह वे रुपए उन्होंने उसी कुएं में छोड़ दिए। अब तो मेरे मित्र से न रहा गया, वे एक अठन्नी निकालकर डालने लगे। पंडा जी ने कहा भाई जैसा मनोरथ हो वैसा ही अपने वित्त के अनुकूल भीतर चढ़ाना। फिर तो मेरे मित्र ने अठन्नी अपनी गोट में रख ली और दो रुपए निकालकर कुएं

के भीतर डालकर पंडा जी के चरण पकड़े और चले आए। मैं भी उनके साथ बैठा सारा दृश्य देखता रहा। यही दशा अन्य तीर्थ-स्थानों की भी है। जब आजकल धूर्त पंडों की इतनी चल जाती है तो प्राचीनकाल में और विशेषकर विदेशियों को वे कितना मूड़ते होंगे, यह लोग समझ सकते हैं।

यहां 'फाह्यान' और उसका साथी 'तावचिंग' 'नाग विहार' में रहे और यहीं उन्होंने वर्षावास व्यतीत किया। फिर यहां से दक्षिण-पूर्व दिशा में 7 योजन चलकर वे 'कान्यकुब्ज' (वर्तमान में कन्नौज) में पहुंचे। कान्यकुब्ज नगर गंगा नदी के किनारे पर था। वहां उस समय दो संघाराम थे जिनमें हीनयानानुयायी भिक्खु रहते थे। यहां पर भगवान बुद्ध ने नगर से पश्चिम छह-सात ली पर अपने शिष्यों को संसार की असारता का उपदेश दिया था। वहां स्तूप बना हुआ था। 'फाह्यान' और 'तावचिंग' वहां से गंगा उतरकर दक्षिण तीन योजन पर 'आले' नामक ग्राम में पहुंचे। यहां पर भी भगवान बुद्ध के बैठने, चक्रमण करने और उपदेश करने के स्थानों पर स्तूप बने हुए थे।

'आले' का पता आज तक विद्वानों को नहीं चला है। गंगा को पार करने का उल्लेख यात्रा में है, पर दक्षिण जाने में गंगा नदी पार करनी नहीं पड़ती। यात्रा विवरण से यह भी अनुमान होता है कि इस यात्रा विवरण के लिए 'फाह्यान' कोई सूची अथवा नोट अपने यात्राकाल में साथ-साथ नहीं लिखता गया था, नहीं तो इतनी भूल न होती। मात्र स्मरण से उसने लिखा है व दूसरे को बतलाया था, जिसने इन विवरणों को लिखा।

'आले' से दक्षिण-पूर्व दिशा में 3 योजन पर 'साकेत' पड़ा। यहां भगवान बुद्ध ने दतुवन (दातुन) कर उसे जमीन में गाड़ दिया था। वह वहां लग गई थी। वहां पर यह भी संभव है कि 'फाह्यान' ने यह कथा भिक्खुओं से सुनी हो। वहां पर 'फाह्यान' ने चारों बुद्धों के बैठने के स्थान पर स्तूप भर देखे थे, जो उस समय वर्तमान में थे। साकेत संस्कृत ग्रंथों में 'अयोध्या नगरी' का नाम है। पर यदि 'फाह्यान' की बात ठीक मानी जाए तो यही क्या अन्य स्थानों का भी दिशा से पता लगाना कठिन हो जाए। दतुवन की बात जो इसमें लिखी है वह अयोध्या के दतुअन कुंड के बारे में प्रचलित दंतकथा से बहुत मिलती है। अंतर केवल यही है कि लोग भगवान बुद्ध के स्थान पर

रामचंद्र की दतुवन के साथ इस कथा का वर्णन करते हैं।[1] 'हुएन-च्वांग' के यात्रा विवरण में ऐसी ही एक कथा 'विशाखा' नामक स्थान के विषय में मिलती है। विशाखा और शांखें मिलते-जुलते शब्द भी हैं।

'साकेत' से दक्षिण आठ योजन चलकर दोनों यात्री 'श्रावस्ती' पहुंचे। 'श्रावस्ती' उस समय उजाड़ पड़ी थी, केवल 20 घर लगभग वहां आबाद थे। वहां विभिन्न स्तूप और विहार भी मिले। विश्व प्रसिद्ध जेतवन विहार के खंडहरों को यात्रियों ने देखा और वे अनेक भिक्खुओं से मिले, जिनसे उन्हें ज्ञात हुआ कि कभी उस जेतवन विहार के आसपास 98 विहार थे। यहां पर 'फाह्यान' ने भगवान बुद्ध के 96 मिथ्या दृष्टि वाले आचार्यों के साथ शास्त्रार्थ और धर्मचर्चा की कथा लिखी है। उन मिथ्या दृष्टियों के विषय में 'फाह्यान' लिखता है कि "मध्य देश में 96 मिथ्या दृष्टि वाले आचार्यों का प्रचार है। सभी लोक और परलोक को मानते हैं। उनके साधुसंघ हैं, वे भिक्खा मांगते हैं, केवल भिक्खापात्र नहीं रखते। सभी भिन्न-भिन्न प्रकार से धर्मानुष्ठान करते हैं। मार्गों पर धर्मशालाएं स्थापित हैं। वहां आने-जाने वाले को आवास, खाट, बिस्तर, खाना-पीना मिलता है। तभी सब लोग यहां आते-जाते हैं और वास करते हैं। सुनते हैं कि काल में कुछ अंतर है।"

96 पाखंडी कौन थे? इसका स्पष्ट पता नहीं चलता। पाखंड शब्द का प्रयोग धार्मिक संप्रदाय के अर्थ में 'कौटिल्य' के 'अर्थशास्त्र' और सम्राट अशोक के शिलालेख तक में है। 96 पाखंडों के इस देश में एक कहावत बहुत दिनों से चली आती है। सुंदरदास जी ने 'सर्वांगयोग ग्रंथ' में लिखा है–

इन बिन और उपाय है सो सब मिथ्या जान।
छह दर्शन अरु छयान्नवे पाखंड कहूं बखानि।
केचित कर्म स्थापहिं जैना।
केश लुंचाइ करहिं अति फैना ॥
केचित मुद्रा पहिरै कानं।
कापालिका भ्रष्ट मत जानं ॥
केचित नास्तिक वाद प्रचंडा।
तेतौ करहिं बहुत पाषंडा ॥

1. ऐसा बुद्ध के विरुद्ध प्रतिक्रांति करने वाले का प्रचार मात्र है।

केचित देवी शक्ति मनावैं।
जीव हनन करि ताहि चढावैं ॥
केचित मलिन मंत्र आरावैं।
वसीकरन उच्चाटन सावैं ॥
केचित मुये मसान जगावैं।
बंभन मोहन अविक चलावैं ॥
केचित तर्कह शास्तर पाठी।
कौशल विद्या पकरहिं काठी ॥
केचित वाद विविध मत जानैं।
पढि व्याकरण चातुरी ठानैं ॥
केचित कर धरि भिक्खा पावैं।
हाथ पोंछि जंगल को धावैं ॥
केचित घर घर मांगहि टूका।
बासी कूसी रूखा सूका ॥
केचित धोवन धावन पीवैं।
रहैं मलीन कहौ क्यों जीवैं ॥
केचित मता अघोरी लीया।
अंगीकृत दोऊ का कीया ॥
केचित अभष भषत न संकाहीं।
मदिरा मांत मांस पुनि खाहीं ॥
केचित वपुरे दूधाहारी।
षांड षोपरा दाख छोहारी ॥
केचित कर्कट बीनहिं पंथा।
निर्गुन रूप देखावहिं कंथा ॥
केचित मृग छाला बाघंबर।
करते फिरहिं बहुत आडंबर॥
केचित मेघाडंबर बैठे।
शीतकाल जलसाई पैठे ॥
केचित धूम पान करि भूले।
औंधे होइ वृच्छ सों झूले ॥

इसी प्रकार 'त्रिपिटक' के अंतर्गत 'दीघनिकाय' के 'ब्रह्मजाल सूत्र' में अनेक दार्शनिकों के सिद्धांतों और आचार-विचारों आदि का उल्लेख मिलता है। यहां पर भी 'फाह्यान' और 'तावचिंग' को देख कर साधुओं को बड़ा आश्चर्य हुआ और जब उन्हें पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे चीन देश से आए हैं तो उनके आश्चर्य की सीमा न रह गई। यहां पर 'छायागत बुद्धविहार' का उल्लेख जो 'फाह्यान' ने किया है वह भी सुन-सुनाकर ही किया होगा। 'देवदत्त' के भूमि में समा जाने की कथा भी कुछ कम आश्चर्यजनक नहीं है।

'श्रावस्ती'[1] का खंडहर अब तक 'गोंडा' जिले में 'बलरामपुर' के पास गोंडा और 'बहराइच' की सीमा पर है। उसकी अनेक बार खुदाई भी हो चुकी है और उस पर विंसेंट स्मिथ महोदय की आशंका बनी रही, फिर भी यह निश्चय है कि श्रावस्ती वही है। हर साल, लंका आदि बौद्ध देशों के हजारों-लाखों यात्री यहां दर्शन करने आते हैं। यहां जैनियों का भी तीर्थ स्थान है। यात्री जाकर 'बलरामपुर' के स्टेशन पर उतरते हैं। वहां से पैदल व एक्का (घोड़ा-गाड़ी) करके श्रावस्ती जाते हैं।

श्रावस्ती के निकट पश्चिम दिशा में 'फाह्यान' और 'तावचांग' को 50 ली पर 'तुवेद' नामक एक ग्राम मिला। वहां 'कश्यप बुद्ध' नाम के 'पच्चेक बुद्ध' (प्रत्येक बुद्ध) की अस्थियों पर स्तूप मिला। 'फाह्यान' ने इसे 'कश्यप बुद्ध' का जन्म स्थान लिखा है। इस जगह को अब 'टंडवा' कहते हैं। वहां से यात्री 'श्रावस्ती' लौट आए और फिर 'श्रावस्ती' से दक्षिण-पूर्व दिशा में चले गए। 12 योजन जाने पर उन्हें 'नेपी किया' मिला। यहां 'ककुसंध बुद्ध' का जन्म हुआ था। इस जगह का नाम बौद्ध ग्रंथों में 'नाभिक' और 'क्षेमावती' लिखा है। यहां भी उन्हें उनका परिनिर्वाण-स्तूप मिला। 'नाभिक' का खंडहर (भग्नावशेष) अब तक 'नेपाल' की तराई में मिलता है। वहां से उत्तर में एक योजन से कम चलकर 'कनक मुनि' का जन्मस्थान मिला। वहां भी स्तूप मिले। इसके भी खंडहर तराई में विद्यमान हैं। 'फाह्यान' ने इस ग्राम का नाम नहीं लिखा है। उस समय ये तीनों स्थान जिन्हें प्राचीन तीनों प्रत्येक बुद्धों का जन्म स्थान बतलाया जाता है, उजाड़ पड़े थे और स्तूप भी गिरे पड़े थे। 'फाह्यान' ने केवल इतना लिखा है कि "स्तूप बने हैं।" अन्यथा यदि स्तूप अच्छी दशा में होते तो वह लिखता कि "स्तूप अब तक पूर्ववत हैं।"

1. अब श्रावस्ती नाम का एक स्वतंत्र जिला बना दिया गया है।

नेपाल की तराई में 'सम्राट अशोक' द्वारा बनवाया एक धम्म स्तंभ भी था, पर उसका उल्लेख 'फाह्यान' ने कुछ भी नहीं किया है। उसका खंडहर फहरर महोदय को 'निगलिहवा' के समीप मिला था जिसका चित्र और विवरण उन्होंने अपनी रिपोर्ट में जो (Monograph on Buddha Sakya Muni's Birth-place in Nepal Tarai) सन् 1897 में छपी है, किया है। मूल केवल इतनी मात्र है कि 'श्रावस्ती' से यह स्थान उत्तर-पूर्व में है, दक्षिण-पूर्व में नहीं।

वहां से पूर्व एक योजन से कम दूरी पर 'कपिलवस्तु' नगर का खंडहर हमारे यात्रियों को मिला। वहां उस समय बिलकुल उजाड़ था। वहां केवल कुछ श्रमण ही रहते थे और दस घर स्थानीय निवासियों के (बाहर से आकर रहने वालों के) थे। वहां साधुओं ने उन्हें विभिन्न स्थल दिखलाए और उनके विषय में ढेर सारी बातें बताईं, जैसे यहां 'महामाया' के गर्भ में भगवान सफेद हाथी के रूप में आए, यहां 'असितमुनि' ने उनके लक्षण देखे, यहां उनके खेत-खलिहान थे, इत्यादि-इत्यादि। कपिलवस्तु के पूर्व में 50 ली पर उन्हें 'लुंबिनी' नामक 'वन' मिला। यहां भगवान बुद्ध का जन्मस्थान था। वह स्थान भी उस समय टूटा-फूटा पड़ा था। उसके भिन्न-भिन्न स्थानों के बारे में 'फाह्यान' ने जो कुछ सुना उसका उल्लेख अपनी यात्रा में किया है। 'लुंबिनी' नेपाल की तराई में 'भगवानपुर' के उत्तर में है। वहां 'सम्राट अशोक' का एक धम्म स्तंभ भी है जिस पर एक लेख है। 'फाह्यान' ने लिखा है कि 'कपिलवस्तु' जनपद जन-शून्य है। यहां पर निवासी बहुत कम हैं। मार्ग में सफेद हाथी और सिंह से बचने की आवश्यकता है। बिना सावधानी के जाने योग्य नहीं।" लेखक का मत है कि हम नहीं समझते कि सफेद हाथी की बात यात्री ने कहां से लिखी। हाथी और सिंह तो हो सकते थे। अब से दो सौ वर्ष पूर्व भी हाथी वहां मिलते थे और जंगल भी थे, पर श्वेत गज इस देश में नहीं होते। संभव है कि मिट्टी में लिपटे हाथियों के झुंड को देखकर 'फाह्यान' ने उन्हें सफेद हाथी समझ लिया हो।

'लुंबिनी' के स्थान का पता आजकल के विद्वानों को चल गया है। वह नेपाल की तराई में अब तक भी 'भगवानपुर' के पास है। वहां सम्राट अशोक का एक टूटा हुआ धम्म स्तंभ भी खड़ा है और उस पर अंकित लेख से यह प्रमाणित भी हो चुका है। यदि बौद्धों के ग्रंथों को प्रमाणभूत (प्रामाणिक) माना जाए तो 'कपिलवस्तु' का जनपद 'बाणगंगा' और 'राप्ति'

के मध्य में था। 'वाणगंगा' 'नेपाल की तराई' से निकलकर 'गोरखपुर' के पास 'राप्ति नदी' से मिलती है। अभी थोड़े ही दिन की बात है कि बस्ती जिले में 'पिपरहवा' के समीप एक प्राचीन स्तूप था और उसकी खुदाई पीपी महोदय ने, जो वहां के जमींदार हैं, कराई थी। उसमें से एक मजबूत (डिब्बी=मञ्जूषा) के भीतर भगवान बुद्ध का धातु रूप मिला था। उस पर अंकित लेख से यह प्रमाणित होता था कि वह स्तूप शाक्यों ने भगवान बुद्ध की उस धातु पर बनाया था जो उन्हें मल्लराज्य के कुशीनगर में भगवान बुद्ध की चिता की भस्म का अंश स्वरूप मिला था। इस स्तूप का निर्माण 'कपिलवस्तु' जनपद के मध्य करवाया गया था। यद्यपि यह कवि (लोकोक्ति) अति प्रसिद्ध है कि सम्राट अशोक ने आठों धम्म स्तूपों को तुड़वाकर भारतवर्ष में 84,000 स्तूप बनवाने चाहे थे और सात धम्म स्तूपों को ध्वंस करके 'रामस्तूप' को जो 'रामग्राम' में था ध्वंस करवाना चाहता था, पर किसी कारणवश उसे वह ध्वंस न करा सका और सातों धम्म स्तूपों के कुछ-कुछ धातुओं को लेकर उसने भारतवर्ष के विभिन्न धम्म स्तूप बनवाए। इस कथा पर लोगों का विश्वास भी बड़ा है पर या तो संभव है कि वह यही धम्म स्तूप हो जिसे सम्राट अशोक ने नहीं तुड़वाया था और जिसे यात्रियों ने 'रामस्तूप' लिखा, अथवा यदि वह यह नहीं तो कोई और स्तूप था, जो उसने सात क्या केवल छही धम्म स्तूपों को तुड़वाया और जब सातवें स्तूप पर जो 'रामस्तूप' था, पहुंचा तो उसे अनेक अड़चनें उठानी पड़ीं और उन्होंने उसे तथा शाक्यों के धम्म स्तूप को नहीं तुड़वाया। 'पिपरहवा' 'लुंबिनी' से आठ मील की दूरी पर है।

1. 'फाह्यान' विदेशी थे, वे यहां की सामाजिक, धार्मिक, संरचना से पूर्णतः परिचित नहीं थे। उन्हें लोगों ने जैसा बता दिया, वैसा ही उन्होंने लिख लिया। अतः यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध की शरीर धातु (अस्थियां) प्राप्त करने के लिए किसी धम्म स्तूप को गिरवाया नहीं था, अपितु महावंस नामक ग्रंथ के अनुसार उन्होंने सात स्तूपों से कुछ-कुछ अस्थियां निकालकर उन्हें 84,000 भागों में बांटकर उन पर 84 हजार धम्म स्तूप, चैत्य आदि बनवाए थे। जिन सात धम्म स्तूपों से भगवान के शरीर धातु प्राप्त किए गए थे, वे हैं–राजगृह का धम्म स्तूप, कपिलवस्तु का (शेष अगले पृ. पर) धम्म स्तूप, अल्लकप्प का धम्म स्तूप, रामग्राम का धम्म स्तूप, पावा का धम्म स्तूप, वैशाली का धम्म स्तूप, बेठद्वीप का धम्म स्तूप।

'कपिलवस्तु' के 'लुंबिनी' वन से पूर्व की ओर 5 योजन चलकर दोनों यात्री राम (रामग्राम) नामक जनपद में पहुंचे। यहां के धम्म स्तूप के विषय में 'फाह्यान' ने अद्‌भुत कथा लिखी है कि इस देश के राजा ने भगवान बुद्ध के धातु के अंश पर जिस धम्म स्तूप का निर्माण करवाया था, वह एक झील के किनारे था। उस झील में एक नाग रहता था, वही धम्म स्तूप की पूजा-वंदना करता था। सम्राट अशोक सात धम्म स्तूपों का ध्वंस कर इस आठवें धम्म स्तूप को भी खुदवाना चाहते थे पर नाग ने जब उसे नागलोक में ले जाकर पूजा की सामग्री दिखाई तो वह एकदम दंग रह गया और उसने उस धम्म स्तूप को नहीं गिरवाया। वहां काफी घना जंगल हो गया था और गज (हाथी) अपनी सूड़ों में जल भरकर धम्म स्तूप पर चढ़ाते और वहां सफाई भी करते थे। एक बार कहीं का कोई यात्री धम्म स्तूप के दर्शन के लिए आया, मार्ग में उसे हाथियों का एक झुंड मिला। यात्री उन्हें देखते ही डर के मारे वृक्ष पर चढ़ गया और वहां से देखता रहा। हाथियों ने अपनी सूंड में जल लाकर धम्म स्तूप पर छिड़का और फिर फूल तोड़कर लाकर चढ़ाए। हाथियों का यह कृत्य देखकर उसे बहुत ग्लानि हुई। वह भिक्खु हो गया और वहां सफाई करके रहने लगा। फिर वहां के राजा से निवेदन कर उसने वहां एक बुद्ध विहार बनवाया और स्वयं उस का संरक्षक बना। वहां तब से उसका संरक्षक एक श्रमण हुआ करता है। यह कथा 'फाह्यान' ने बुद्ध विहार के किसी व्यक्ति से सुनी, व वहां के संरक्षक से, इसका कुछ उल्लेख नहीं है। 'ह्वेनसांग' का कथन है कि इस स्तूप से धम्म प्रकाश निकलता था।

इस स्थान का पता अब तक नहीं लगा है। अधिक संभव है कि यह 'पिपरहवा' का स्तूप हो, पर उसका अंतर केवल आठ मील मात्र है। क्योंकि आज तक वही एक धम्म स्तूप मिला है जिसमें भगवान बुद्ध की धातु उस काल से अब तक ज्यों की त्यों रखी मिली है। यदि वह नहीं है तो अधिक संभव जान पड़ता है कि वह 'गोरखपुर' के कहीं आसपास में रहा हो। 'गोरखपुर' के आसपास बहुत से ताल भी हैं और स्वयं 'गोरखपुर' के पास भी 'रामगढ़ का ताल' और पास ही उसी नाम का एक जंगल भी है। ऐसा लगता है कि यह धम्म स्तूप यहीं कहीं रहा हो पर, ध्वस्त हो जाने से अब उसका पता नहीं चलता। अनेक पुराने खंडहर भी वहां देखने को मिलते हैं।

'रामग्राम' से होकर 4 योजन पर 'फाह्यान' और 'तावचिंग' को वह स्थान मिला, जहां से 'कुमार सिद्धार्थ' ने 'कपिलवस्तु' से घर छोड़कर जाते वक्त अपने अश्व (घोड़े) को जिसका नाम 'कंथक' था, 'छन्न' के हाथ 'कपिलवस्तु' को लौटाया था। वहां पर एक धम्म स्तूप था। इस स्थान का भी पता अब तक नहीं चला है।

वहां से 4 योजन और पूर्व में जाकर 'अंगार धम्म स्तूप' मिला। यह 'अंगार धम्म स्तूप' बौद्ध-धम्म के ग्रंथों के अनुसार 'पिप्पली वन' के मौर्यों का बनवाया धम्म स्तूप था। 'कुशीनगर' में भगवान बुद्ध की धातुओं का बंटवारा हो जाने के बाद वे पहुंचे थे, तो 'द्रोण भिक्खु' ने उन्हें भस्म के विभक्त हो जाने पर पात्र से चिता के अंगारों (कोयलों) को निकालकर दे दिया था। उसे लाकर उन लोगों ने धम्म स्तूप बनवाकर रखा। इस स्तूप का भी पता अब तक नहीं लगा है। संभव है कि सम्राट अशोक के तुड़वाए हुए सातों स्तूपों की गणना में यह भी रहा हो। यदि यह बात ठीक है तब तो 'रामग्राम' और 'कपिलवस्तु' के ये धम्म स्तूप बचे रहे थे। 'अंगार धम्म स्तूप' नवम् स्तूप था।

अंगार धम्म स्तूप से 12 योजन पूर्व जाकर कुशीनगर मिला। यहां भगवान बुद्ध महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए थे। यहां ही 'सुभद्र' नामक परिव्राजक को उन्होंने परिनिर्वाण शैय्या पर लेटते समय उपदेश दिया था और वह अर्हत हो गया था। यहां 'फाह्यान' को विभिन्न धम्म स्तूप और संघाराम मिले। नगर उस वक्त तक वीरान पड़ा था। केवल कुछ छिट-पुट श्रमणों के घर ही थे। इस वाक्य से यह ध्वनित होता है कि श्रमण गौतम गृहस्थ थे।[1] यह जगह 'गोरखपुर' कसबे के निकट है। वहां अब भी एक धम्म स्तूप है और संघाराम के चिह्न भी मिलते हैं। समीप ही भगवान बुद्ध की एक बड़ी लंबी (20 फुट की लेटी हुई) मूर्ति है जो उत्तर को सिर और दक्षिण को पैर किए लेटी हुई अवस्था में है। वहां आसपास में अनेक धम्म स्तूपों के अवशेष चिह्न और मूर्तियां भी देखने को मिलती हैं।

'कुशीनगर' से दक्षिण-पश्चिम दिशा में 12 योजन चलकर यात्रियों को वह स्थान मिला जहां से भगवान बुद्ध ने लिच्छिवी लोगों को 'कुशीनगर' की ओर महापरिनिर्वाण अवस्था में आते समय लौटाया था। यहां एक झील थी जिसके बारे में 'फाह्यान' ने लिखा है कि लिच्छिवी लोगों ने भगवान बुद्ध के साथ

1. नेपाल में गृहस्थ अब तक श्रमण हैं। वे बाड़व कहलाते हैं।

परिनिर्वाण-स्थल पर चलने की कामना की और भगवान बुद्ध ने न माना तो वे भगवान बुद्ध के साथ-साथ चले और नहीं लौटते थे, तब भगवान बुद्ध ने एक बड़ा ह्रद (जल कुण्ड) प्रगट किया जिसे वे पार न कर सके, फिर भगवान बुद्ध ने अपना भिक्खापात्र प्रतीक चिह्न स्वरूप देकर उन्हें वापिस लौटाया। इस जगह पर एक धम्म स्तंभ बना हुआ है। जिस पर एक आलेख खुदा हुआ है।

इस स्थान और धम्म स्तंभ का पता अब तक नहीं चला है। मुमकिन है कि सम्राट अशोक ने वहां कोई धम्म स्तूप बनवाया हो परंतु उसका भी पता नहीं है। डॉ. हे जी का यह अनुमान है कि यह कहीं 'सीवान' नगर के समीप होगा।

लिच्छिवी लोगों के लौटने के स्थान से 10 योजन पूर्व चलकर 'फाह्यान' और उसके साथी 'वैशाली' राज्य में पहुंचे। वैशाली नगर के उत्तर के एक जंगल में भगवान बुद्ध के रहने का विहार था। नगर में 'अंबपाली' का विहार उसे अच्छी दशा में मिला। नगर से दक्षिण में अंबपाली का आराम और उत्तर-पश्चिम 'धनुर्बाण-त्याग धम्म स्तूप' तीन-तीन ली के अंतर पर थे। नगर के पश्चिम में जहां भगवान बुद्ध ने आखिरी वक्त वैशाली से रवाना होते समय खड़े होकर कहा था कि "यह मेरी अंतिम विदाई है" उस स्थान पर एक पुराना स्तूप था। 'धनुर्बाण-त्याग धम्म स्तूप' के निकट ही भगवान बुद्ध ने आयुष्मान आनंद से कहा था कि मैं अब से तीन महीने पश्चात परिनिर्वाण अवस्था को प्राप्त होऊंगा। उस स्थान से 4 ली की दूरी पर पश्चिम वैशाली में आयोजित की गई धर्मसंगीति का स्थान था जहां भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के सौ वर्ष पश्चात त्रिपिटक साहित्य का फिर से संपादन किया गया था।

'वैशाली' नगर का खंडहर वर्तमान में बिहार प्रदेश के 'मुजफ्फरपुर' जिले के 'हाजीपुर' विभाग में 'वैसर गांव' के पास स्थित है। वहां सम्राट अशोक का एक धम्म स्तंभ भी है। यहां पर ही नगर की प्राचीर का चिह्न 1580 फुट लंबा और 750 फुट के घेरे में मिलता है।

'वैशाली' से पूर्व में 4 योजन पर पांच नदियों का संगम पड़ा। यहीं आयुष्मान आनंद ने परिनिर्वाण लाभ किया था। नदी के मध्य ही आयुष्मान आनंद ने अपने शरीर को साधना बल द्वारा भस्म किया था। उनके शरीर की भस्म के दो भाग हो गए, जिसका एक हिस्सा तो 'वैशाली के लिच्छिवी' लोगों ने लेकर अपने राज्य में धम्म स्तूप बनवाया और दूसरा मगध का राजा 'अजातशत्रु' अपने राज्य में ले गया और उस पर उन्होंने आलीशान धम्म स्तूप का निर्माण करवाया। यह

स्थान संभवतया वही स्थान है जहां 'सोनपुर की गुफाएं' स्थित हैं। वहां पर ही गंगा नदी, सोन नदी और गंडक नदी आदि नदियां आपस में मिली हैं।

यहां 'फाह्यान' और उसका साथी गंगा नदी के पार हुए और एक योजन दक्षिण चलकर 'पाटलिपुत्र' नगर में पहुंचे। पाटलिपुत्र का नगर पटना के निकट था। यहां 'फाह्यान' ने सम्राट अशोक के राजभवन को देखा। वह लिखता है कि "नगर में सम्राट अशोक का प्रासाद (महल) और संस्थागार (सभाभवन) हैं। सभी असुरों के द्वारा बनाए गए हैं। पाषाण चुनकर दीवार और द्वार बनाए गए हैं। जिन पर सुंदर खुदाई और पच्चीकारी की गई है। वैसा इस लोक के लोग नहीं बना सकते हैं। ये अब तक वैसे के वैसे ही हैं।" यहां उसने सम्राट अशोक के एक भाई की कथा भी लिखी है, जो अर्हत हो गया था और 'गृध्रकूट पर्वत' पर निवास करता था जिसके लिए राजा ने असुरों से नगर में पर्वत और गुफा (बराबर गुफा–सं.) बनवाई थीं। साथ ही उसने राध नामक एक ब्राह्मण बौद्ध का माहात्म्य (महिमा) और चरित भी लिखा है। 'फाह्यान' ने यहां एक ऐसे संघाराम का भी वर्णन किया है जहां 'मंजुश्री' नामक एक ब्राह्मण आचार्य निवास करता था उसके पास दूर-दूर के लोग विद्याभ्यास के लिए आते थे। यह संघाराम सम्राट अशोक के धम्म स्तूप के निकट ही था। इस देश के वैभव का वर्णन 'फाह्यान' ने इस प्रकार किया है, "मध्य देश में इस जनपद का यह सबसे बड़ा नगर है। यहां के निवासी संपन्न और समृद्धशाली हैं। दान और सत्य में स्पर्धालु हैं।" 'फाह्यान' ने यह भी लिखा है कि यहां बड़ी धूमधाम से रथयात्रा आयोजित होती थी। यह रथयात्रा विश्व प्रसिद्ध थी। सम्राट अशोक के पहले स्तूप के विषय में जो उसने 'पाटलिपुत्र' में बनवाया था, 'फाह्यान' ने लिखा है कि "पहला महा धम्म स्तूप जो उसने बनवाया नगर की दक्षिण दिशा में 3 ली से अधिक दूरी पर है। इस धम्म स्तूप के सामने भगवान बुद्ध के पद-चिह्न (बुद्धपाद) स्थापित हैं। धम्म स्तूप के दक्षिण में पत्थर का एक धम्म स्तंभ है। यह घेरे में चौदह-पंद्रह हाथ और ऊंचाई में 30 हाथ से अधिक है। उस पर यह वाक्य खोदा हुआ है, "अशोक राजा ने जंबुदीप चारों ओर के भिक्खुसंघ को दान कर दिया। फिर धन देकर खरीद लिया। यह संस्कार उन्होंने तीन बार किया।" स्तूप के उत्तर में 400 कदम पर सम्राट अशोक ने 'नेले' नाम से एक नगर बसाया था। 'नेले' नगर में पत्थर का एक धम्म

स्तंभ है, जो 30 हाथ से भी अधिक ऊंचा है, उसके ऊपर सिंह प्रतिमा निर्मित है। धम्म स्तंभ पर नगर बसने का हेतु, वर्ष, तिथि और मास खुदा हुआ है।

'पाटलिपुत्र' का खंडहर (भग्नावशेष) वर्तमान पटना के निकट महाशय रतनटाटा के उद्योग से खुदाई करने पर निकला है। अभी कुछ अंशमात्र का आविर्भाव हुआ है, शेष मिट्टी के नीचे ही दबा पड़ा है। सम्राट अशोक के राजभवन के कुछ अंशों को जो निकले, देखकर स्पूनर महोदय का यह विचार है कि उसकी बनावट ईरान के महलों के ढंग की थी और इसी आधार पर मौर्यों को भी ईरानी कहने में उन्होंने कुछ संकोच नहीं किया है। इतना यहां कहने की आवश्यकता है कि सम्राट अशोक ने अपने महलों को बनाने हेतु दूर-दूर के देशों से कारीगरों को बुलवाकर काम लिया था। उसमें ईरान के और यूनान तक के कारीगर अपनी कला का प्रदर्शन करने में लगे थे और विभिन्न प्राचीन वस्तुओं के नमूनों को लेकर उसका निर्माण कराया गया था। इसी से यात्रियों ने उसे असुरों का बनाया लिखा है। 'पाटलिपुत्र' नगर का उल्लेख पुराणों में नहीं है। इसे मगध के महाराज अजातशत्रु ने गंगा और सोन नदी के संगम पर बसाया था। पहले वहां लिच्छिवी लोगों को आगे बढ़ने से रोकने के लिए अजातशत्रु ने एक दुर्ग बनवाया था। दुर्ग उसके राज्यकाल में ही पूरा बन गया था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता पर नगर की पूर्ति उसके पुत्र उदयभद्द के काल में हुई। महाराज नंद के समय में मगध की राजधानी पाटलिपुत्र थी। नंद को ध्वंस कर चाणक्य[1] के उद्योग से चंद्रगुप्त मगध का अधिपति हुआ और उसने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। तब से निरंतर पाटलिपुत्र की अभिवृद्धि होती गई। चंद्रगुप्त के पोते सम्राट अशोक के काल में वहां अनेक भवन आदि और विशेषतया बुद्ध विहार और धम्म स्तूप बने। 'नेले' नगर का पता अब तक नहीं चला है। अधिक मुमकिन जान पड़ता है कि सम्राट अशोक ने इस नगर को उस समय बसाया हो जब वह बौद्ध-धम्म की दीक्षा लेकर गृहत्यागी बनकर अलग रहने लगा था। यह एक छोटा-सा ग्राम था। इसके समीप के धम्म स्तूप पर क्या खुदा था, ठीक उस गांव के बसाने का कारण और तिथि लिखी थी या नहीं, इसके बारे में हम कुछ भी नहीं कह सकते। मुमकिन है कि उस धम्म स्तूप पर अशोक के धर्माभिलेख रहे होंगे, जिसे 'फाह्यान' ने इस नगर के बसने का हेतु और

1. बहुत से इतिहासकारों ने चाणक्य को काल्पनिक एवं आरोपित (थोपा गया) पात्र माना है।

तिथि समझ लिया होगा। सम्राट अशोक के भाई का उल्लेख जो 'फाह्यान' ने किया है, वह महेंद्र' ही प्रतीत होता है और अधिक सटीक जान पड़ता है कि उसी के संबंध से अशोक की बौद्ध-धम्म पर प्रेम और श्रद्धा प्रकट हुई हो। उस समय 'फाह्यान' ने जो देश में औषधालयों और धर्मशालाओं का उल्लेख किया है वे संभवतया वे ही धर्मशालाएं और चिकित्सालय थे, जिन्हें सम्राट अशोक ने सारे राज्य में स्थापित किया था और जिनका वर्णन सम्राट अशोक के दूसरे अनुशासन में है। उस समय उन चिकित्सालयों का व्यय राज्य की ओर से नहीं मिलता था किन्तु श्रद्धालु सेठ और धनिक लोग ही उनके व्यय के लिए प्रबंध करते थे। जगह-जगह पर सड़कों और मार्गों का उल्लेख जो 'फाह्यान' के यात्रा विवरण में पाया जाता है प्रायः उन्हीं राजमार्गों का निर्देशक जान पड़ता है, जिन्हें सम्राट अशोक ने अपने काल में राज्यभर में बनवाया था और जिनका उल्लेख मगधराज सम्राट अशोक के धर्माभिलेखों में भी आया है।

'पाटलिपुत्र' से 'फाह्यान' और 'तावचिंग' दक्षिण-पूर्व की तरफ चले। 9 योजन चलने पर उन्हें एक पर्वत मिला। उस पर्वत की गुफा में देवराज शक्र ने भगवान भगवान बुद्ध के निकट आकर बयालीस प्रश्न भूमि पर रेखा खींच-खींच कर किए थे। 'फाह्यान' ने लिखा है कि ये लकीर[2] अब तक पत्थर पर बनी हुई हैं और यहां पर एक संघाराम भी मौजूद है। 'सुएनच्वांग' ने इस गुफा का नाम 'इंद्रशील' गुफा लिखा है। यह स्थान बोधगया से 36 मील की दूरी पर 'पंचाना नदी' के तट पर है। नदी के किनारे 'गिरियक गांव' के पास एक पर्वत की दो चोटियां हैं, जो नदी पर लटकी हुई हैं। इनमें जो अधिक उत्तर ओर की चोटी है उसका माथा चौकोर है। उस पर अनेक खंडहर भी दिखाई पड़ते हैं। देवराज शक्र के उन बयालीस सवालों का विवरण कल्पसूत्र में था जिसका अनुवाद 'कश्यप मातंग' ने चीन देश में जाकर 61 ई. में चीनी भाषा में किया था। सुत्तपिटक में भी अनेक स्थानों पर देवराज शक्र के सवालों के जवाब जो भगवान बुद्ध ने दिए थे, मिलते हैं। पर मुख्य ग्रंथ जिसमें इन बयालीस सवालों के जवाब का वर्णन

1. सिरीलंकाई मूल के बौद्ध ग्रंथ दीपवंस, महावंस और दिव्यावदान ग्रंथों के अनुसार महेन्द्र (महिन्द) सम्राट अशोक का पुत्र था, भाई नहीं।
2. यह संभव नहीं है कि जमीन पर लिखने मात्र से ये रेखाएं शताब्दियों तक कायम रहे। हमें तो यही लगता है कि कुछ श्रद्धालु जनों ने स्मारक के रूप में इन रेखाओं को पत्थर पर खुदवा दिया होगा।

उपलब्ध है और जिसका अनुवाद 'कश्यप मातंग' ने चीनी भाषा में किया था, अब तक वह पालि व संस्कृत भाषा में नहीं मिलता।

'इंद्रशील गुफा' से दक्षिण-पश्चिम में एक योजन चलकर वे एक ग्राम में पहुंचे, जिसका नाम 'नाल' (नालक) लिखा है। यह सारिपुत्त का जन्म स्थान था और यहीं उनको परिनिर्वाण भी प्राप्त हुआ था।

सारिपुत्त का परिनिर्वाण भगवान बुद्ध के जीवनकाल में ही हो चुका था। कहते हैं कि जब भगवान बुद्ध से सारिपुत्त को यह पता चला कि लोकनाथ का महापरिनिर्वाण होने को है तो सारिपुत्त ने निवेदन किया कि मैं यह घटना अपनी आंखों से न देखूं। यह बात उसने भगवान बुद्ध से तीन बार कही और भगवान बुद्ध की सहमति लेकर उनकी सौ बार परिक्रमा कर तथा तीन बार उनके चरण कमलों पर अपना मस्तक धर वह राजगृह की ओर परिनिर्वाण प्राप्त करने के लिए चला। नालंदा में अपने घर पहुंचने पर उसे परिनिर्वाण प्राप्त हुआ। सारिपुत्त का जन्मस्थान[1] 'उपतिष्य' नामक ग्राम पालि ग्रंथों में लिखा है। मुमकिन है कि नाल इसके पास ही का कोई ग्राम रहा हो अथवा 'नाल' ग्राम ही, उपतिष्य ग्राम हो। अथवा नाल वह ग्राम हो जहां सारिपुत्त और मौद्गल्यायन अपने आचार्य के पास विद्याध्ययन करते रहे हों। नाल ग्राम को 'फाह्यान' ने 'गिरियक' व 'इंद्रशील पर्वत' से दक्षिण-पश्चिम में एक योजन पर लिखा है, और 'सुएनच्वांग' ने भगवान बुद्ध के बोधिवृक्ष से 7 योजन पर। लंका वालों ने पालि ग्रंथों में बोधगया से नालंदा एक योजन पर लिखा है। हालांकि इन सभी पर विचार करते हुए नालंदा के स्थान को निश्चय करने में बड़ी कठिनाई होती है, फिर भी नालंदा का ठीक पता बहुत दिन हुए जनरल कनिंगम साहब ने पक्का कर दिया है। उसका खंडहर 'बड़गांव' (नालंदा) नामक स्थान के पास वर्तमान में है। यह 2,600 फुट लंबाई और 400 फुट चौड़ाई में है। पूर्वकाल में वहां एक महाविहार (विश्वविद्यालय) था जहां देश-देशांतर के विद्यार्थी विद्याध्ययन के लिए आते थे। 'फाह्यान' ने वहां केवल एक धम्म स्तूप का उल्लेख किया है, जो सारिपुत्त के परिनिर्वाण के स्थान पर बना हुआ था। 'सुएनच्वांग' का कथन है कि 'नालंदा' में एक बहुत बड़ा महाविद्यालय था। वहां उसने 'शीलभद्र आचार्य' से योग शास्त्र पढ़ा था।

1. सारिपुत्र का जन्म 'उपतिष्य' नाम के गांव में हुआ था, जिसे बाद में 'नाल' और फिर नालक कहा जाने लगा। वर्तमान में इसका नाम है—सारिचक—सं.।

यहीं पर उसने विभिन्न धर्म ग्रंथों का अध्ययन कर अपनी अनेक शंकाओं का समाधान कराया था। यहीं उसने व्याकरण शास्त्र और हिंदुओं के अन्य ग्रंथों का अध्ययन भी किया था। यह नालंदा का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय बिहार प्रांत में था और जिसके खंडहर अब भी मिलते हैं।

'नालंदा' से पश्चिम दिशा में एक योजन चलकर दोनों यात्री नवीन 'राजगृह' में पहुंचे। 'फाह्यान' ने इसे 'अजातशत्रु' का बसाया लिखा है पर अन्य इतिहासकारों का विचार है कि इस नगर को महाराज 'बिम्बिसार' ने बसाया था। चाहे 'अजातशत्रु' ने इसे अपनी राजधानी बनाकर इसकी अत्यधिक वृद्धि की हो पर इसकी नींव 'बिम्बिसार' द्वारा रखी हुई प्रतीत होती है। इस नगर में दो संघाराम थे और नगर के बाहर पश्चिम द्वार से 300 पग पर एक सुंदर धम्म स्तूप था, जिसे महाराजा 'अजातशत्रु' ने भगवान बुद्ध के उन शरीर धातुओं पर बनवाया था जो उसे 'कुशीनगर' में बंटवारे में मिले थे। मुमकिन है कि यह धम्म स्तूप उस समय ध्वंस्तावशेष (खंडहर) रहा हो। सम्राट अशोक ने निश्चित ही उसे गिरवाकर भगवान बुद्ध की धातु कुछ को निकलवा दिया होगा। नगर के दक्षिण द्वार से निकलकर दक्षिण की ओर 4 ली पर पांच पर्वत के बीच का दून मिला। यह दून बिल्कुल पर्वतों से परिवेष्टित है। इसी दून के मध्य में प्राचीन 'राजगृह' का नगर बसा था। महाराज 'बिम्बिसार' की पहले यही राजधानी हुआ करती थी। भगवान बुद्ध यहां प्रायः रहे थे। 'फाह्यान' का लिखना है कि नगर पूर्व-पश्चिम में पांच-छह ली और उत्तर-दक्षिण में सात-आठ ली लंबा चौड़ा था। यहां अनेक ऐतिहासिक घटनास्थलों का उल्लेख 'फाह्यान' ने किया है, जिनमें जीवक का विहार मुख्य है। यह विहार नगर के उत्तर-पूर्व कोण में 'अम्बपाली' के बाग में उसके पुत्र 'जीवक'[1] का बनवाया हुआ था। यह वहां पर उस समय तक विद्यमान था। नगर यात्रियों को यह स्थान वीरान मिला। उस समय वहां कोई नहीं रहता था। 'अजातशत्रु' अपने पिता के खिलाफ होकर प्राचीन नगर को छोड़ 'नव-राजगृह' में रहता था, और जब वह अपने पिता को बंदी कर स्वयं उनके स्थान पर बैठा, तो नवीन राजगृह को उसने अपनी राजधानी बनाया। फिर बिम्बिसार के परिनिर्वाण पर रही-सही प्राचीन राजधानी और भी अवनति को प्राप्त हो गई और नवीन राजगृह की शोभा में वृद्धि होने लगी।

1. जीवक अम्बपाली का नहीं सालवती का पुत्र था। अम्बपाली के पुत्र का नाम विमल-कोण्डिञ्य था, जो भिक्खु बन गया था—सं.।

दून में जाकर यात्री 'गृध्रकूट पर्वत' पर गए। उस पर्वत पर उन्हें दो गुफाएं मिलीं जिनमें भगवान बुद्ध और आयुष्मान आनंद दोनों बैठकर ध्यान करते थे। भगवान बुद्ध की गुफा चोटी पर से तीन ली इधर को पड़ती थी और आयुष्मान आनंद की गुफा इससे पश्चिमोत्तर दिशा में 30 कदम पर थी। यात्री घाटी में प्रवेश कर पर्वत के किनारे से पूर्व-दक्षिण की ओर 15 ली चढ़कर 'गृध्रकूट पर्वत' पर पहुंचे थे। 'फाह्यान' ने लिखा है कि "आयुष्मान आनंद उसमें बैठकर ध्यान करता था। देवमार पिसुन गृध का रूप धर आया और कंदरा के समक्ष आ बैठा। उसने आनंद आयुष्मान थेर को भयभीत किया। भगवान बुद्ध (अपनी) अलौकिक शक्ति से जान गए। उन्होंने पत्थर फोड़कर अपना हाथ निकाला और आयुष्मान आनंद का कंधा ठोका। तत्क्षण भय जाता रहा। पक्षी का पद-चिह्न और हाथ (निकालने) की दरार अब तक है। इसी से 'गृध्रकूट' इसका नाम पड़ा।" यहां उसे चारों बुद्धों के बैठने के स्थल और विभिन्न अर्हतों के ध्यान करने की गुफाएं मिलीं। वह लिखता है कि भगवान बुद्ध गुफा के सामने चंक्रमण कर रहे थे। 'देवदत्त' ने पर्वत के उत्तर में करारा-सा पत्थर फेंका। वह भगवान बुद्ध के पैर के अंगूठे में लगा। यह पाषाण अब तक है। लेगी महोदय ने नीचे टिप्पणी में लिखा है कि 'सुएनच्यांग' ने इस पत्थर को चौदह-पंद्रह हाथ ऊंचा और 30 पग गोल व मोटा लिखा है। पर हमने तो संपूर्ण 'सुएनच्यांग' का विवरण उलट मारा कहीं इसका पता तक न चला। हमीं को क्या प्रोफेसर समद्दार जी को भी इसकी सत्यता की कहीं गंध तक नहीं मिली है और न उन्होंने अपने बंगला अनुवाद में इसे टिप्पणी में ही लिखा है। 'फाह्यान' ने इस पर्वत के बारे में लिखा है कि "इस पर्वत का शिखर हरा-भरा और खड़ा है। यह पांचों पर्वतों में सर्वोच्च[1] है।" यहां 'फाह्यान' ने भगवान बुद्ध का धर्मोपदेश मंडप देखा। वह ढेर हो गया था और केवल ईंटों की नींव मात्र ही बची रह गई थी। यहां उसने भगवान बुद्ध के पद-चिह्न (बुद्धपाद) की पूजा पुष्प, धूप, दीप से की। सारी रात्रि दीप जलाया। सुरंगम सूत्र का पाठ किया और रात्रि विश्राम कर वह नए नगर को लौट गया।

1. ये हैं पांच पर्वतों के नाम—गृध्रकूट, वैभार, वेपुल्लगिरी, पाण्डवगिरी और इसिगिलि—सं.।

प्राचीन नगर से चलकर वे करंड-वेणुवन[1] विहार में गए। वेणुवन विहार वहां से उत्तर में 300 पग पर सड़क के पश्चिम की तरफ था। वहां कुछ भिक्खु रहते थे। वे ही विहार की साफ-सफाई करते थे। करंडवन वेणुवन विहार से फिर एक श्मशान[2] से गुजर कर 'पिप्पल गुफा' में गए। इस गुफा में भगवान बुद्ध भोजनांतर बैठकर ध्यान किया करते थे। वहां से पश्चिम में पांच-छह ली पर एक और गुफा पड़ी, जिसको 'सप्तपर्णी गुफा' कहते थे। इस गुफा में भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के अनंतर 500 अर्हत-भिक्खुओं ने प्रथम धम्म संगीति के माध्यम से त्रिपिटक का संगायन किया था। 500 की संख्या पूरी करने में एक अर्हत की कमी थी। उस समय तक आयुष्मान आनंद अर्हत नहीं हुए थे। (मगर संगीति से पहले वाली रात को वे अर्हत पद के लाभी हुए। इस प्रकार 500 अर्हतों की संख्या पूरी हुई।) वहां पर एक रम्य स्तूप बना था। 'फाह्यान' ने लिखा है कि "पूर्व के किनारे बहुत से अर्हतों के बैठकर ध्यान करने की विभिन्न गुफाएं हैं। उसे पुराने नगर से पश्चिम में जाकर तीन ली पर देवदत्त की गुफा मिली और उससे 50 पग पर एक बड़ी चौकोर शिला (चट्टान) मिली, जिस पर एक भिक्खु ने शरीर को अनित्य दुखमय और निस्सार समझकर स्वहत्या कर ली थी और अपना गला एक छुरी से काट डाला था। वह भिक्खु अर्हत होकर निर्वाण पद को पहुंचा था।"

ये सभी स्थल राजगृह के आसपास के पर्वतों में हैं। यहां यात्री कई दिनों तक रहे थे और उन्होंने अनेक दर्शनीय स्थानों के दर्शन भी किए थे।

'राजगृह' के खंडहर बिहार प्रदेश के पुरातत्व विभाग के अधीन हैं। प्राचीन 'राजगृह' का नाम कुशीनगरपुर था। 'सुएनच्वांग' ने इसे "किउशीलोपुलो" लिखा है। प्राचीन आलेखों में इसे गिरिव्रज लिखा गया है। गिरिव्रज का अर्थ पहाड़ों के मध्य का दून है। यह पांच पर्वतों के मध्य बसा हुआ था। इन पांच पर्वतों में एक 'वैभार' की पहाड़ी है, जिसे सप्तपर्णी गुफा के नाम से चीनी यात्रियों ने लिखा है। इसी का नाम पालि ग्रंथों में 'वैभार' गिरि है। द्वितीय पर्वत 'रत्नगिरि' है इसे 'फाह्यान' ने 'पिप्पल गुफा' लिखा।

1. *'करंड' लगता है यह नाम वेणुवन के अंतर्गत स्थित कलंदकनिवाप के लिए प्रयोग किया गया है–सं.।'*
2. *इस श्मशान को कालांतर में कब्रिस्तान का रूप दे दिया गया, जो वर्तमान कलंदकनिवाप में आज भी मौजूद है।*

इसी को पालि ग्रंथों में 'पंडव' नाम से लिखा गया है। तृतीय पर्वत का नाम 'विपुल' है। इसे पालि ग्रंथों में 'वेपुल्लो' लिखा है। शेष दो छोटे-छोटे पर्वत हैं।

प्राचीन राजगृह के वे चिह्न 5 मील के घेरे में अब भी विद्यमान हैं। डॉ. बुकनन महोदय की सहमति है कि दुर्ग में पश्चिमोत्तर के कोने में एक नगर बसा था। दक्षिण-पश्चिम दिशा में एक नवीन दुर्ग के चिह्न मिलते हैं, जिसके किनारे पत्थर की प्राचीर बनी थी। पूर्व और उत्तर दिशा में परिखा नहीं है। किन्तु 12 हाथ मोटी पत्थर की दीवार है। पूर्व दिशा से प्रवेश का अवरोध एक मोटी सुदृढ़ पाषाण की दीवार से किया गया था, जो 13 हाथ मोटी थी और टेढ़ी-मेढ़ी होकर दक्षिण के पर्वत से मिल गई थी। भीतर दुर्ग 600 गज के घेरे में था। नगर के दक्षिण में कुछ पत्थर पर खुदा हुआ है, जिसे आज तक लोग नहीं पढ़ सके हैं। नवीन राजगृह प्राचीन 'राजगृह' से पौन मील उत्तर दिशा में है।

उस पत्थर से, जहां पर भिक्खु अपना गला काटकर अर्हत हो निर्वाण को प्राप्त हुआ था, पश्चिम चार योजन चलकर दोनों यात्री 'गया' में पहुंचे। नगर के भीतर सुनसान और उजाड़ मिला। वहां से दक्षिण में 12 ली पर वह स्थल मिला, जहां भगवान बुद्ध ने 6 वर्ष तक घोर तपश्चर्या की थी। वहां उस समय घना जंगल था। उस जंगल के पश्चिम में 3 ली पर वह जलाशय (मुचलिंद झील) पड़ा, जहां भगवान बुद्ध तपश्चर्या छोड़कर स्नान करने के लिए गए थे और कमजोरी के कारण निकलकर किनारे पर चढ़ते वक्त गिर पड़े थे और बड़ी कठिनाई से एक पेड़ की शाखा पकड़कर बाहर निकले थे। 'फाह्यान' ने लिखा है कि "एक देवता ने वृक्ष की डाली झुकाई थी।" उससे उत्तर में 1 ली पर वह स्थान पड़ा जहां गांव की लड़कियां (सुजाता और उसकी दासी पूर्णा) भगवान बुद्ध को खीर खाने के लिए दे गई थीं। उससे भी उत्तर में 2 ली पर वह स्थान पड़ा, जहां वृक्ष के नीचे पूर्वाभिमुख पाषाण की शिला पर बैठकर उन्होंने खीर खाई थी। 'फाह्यान' ने लिखा है कि वह वृक्ष और शिला अब तक मौजूद हैं। शिला की लंबाई चौड़ाई 6 हाथ और ऊंचाई 2 हाथ है। उस स्थान से आधा योजन पूर्वोत्तर में जाने पर एक कंदरा मिली जिसमें भगवान बुद्ध ने बैठकर अपने बोधिज्ञान लाभ करने के विषय में विचार किया था। वहां पर शिला की छाया दिखाई पड़ी थी। 'फाह्यान' लिखता है कि वह "तीन हाथ से अधिक ऊंची अब तक चमकती है।" यहां देवताओं से यह सूचना पाकर कि यह वह स्थान नहीं है

जहां बुद्ध लोग बोधिज्ञान प्राप्त करते हैं, भगवान बुद्ध आगे चले। देवताओं द्वारा मार्ग बतलाने पर वे वहां से पश्चिम और पीपल के पेड़ (बोधिवृक्ष) की ओर चले थे। मार्ग में 30 कदम जाकर उन्हें किसी कुश उखाड़ने वाले (सोत्थिय नामक घसियारा) ने कुश के आठ पूले दिए थे। 'फाह्यान' ने लिखा है कि यह भी एक 'देवता' था। फिर आगे 15 पग जाने पर 'फाह्यान' का कहना है, "500 हरे पक्षी (तोते) उड़ते हुए आए, बोधिसत्व के तीन चक्कर लगाए, और चले गए।" हरे पक्षी से संभवतया उसका अभिप्राय तोतों से जान पड़ता है क्योंकि वहां तोते अक्सर धांग (पंक्ति) बांधकर उड़ते हैं। फिर बोधिवृक्ष मिला। 'फाह्यान' ने उसे 'पत्र' वृक्ष लिखा है। संभवतया यह 'चलपत्र' होगा। संस्कृत भाषा में 'चलपत्र' पीपल के वृक्ष को कहते हैं। यहीं पर 'मार' ने उनके 'बोधिज्ञान' के प्राप्त करने में अवरोध डालना चाहा था, पर वह असफल होकर भागा था और यहीं उन्हें बोधिज्ञान लाभ हुआ था। इन स्थलों पर बहुत से स्तूप बने थे और मूर्तियां स्थापित थीं। 'फाह्यान' का कहना है कि "वे अब तक हैं।" बोधिज्ञान लाभ करने के स्थान पर उसे तीन संघाराम मिले और सब में भिक्खु मौजूद थे। भगवान बुद्ध के विभिन्न लीलास्थलों पर जैसे 'चंक्रमण स्थान', ध्यानस्थानादि पर धम्म स्तूप बने थे। भिक्खुओं के बारे में 'फाह्यान' का कथन है, "भिक्खुसंघ सभी जरूरी पदार्थ दे देते हैं किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। विनय का यथार्थ पालन करते हैं। बैठने-उठने और संघ में जाने के आचार-व्यवहार उसी विनय (नियम) के अनुसार हैं जैसे भगवान बुद्ध के समय में थे। भिक्खुसंघ हजार वर्ष से अब तक चला आ रहा है।" वहां दक्षिण में तीन ली पर 'कुक्कुट पाद' व 'गरुड़पाद पर्वत' पड़ा। यहां 'महाकश्यप' का स्थान था। 'फाह्यान' ने लिखा है कि 'महाकश्यप' अब तक इस पर्वत पर निवास करते हैं। वे पर्वत की दरार में प्रवेश कर गए हैं। प्रवेश के स्थान में मनुष्य की समाई (प्रवेश) नहीं है। नीचे उतरकर दूर किनारे पर एक बिल (गुफा) है। कश्यप सदेह उसमें (रहते) हैं। वहां की मिट्टी के विषय में 'फाह्यान' लिखते हैं कि 'बिल पर 'महाकश्यप' ने हाथ धोए थे। आसपास के लोगों के सिर में घाव लगता है तो यहां की मिट्टी लगाकर वे चंगे हो जाते हैं।' यह बात उसने सुनी-सुनाई लिखी है जो वहां के भिक्खुओं ने कही होगी। पर्वत में उसने अनेक अर्हतों का रहना लिखा है। उसका कथन है कि "आसपास के सारे जनपद के

बौद्ध लोग यहां आकर साल-दर-साल 'महाकश्यप' की पूजा करते हैं। धर्म के श्रद्धालुओं के पास रात्रि में अर्हत आते हैं, बातचीत करते हैं, शंकाओं का समाधान करते हैं और अंतर्धान हो जाते हैं।" यह बात वैसी ही है, जैसे अब तक लोग 'झूसी' और 'गिरनार' आदि के सिद्ध के विषय में कहा करते हैं व 'हरिद्वार' आदि के महात्माओं के बारे में मन-गढंत गढ़ते हैं, पर आज तक वे किसी को नहीं मिले। लोग सीधे-सादे लोगों को इस प्रकार की बातों में फांसकर अपना स्वार्थ साधा करते हैं व आतंक और महत्त्व जमाते हैं। यदि तनिक भी यह कह दो कि यह बात संभव नहीं है व मिथ्या है, फिर क्या है, आप नास्तिक हैं, विधर्मी हैं, यह कलियुग है इन बातों से ही तो यह दुर्दशा है, इत्यादि अनेक प्रकार के आरोपों की बौछारें होने लगती हैं। खेद का विषय है कि ऐसी बातें कहने वाले अपने आचरण की तरफ जरा भी दृष्टिपात नहीं करते हैं कि वे कितने कलुषित और वंचकता (धोखेबाजी, धूर्तता) से भरे हैं जिनसे बेचारे यात्रियों के आचरण और उनकी बातों को न मानने वालों की चाल-ढाल कहीं पवित्र और सरल है। हाय! ऐसे ही लोगों की चाल से पवित्र तीर्थों की महिमा दिनों-दिन कम होती जा रही है। ये लोग सुंदर फूल के कांटे की तरह हो रहे हैं जिनके आतंक से कोई अपने पवित्र तीर्थ स्थानों और प्राचीन स्थलों को जाकर आनंदपूर्वक उनका दर्शन भी नहीं कर सकता।

ये सभी स्थल 'बोधगया' के आसपास के हैं जिनके खंडहर अब तक बोधगया में विद्यमान हैं। 'हर्ष पर्वत' और 'शोभानाथ' के मध्य, तथा 'कुर्कीहार' से सात मील उत्तर-पूर्व में बौद्धों के अनेक खंडहरों के चिह्न मौजूद हैं। जेठियां, कोंच, डोंगरा पहाड़ी में भी अनेक खंडहर मिलते हैं। 'गुनेरी' में बुद्ध की अनेक मूर्तियां हैं और यहीं पर एक संघाराम के चिह्न मिलते हैं। इनके अलावा अन्यत्र भी संघारामों, गुफाओं और बुद्ध विहारों के चिह्न मिलते हैं।

'गुरुप्पा' व 'गरुड़पाद' से 'फाह्यान' 'पाटलिपुत्र' की ओर फिरा और 'गंगा नदी' के किनारे पश्चिम-उत्तर दिशा में 10 योजन पर उसे 'अनालय' नामक बुद्ध विहार मिला। यह अनालय 'बलिया' के आसपास में था। 'बलिया' के गजटियर ने लिखा है कि 'फाह्यान' ने जिसे 'अनालय' व 'आरण्य' और सुएनच्वांग ने जिसे 'अविद्धकरण' लिखा है वह स्थान बलिया नगर के निकट था और अब वह 'ओयना' कहलाता है। यहां खंडहर है, पर 'कारलायल' महोदय ने इसे 'गड़हा' परगना में 'नारायणपुर' मानने पर बल दिया है।

संभव है कि 'तावचिंग' 'गरुड़पाद' से थोड़ी दूर साथ चलकर पाटलिपुत्र को चला गया अथवा 'गया' ही में रह गया। 'फाह्यान' ने खुद छत्तीसवें अध्याय में लिखा है कि तावचिंग' जब मध्य प्रदेश में पहुंचा और उसने श्रमणों को देखा तथा उसे संघ का उत्कृष्ट आचार-व्यवहार और बात-बात में विनय का अनुसरण मिला तो 'तावचिंग' को चीन के भिक्खुसंघ के अधूरे और विच्छिन्न विनय का स्मरण आया। उसने प्रतिज्ञा करके कहा कि अब से जब तो बुद्ध न होऊ, प्रांत की भूमि में जन्म न लूं। फिर वह वहीं रह गया और न लौटा। ये बातें देखकर यह दृढ़ विश्वास होता है कि 'तावचिंग' 'पाटलिपुत्र' कभी भी नहीं गया बल्कि 'बोधगया' में ही रह गया था, जहां के बोधिज्ञान प्राप्त होने के संघाराम के भिक्खुओं के विषय में स्वयं 'फाह्यान' 31वें अध्याय में यह लिख चुका है कि वे 'विनय का यथार्थ पालन करते हैं। बैठने-उठने और संघ में जाने के आचार-व्यवहार' उसी नियम के अनुसार हैं जैसे भगवान बुद्ध के समय में थे। संघ 1,000 वर्षों से निरंतर चला आ रहा है।' वहीं पर 'तावचिंग' का ऐसा दृढ़-विश्वास करके कि जब तक बुद्ध न होऊं प्रांत की भूमि में जन्म न लूं, रह जाना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। अस्तु।

'अनालय' से गंगा के किनारे चलकर 'फाह्यान' को 'वाराणसी' जनपद का नगर 'काशी' मिला। नगर से पश्चिम में 10 ली पर 'ऋषिपतन मृगदाव' (पालि=इसिपत्तन मिगदाय) का विहार था। यहीं पर भगवान बुद्ध ने 'धर्मचक्र प्रवर्तन' किया था। यहां अनेक धम्म स्तूप मिले, वे स्तूप उस समय तक विद्यमान थे और भीतर दो संघाराम थे। जिनमें भिक्खुगण रहते थे।

'वाराणसी' जनपद का नगर उस समय 'काशी' ही कहलाता था। काशी के निकट ही 'मृगदाव' था। 'फाह्यान' ने 'मृगदाव' को नगर से दस ली उत्तर-पूर्व लिखा है। 'मृगदाव' को अब 'सारनाथ' कहते हैं। नगर का कुछ विशेष वर्णन न लिखने से पता चलता है कि वह काशी में नहीं आया था। 'सारनाथ' में अब भी 'धम्मेख' अर्थात 'धर्मचक्र स्तूप' है। वहीं एक संघाराम का चिह्न भी है। आसपास अनेक छोटे-छोटे धम्म स्तूपों के चिह्न हैं। यहां उसने अनेक विभिन्न स्तूप देखे।

'वाराणसी' का चित्रण करने के साथ ही 'फाह्यान' ने कुछ वर्णन 'कौशांबी' (पालि=कोसम्बी) का और विशेष उल्लेख दक्षिण का किया है। कौशांबी में उसने 'गोक्षीर विहार' का उल्लेख किया है। पालि बौद्ध ग्रंथों से

1. विनयपिटक में इन्हें 'सेखिय' कहा गया है।

यह पता चलता है कि 'कौशांबी' में 'घोसित', 'कुक्कुट' और पावारिक नाम के तीन सेठ थे। ये तीनों 'श्रावस्ती' में 'भगवान बुद्ध' के समीप उन्हें वर्षावास के लिए आमंत्रित करने गए थे। इन तीनों ने उनके लिए एक-एक विहार का निर्माण करवाया था। कुछ विहार का नाम पालि ग्रंथों में 'कुक्कुटाराम' के रूप में किया था। जान पड़ता है कि 'फाह्यान' ने उसी को गोशिर (घोसित) का विहार लिखा है जो उच्चारण-भेद से गोशिर, गोक्षीर, अथवा गोक्षीर हो गया हो। 'कौशांबी' का खंडहर अब तक इलाहाबाद के जिले में जमुना के तट पर है। उस स्थल का जहां पर खंडहर है अब उसे 'कोसम' कहते हैं। वहां दो गांवों में, जिन्हें 'कोसम-इनाम' और 'कोसम-खिराज' कहते हैं, खंडहर मिलते हैं। वहां एक धम्म स्तूप भी था। 'फाह्यान' ने 'कौशांबी' के संबंध में केवल एक गोशिर विहार अथवा 'गोक्षीर' विहार का ही वर्णन किया है, पर 'युएनच्वांग' ने लिखा है कि यहां दस संघाराम हैं, जिनमें 300 भिक्खु रहते हैं। नगर के भीतर एक प्राचीन बुद्धविहार है जिसमें भगवान बुद्ध की एक प्रतिमा है, जो चंदन की बनी हुई है। उस पर पाषाण का एक छत्र है जिसे 'उदयन राजा' ने बनवाया था। भवन के दक्षिण में एक खंडहर है, जो गोशिर के रहने का घर है। नगर से कुछ ही दूरी पर दक्षिण में एक विहार है जिसे गोशिर के माली ने बनवाया था। इसमें 200 फुट ऊंचा धम्म स्तूप है। इसे 'सम्राट अशोक' ने बनवाया था। इस धम्म स्तूप के दक्षिण में एक 'दोतला स्तूप' है। वहां आचार्य वसुबंधु ने (न्याय) विद्या-सिद्ध शास्त्र' रचा था।[1] इसके दक्षिण में एक अंबवन (आम का बाग) है। वहां एक खंडहर है। वहीं पर आचार्य 'असंग' ने एक और ग्रंथ रचा था जिसका नाम प्रकरण-वाक्य-शास्त्रकारिका था।[2] इससे भी यह अंदाजा दृढ़ होता है कि 'फाह्यान' 'कौशांबी' नहीं गया था, केवल 'सारनाथ' में जो कुछ यात्रियों से सुना और उसमें जितना वह समझ सका उसने उसे लिख दिया है। इसके अलावा 'यक्ष' को भगवान बुद्ध ने जहां उपदेश दिया था उस स्थल को 'फाह्यान' ने 'कौशांबी' से 8 योजन पर लिखा है, पर वह स्थान जनरल 'कनिंघम' महोदय के अनुसार से 'पभोसा' है, जो 'कोसम'

1. आचार्य वसुबंधु के ज्ञात 55 ग्रंथों में इस नाम का कोई ग्रंथ नहीं है। लगता है कहीं कोई चूक हो गई है।
2. हमें आचार्य असंग द्वारा रचित 31 ग्रंथों में इस ग्रंथ का नाम नहीं मिला है। लगता है यह अनुवादकीय चूक है।

से केवल चार मील पश्चिम की ओर है। इसके अतिरिक्त यदि 'फाह्यान' 'कौशांबी' की ओर वास्तव में गया होता तो अधिक नहीं तो कुछ न कुछ 'प्रयाग' का जरूर वर्णन करता क्योंकि 'सारनाथ' से 'कौशांबी' जाते हुए उसे प्रयाग अवश्य मार्ग में पड़ता।

दक्षिण का वर्णन तो उसने अश्रुतपूर्वक (बिना सुने) ही किया है। 'कश्यप बुद्ध' के 'पारावत विहार' का वर्णन तो 'न भूतो न भविष्यति' है। यह तो देखने से अविश्वसनीय प्रतीत होता है। यह उस वर्णन से कुछ कम नहीं है जो आज से चालीस-पचास साल पूर्व पहले 'बंगाल' और 'कामरूप' से लौटते हुए यात्री वहां के मंत्र-तंत्र के विषय में किया करते थे। ऐसा अनुमान होता है कि दक्षिण की बातें उसने दक्षिण के किसी यात्री से सुनकर लिखी हैं और वह यात्री भी सामान्य मानव नहीं रहा होगा, कोई महाधूर्त था जिसने 'अजंता' की गुफा अथवा दक्षिण के किसी अन्य प्राचीन बुद्धविहार को देखा था व उसके वर्णन को किसी दूसरे से सुनकर सीधे-सादे विदेशी भिक्खु के लिए वर्णन किया था।

'फाह्यान' 'वाराणसी' से पूर्व की ओर लौटकर 'पाटलिपुत्र' चला आया। इस वाक्य से भी यही स्पष्ट प्रामाणित होता है कि 'फाह्यान' 'कौशांबी' नहीं गया था और उसने जो कुछ वहां के विषय में उल्लेख किया है वह सुनी-सुनाई बात है।

'फाह्यान' के भारतवर्ष आने का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्मग्रंथों की प्रतियों को एकत्रित (उनकी प्रतिलिपि तैयार) करके उन्हें स्वदेश ले जाना ही था। पांच साथियों में दो मध्य देश तक पहुंचे थे। 'पाटलिपुत्र' में लौटकर उसने प्रतियों की खोज करना आरंभ किया। जहां उसने देखा सभी जगह मौखिक शिक्षा आचार्य लोग गुरुपंरपरा से देते चले आते थे। वह शोकमग्न होकर लिखता है कि "इतनी दूर चलकर मध्य देश (भारत) आया। यहां महायान के संघाराम में एक निकाय का 'विनय' मिला अर्थात् महासंघिक निकाय का विनय।" 'फाह्यान' ने अट्ठारह निकायों का उल्लेख किया है। इसे भूल अथवा भ्रमवश अनुवादकों ने 'संप्रदायः' लिखा है। बौद्धों में निकाय वैसे ही हैं जैसे हिंदुओं में वेदों की शाखाएं। जिस प्रकार हरेक शाखा की संहिता और ब्राह्मण पृथक-पृथक हैं और कितनी शाखाओं में संहिता एक होते हुए भी ब्राह्मण में भेद है, यदि संहिता और ब्राह्मण एक हैं तो उनके श्रौत-स्मार्त सूत्र में भेद हैं, वैसे ही बौद्धों के निकाय थे। निकाय दर्शन-भेद नहीं थे किंतु

कर्मकांड के भेद थे। बौद्ध-धम्म में मुख्य निकाय चार थे। उन्हीं के भेद अट्ठारह होकर, 'अट्ठारह निकाय' कहलाते थे। वे चारों मुख्य निकाय ये थे–

1. **'आर्यसंघिक' निकाय**–इस निकाय के आवांतर भेद सात हो गए थे, जो पृथक-पृथक निकाय के नाम से प्रख्यात थे।

2. **'आर्यस्थविर' निकाय**–इसके भी आवांतर निकाय तीन थे।

3. **'आर्यसम्मति' निकाय**–इसके चार आवांतर निकाय थे।

4. **'आर्यसर्वास्तिवाद्' निकाय**–इसके भी चार आवांतर निकाय थे।

ये आवांतर निकाय ही उस वक्त 'अट्ठारह निकाय' कहलाते थे। इनके विनय में भी कुछ क्रमभेद, पाठभेद और क्रिया-कलाप भेद था। इन चारों निकायों के **त्रिपिटक के सूत्रों**/गाथाओं (श्लोकों) की संख्या भी निम्नलिखित थी–

1. आर्य संघिक निकाय	1,00,000
2. आर्यस्थविर निकाय	1,00,000
3. आर्यसम्मति निकाय	2,00,000
4. आर्यसर्वास्तिवाद् निकाय	ज्ञात नहीं।

'पटना' में रहकर 'फाह्यान' ने 'विनयपिटक' की बड़ी खोज की और कड़ी मेहनत से उसे यहां निम्नलिखित ग्रंथ हाथ लगे–

1. **'महासंघिक निकाय'** का विनय पिटक
2. एक और अज्ञात निकाय का विनय (नाम नहीं दिया है)
3. **'सर्वास्तिवाद् निकाय'** का विनय पिटक
4. **संयुक्त धर्म हृदय**
5. एक और अज्ञात निकाय का **सूत्र पिटक**
6. परिनिर्वाण वैपुल्य सूत्र
7. महासंघिक निकाय का **"अभिधर्म पिटक"**

'पटना' में रहकर 'फाह्यान' ने मात्र ग्रंथों को एकत्र ही नहीं किया अपितु तीन साल वहां रहकर उसने संस्कृत के ग्रंथों का अभ्यास किया और विनय पिटक की प्रतिलिपि तैयार करके ली।

संस्कृत भाषा में ज्ञान प्राप्त कर तीन साल पश्चात 'फाह्यान' ने जब देखा कि 'ताओचिंग' अब अपने देश न जाएगा तो वह गंगा नदी के किनारे-किनारे पूर्व दिशा में चला, ताकि समुद्र से होकर अपने देश को लौट सके। 18 योजन पर उसे गंगा पार करने पर चंपा का देश मिला। वहां भगवान बुद्ध के चंक्रमण स्थल पर एक बुद्ध विहार बना हुआ था। उसमें उसे कुछ भिक्खु भी मिले। वहां अन्य बुद्धों के चंक्रमण स्थल भी थे, जहां धम्म स्तूप बने हुए थे।

'चंपा' जनपद 'भागलपुर' जिले के आसपास था। उसकी राजधानी 'चंपा' अब तक भागलपुर में 'चंपा' नगरी के नाम से कहलाती है। पुरातत्वविदों के अनुसंधान से 'चंपा' नगरी ही 'चंपा' की प्राचीन राजधानी प्रमाणित होती है। वहां अनेक खंडहर भी हैं।

'चंपा' से पूर्व में 50 योजन जाकर 'फाह्यान' "ताम्रलिप्ति" जनपद में पहुंचा। वहां बंदर (बंदरगाह=Port) था। 'फाह्यान' ने लिखा है कि इस जनपद में 24 संघाराम हैं जिनमें अनेक श्रमण रहते हैं। बौद्ध-धम्म का भी यहां पर अच्छा प्रचार है। यहां 'फाह्यान' ने दो वर्ष और रुककर सूत्रों की प्रतिलिपि का संभवतया अनुवाद किया और मूर्तियों के चित्र बनाए।

यह ताम्रलिप्ति वही स्थान है जहां अब बंगाल में "तमलुक" है। तमलुक मिदनापुर जिले में है। 'सुएनच्वांग' के काल में समुद्र वहीं था। 'गंगा नदी' की बाढ़ से इतने दिनों में समुद्र 'तमलुक' से 60 मील पर चला गया है। यहां से बाहर को व्यापारियों की नौकाएं जाया-आया करती थीं। लंका, जावा, स्याम (थाईलैंड) आदि देशों के साथ यहां से व्यापार होता था। यहां बौद्ध-धम्म का उस समय अच्छा-खासा प्रचार था। 'सुएनच्वांग' के समय तक नगर में दस संघाराम थे। बौद्ध काल की मुद्राएं वहां अब तक भी मिलती हैं।

'ताम्रलिप्ति' में दो साल रहकर 'फाह्यान' एक व्यापारी की नौका पर चढ़कर दक्षिण-पश्चिम की ओर चला। उस समय जाड़े की ऋतु का प्रारंभ था। चौदह दिन में वह सिंहल प्रांत में पहुंचा। वहां जाकर उसे ज्ञात हुआ कि सिंहल देश भारत (तमलुक) से 700 योजन पर है।

सिंहल देश के (लंका=Ceylon) बारे में जो प्राचीन बातें उसने लिखी हैं वे वही हैं जो 'महावंश' नामक ग्रंथ में है व जिन्हें हम लोग बचपन से अपने पुरखों से सुनते आए हैं। उन्हें दुहराने की यहां जरूरत नहीं है।

सिंहल के किनारे 'फाह्यान' ने अनेक टापुओं का होना लिखा है और यह भी उल्लेखनीय है कि अनेक स्थानों पर मोती निकाले जाते हैं और दस मोतियों में से 3 मोती राजा (कर के रूप में) लेता है। सिंहल देश के विषय में 'फाह्यान' ने लिखा है कि राजा ब्राह्मणों के धर्म का पालन करता है। नगर के आंतरिक लोगों में (धर्म पर) श्रद्धा और विश्वास का भाव अधिक है। जनपद के शासन के प्रतिष्ठित होने से ईति, दुर्भिक्ष, विप्लव और अव्यवस्था नहीं हुई है। भिक्खुसंघ के कोष में ढेर सारे बेश-कीमती रत्न और अमूल्य मणियां हैं। राजा को कोष में जाने और देखने की मनाही है। भिक्खु भी चालीस वर्ष भिक्खु वेष (चीवर) में न रहा हो तो (वह भी) उसमें घुस नहीं पाता। नगर में विभिन्न वैश्य श्रेष्ठी (सेठ) और सावा व्यापारी बसे हैं, जिनके घर सुंदर और भव्य हैं। गली और रास्ते साफ-सुथरे रहते हैं। सड़कों के चतुष्पथों (चौराहों) पर धर्मोपदेश हेतु स्थान बने हैं। महीने में अष्टमी, चतुर्दशी और पंचमी (अमावस्या और पूर्णिमा) के दिन आसन बिछता है, ऊंची गद्दी लगती है, चारों ओर के भिक्खुगण और उपासक लोग एकत्रित होते हैं, धर्म चर्चा सुनते हैं। इस जनपद के लोगों का कथन है कि यहां 60,000 भिक्खु रहते हैं जिन्हें संघ के भंडार से आहार मिलता है। राजा का भी नगर में सत्र है, पांच-छह हजार लोगों को धर्मार्थ भोजन मिलता है। संघ के भंडार में कमी होती है तो बड़ा भिक्खापात्र उठाकर जाते हैं—जितना उसमें आता है, उतना लेते हैं—भर जाने पर लौट जाते हैं। सिंहल में भगवान बुद्ध का एक दांत है। उसकी वहां हर साल रथयात्रा बड़ी धूमधाम से निकलती है। उसके विषय में 'फाह्यान' ने लिखा है कि "भगवान बुद्ध का दांत निकलता है, सड़क के मध्य से होकर जाता है, सभी ओर से पूजा चढ़ती है, अभयगिरि (विहार) में पहुंचता है, भगवान बुद्ध के विहार में गृहस्थ और गृहत्यागी एकत्र रहते हैं, धूप जलाते, दीप प्रज्वलित करते, और विभिन्न प्रकार से उपचार करते हैं, यह दिन-रात बंद नहीं होता, 90 दिन पूर्ण होने पर दांत नगर के भीतर के विहार को लौटता है। विहार में उपोसथ के दिन आने पर पट खुलता है, यथाविधि संस्कार संपन्न होता है।" गिरि विहार का वर्णन करते हुए 'फाह्यान' कहता है कि "नगर के उत्तर के पद-चिह्न (बुद्धपाद) पर राजा ने एक वृहत धम्म स्तूप बनवाया—जो 400 हाथ ऊंचा, सोना-चांदी और सर्वरत्न जटित है। धम्म स्तूप के निकट ही एक संघाराम बनवाया था, जिसका नाम अभयगिरि है,

उसमें 5,000 भिक्खु रहते हैं। यहां भगवान बुद्ध का एक मंडप भी है, उस पर सोने-चांदी और पच्चीकारी का काम है, सर्वत्र रत्न लगे हैं। मध्य में हरित नीलमणि (लाजवर्त) की एक प्रतिमा है जो 20 हाथ ऊंची, सर्वांग सप्तरत्न से देदीप्यमान प्रशांत भावयुक्त—वाणी से वर्णनातीत है, दाहिने हाथ में एक अमूल्य मुक्ता-मणि है।"

इसी बुद्धविहार में एक बार 'फाह्यान' को जब वह अत्यंत शोकग्रस्त हुआ, क्योंकि वहां वह नितांत अज्ञात और अपरिचित था, किसी की बात को नहीं समझ पाता था, सभी अपरिचित थे, एक चीनी व्यापारी मिला जो रेशमी पंखा (बेना) चढ़ा रहा था। 'फाह्यान' लिखता है कि उसे देख "विवशतः आंसू भर आए और नेत्रों से टप-टप गिरने लगे।" यहां उसने एक अर्हत का अंतिम दाह-संस्कार देखा। वह अर्हत नगर के दक्षिण में 7 ली पर 'महाविहार' में निवास करता था। यहां उसने एक अन्य भारतीय बौद्ध विद्वान को कथा वाचन करते सुना था कि भगवान बुद्ध का भिक्खापात्र पहले वैशाली में था, अब वह गांधार में है, इतने वर्ष में अमुक स्थान पर जाएगा, फिर वहां से अमुक देश में इत्यादि। उसके व्याख्यान को 'फाह्यान' ने कोई सूत्र ग्रंथ समझा था और वह उसे तत्काल लिखने को तैयार भी हो गया था, परंतु जब उस पंडित ने कहा कि यह कोई सूत्र नहीं, बल्कि मेरी व्याख्या है तो वह चुप रह गया और उसे लिखा नहीं। वह वर्षों की संख्या भी भूल गया।

'फाह्यान' 'सिंहल देश' में दो वर्ष रहा। वहां उसे खोजने पर निम्नलिखित चार पुस्तकों की प्रतियां मिलीं—

1. **'महीशासक निकाय'**—का विनयपिटक
2. **दीर्घागम (दीघनिकाय)**
3. **संयुक्तागम (संयुत्तनिकाय)**
4. **संयुक्तसंचय पिटक—(संभवतया खुद्दक पाठ)**

इन पुस्तकों को लेकर 'फाह्यान' एक व्यापारी की नौका पर सवार हुआ। वायु सानुकूल मिली पर, दुर्योगवश तीन दिन चलकर तूफान आया, नौका में पानी भरने लगा, कहीं नौका में छेद हो गया था पर पता नहीं चलता था। सभी लोग घबरा उठे। व्यापारी भाग-भागकर छोटी नाव में, जो उस बड़ी

नौका के साथ लगी थी, भरने लगे। जो लोग उसमें पहले पहुंच गए, इस डर से कहीं अधिक लोग भर गए तो इस नाव के भी डूबने की आशंका होगी, उन्होंने रस्सी को काट दिया और छोटी नौका बड़ी नौका से पृथक हो गई। सभी यात्री घबरा गए, बुद्धि ठिकाने न रह गई। भारी-भारी गठरी उठाकर समुद्र में फेंकने लगे, 'फाह्यान' ने भी अपना गगरा, लोटा और अन्य असबाब (सामान) समुद्र में फेंक दिया। वह बहुत भयभीत हुआ, मन ही मन डरता था कि कहीं लोग उसे वह गठरी भी समुद्र में फेंकने को मजबूर न करें जिसमें उसके सारे श्रम के फलस्वरूप विनयपिटक और अन्य सूत्रों की प्रतियां बंधी हैं अथवा कोई बलपूर्वक छीनकर कहीं समुद्र में उन्हें फेंक न दे। 'फाह्यान' लिखता है कि "हृदय में अवलोकितेश्वर का ध्यान किया, हान देश के भिक्खुसंघ को प्राण अर्पण किए—मैंने धर्म को ढूंढ़ने के लिए सुदूर की यात्रा की है (मुझे) अपना तेज और प्रताप देकर, लौटाकर अपने स्थान पर पहुंचाओ।"

तूफान 13 दिन तक रहा। सबमें लगातार घबराहट रही। तेरहवें दिन नाव संयोग से एक द्वीप के किनारे लगी, बेड़ा थमने पर नौका के छेद की जांच हुई, छेद का पता लगा और उसको बंद किया गया। ठीकठाक हो जाने पर नौका आगे बढ़ी। समुद्र की कठिनाइयों का वर्णन 'फाह्यान' ने इन शब्दों में किया है, "समुद्र के मध्य बहुत सारे समुद्री डाकू रहते हैं उनसे मिले बगैर बचकर नहीं जा सकते। यह समुद्र (अति) विस्मृत है, कोई ओर-छोर नहीं, पूर्व-पश्चिम का ज्ञान नहीं, केवल सूर्य, चंद्रमा और तारों के अवलोकन से ठीक मार्ग पर चलते हैं, आंधी-पानी में वायु ही के ले जाने से जाते हैं, निश्चित मार्ग नहीं, रात की अंधियारी में केवल ऊंची लहरें परस्पर थपेड़े खाती दिखाई पड़ती हैं, अग्निवर्ण ज्वाला निकलती है। साथ ही साथ जल पर बड़े-बड़े कछुए और अन्य समुद्र के जीव-जंतु (निकलते व दिखाई पड़ते हैं)। व्यापारी भयभीत, नहीं जानते कि कहां जा रहे हैं—समुद्र गंभीर, थाह नहीं—लंगर डालने और ठहरने का ठौर नहीं, परंतु जब आसमान खुल गया तो पूर्व-पश्चिम सूझने लगा, फिर लौटे, ठीक रहे, पर चले, कहीं गुप्त चट्टान पड़ी तो बचने का मार्ग नहीं।"

ऐसे भयानक समुद्र में अपने प्राण हथेली पर रखकर 'फाह्यान' नाव के ठीक हो जाने पर चढ़कर 90 दिन से अधिक बीतने पर जावा द्वीप में पहुंचा। जावा द्वीप में 'फाह्यान' 5 महीने रुक गया। उस जनपद में बौद्ध-धम्म

का धर्म प्रचार देख 'फाह्यान' लिखता है कि "इस जनपद में ब्राह्मण धर्म के विभिन्न संप्रदायों का प्रचार था, बौद्ध-धम्म की कुछ खास चर्चा नहीं।"

जावा में 5 महीने रहकर 'फाह्यान' एक और व्यापारी नाव पर चढ़ा। नाव 50 दिन की खाद्य-सामग्री लेकर चौथे महीने की 16वीं तिथि को चली। उस वर्ष फाह्यान को नाव ही पर 'वर्षावास' पड़ा। नौका जावा से पूर्वोत्तर दिशा में 'कावचांग' जा रही थी। ठीक महीना दिन बीतते-बीतते दोपहर-रात गए घोर अंधकार छा गया। पानी बरसने लगा। अंधियारी ऐसी कि हाथ पसारे नहीं सूझता था। सारे यात्री घबरा गए कि क्या होगा? 'फाह्यान' बेचारा भी अवलोकितेश्वर का ध्यान करने लगा और सारी रात्रि प्रार्थना करता और रोता-बिलखता रहा। रात भर किसी को नींद न आई। जैसे-तैसे ज्यों-त्यों सवेरा हुआ। सवेरा होते ही एक और विपत्ति का सामना पड़ा। दुर्योगवश नाव में 'पंच-दस ब्राह्मण देवता' भी थे। उन लोगों ने सवेरा होते ही मुहां-मुहीं कहना प्रारंभ किया कि "इस भिक्खु के साथ से ही हम लोगों पर यह मुसीबत आई है–यह महासंकट पड़ा है–इस भिक्खु को उतारो–समुद्र के किसी द्वीप के किनारे छोड़ दो–एक मनुष्य के लिए हम सब क्यों विपत्ति भोगें।" सारी नौका में हलचल मच गई। सबको पूर्णतः विश्वास हो गया कि देवता लोग सत्य कह रहे हैं, हो न हो सब आपत्ति भिक्खु जी के कारण ही आई हो, ठीक है–

'अतथ्यो तथ्यो वा हरति वा महिमानं जनश्वः'

बेचारा 'फाह्यान' घबरा गया। एक आंधी तो थी ही, दूसरी और आ गई और उससे भी घोरतर। सभी समान नहीं होते, जहां दस-बीस मूर्ख होते हैं, वहां एक-आध विद्वान भी निकल ही आता है। नौका के कोने में एक सहृदय सज्जन था। वह बोल उठा–भाई इस भिक्खु को उतारते हो तो मुझे भी उतार दो, नहीं तो मुझे मार ही डालो। नहीं तो इस भिक्खु को उतारा तो हान देश में पहुंचूंगा, तो राजा के पास (जाकर) सब करनी (तुम्हारी) कहूंगा। हान देश का राजा भी बौद्धधर्मानुयायी है। भिक्खुसंघ का मान करता है। फिर तो सोचो

1. *समुद्र यात्रा के विरोधियों को इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि आज से चौदह सौ वर्ष पूर्व ब्राह्मण चीन, जापान जाते थे और उससे उनका धर्म भ्रष्ट नहीं हो जाता था।*

–संपादक का मानना है कि सागरोंघन को पाप मानने की प्रथा फाह्यान की यात्रा के समय के काफी बाद की देन है।

कि इसका क्या परिणाम होगा। यह बात उसके मुख से निकली कि चारों ओर सन्नाटा छा गया। सबके सब आतंकित हो गए। सारा चवाव (मिथ्या प्रचार) जाता रहा। फिर किसी ने बेचारे 'फाह्यान' से उतरने का नाम तक नहीं लिया।

आकाश में अंधकार छाया था। समुद्र में नाविकों की बुद्धि काम नहीं करती थी कि किस दिशा में जाना चाहिए और कहां जा रहे हैं। नौका मार्ग छोड़कर दूसरी ओर जिधर को हवा ले गई, बहती चली गई। 70 दिन व्यतीत, अनेक कष्ट विपत्ति झेलते-झेलते सबका नाकों दम आ गया था। दाना-पानी सब खत्म हो गया था। सब समुद्र के खारे जल में पका-पका कर खाते थे। व्यापारी घबराए कि अब तक तो हमें 'कावचांग' पहुंच जाना चाहिए था। 50 दिन की जगह 70 दिन हो गए कहीं वार-पार नहीं, अभी तक नाव घाट पर नहीं लगी–हो न हो अवश्य राह भूलकर कहीं अलग बहके चले जा रहे हैं। निदान नाव पश्चिमोत्तर दिशा में घुमाई गई और किनारे की जोह में चली। बारह दिन-रात चलकर 'चांगक्कांग' की सीमा पर 'लाव' पर्वत के दक्षिण किनारे पर लगी। यहां पहुंचकर लोगों को मीठा पानी और साग मिले। वहां की 'लेई' और 'अक्कों' नामक वनस्पतियों को देखकर सबको निश्चय हो गया कि चीन देश में आ गए। पर जहां नाव टिकी वहां न बस्ती थी और न लोगों के गमनागमन के कुछ पद-चिह्न ही दिखाई पड़ते थे। सब बड़ी चिंता में पड़े कि कहां आ गए? किस जगह पर हैं? कोई कहता था कि चांगक्कांग अभी नहीं पहुंचे, कोई कहता था कि पीछे छोड़ आए। जितने मुंह उतनी बातें थीं। कुछ निश्चय नहीं होता था। निदान यह स्थिर हुआ कि कुछ लोग छोटी नाव पर चढ़कर खाड़ी में जाएं और किनारे पर यदि कोई मिले तो उससे इतना तो ज्ञात करें कि किस देश में और कहां हैं। दो-चार आदमी झट नौका पर चढ़कर खाड़ी में गए और इधर-उधर मनुष्यों की जोह लेने लगे। बड़ी खोज-बीन पर दो शिकारी मिले पर उनकी बोली उनकी समझ में न आई। विवश हो नाव पर बैठाकर उन्हें साथ लाए। लोगों ने 'फाह्यान' से कहा–भाई, अब तुम्हीं यह काम करो। उन लोगों से बातचीत करके कुछ पता ठिकाना तो जाना कि हम लोग हैं कहां? चांगक्कांग पहुंचे व नहीं। आगे है व पीछे छूट गया है। निदान 'फाह्यान' ने उनसे प्रश्न करना प्रारंभ किया। तो उन लोगों ने कहा कि हम बौद्ध हैं। फिर 'फाह्यान' ने कहा यहां क्या करने आए थे।

उन दोनों ने कहा कि भगवान को चढ़ाने के लिए सफतालू ढूंढ रहे थे। थोड़ी देर की पूछताछ पर यह निश्चय हुआ कि वे लोग सिंगचाव के अंतर्गत 'चांगक्कांग' प्रदेश की सीमा पर हैं। यह बात सुनते ही सारे व्यापारी हर्षित हो उठे, रुपये और माल मंगाकर चांगक्कांग प्रदेशाधिप (राजा) के समीप उपहार लेकर अपने आदमी भेजने लगे।

उस समय उस प्रदेश का शासक 'लेए' बड़ा दृढ़ बौद्धधर्मी था। उसने ज्यों ही यह सुना कि एक श्रमण भारत गया था और वहां से अनेक धर्मग्रंथों की प्रतियां लेकर नौका पर आया है, वह अपने अंगरक्षकों को साथ लेकर बंदरगाह पर आया और उसने बड़े आदर से 'फाह्यान' का स्वागत कर धर्मपुस्तकों और चित्रों के दर्शन किए और 'फाह्यान' को पुस्तकों और चित्रों समेत अपने साथ अपने शासन स्थान को ले गया।

व्यापारी लोग तो वहां से यांगचाव की ओर लौट गए, और 'फाह्यान' सिंगचाव में वहां के शासक 'लेए' का अतिथि बना। वहां 'फाह्यान' को शासक के अनुरोध से साल भर ठहरना पड़ा, यद्यपि 'फाह्यान' बहुत चाहता था कि 'चांगान' को चला जाए। चांगान के भिक्खुओं से बिछड़े हुए उसे पंद्रह वर्ष हो गए थे, वह उनसे मिलने के लिए व्याकुल हो रहा था पर उन ग्रंथों का अनुवाद करना भी अत्यंत आवश्यक काम था। निदान 'फाह्यान' 'सिंगचाव' से विदा हो दक्षिण प्रांत की ओर उतरा। दक्षिण प्रांत के पूर्वी भाग में 'नानकिन' पूर्वी शीन राज्य की राजधानी थी। वहां उस समय भारतवर्ष का एक महान विद्वान श्रमण 'बुद्धभद्र' रहता था। वहां रहकर 'फाह्यान' ने अनेक पुस्तकों का अनुवाद, जिन्हें वह भारतवर्ष से ले गया था, चीनी भाषा में किया। वह 'चांगान' प्रदेश को जहां से उसने अपनी यात्रा प्रारंभ की थी, नहीं लौट सका। 'नानकिन' में उसने अपने अनुवाद के काम को जहां तक कर सकता था किया और शेष कर ही रहा था कि वह 'किंगचाव' गया और वहां शीन के संघाराम में 88 वर्ष की अवस्था में इस संसार को त्याग कर परिनिर्वाण को प्राप्त हो गया।

'फाह्यान' के यात्रा विवरण को पढ़ने से यह मालूम पड़ता है कि यात्रा विवरण उसके हाथ का नहीं लिखा है। चीन देश में पहुंचकर उसने अपनी यात्रा के सारे विवरणों को अपने किसी मित्र को सुनाया, जिसने सारी बातों को अपने स्मरण के पीछे लिखा। यही कारण है कि कितनी जगहों पर दिशा

और परिमाण का अंतर है। इतना ही नहीं कितनी ही नदियों को जिसे उसने पार किया होगा, उल्लेख तक नहीं मिलता। चालीसवें अध्याय के इस वाक्य से कि अतः यात्रा का विवरण लिख दिया कि पढ़ने वाले जानें कि उसने क्या-क्या सुना और देखा। कितने ही लोग यह अर्थ निकालते हैं कि उसने अपनी यात्रा का विवरण स्वयं लिखा और लेगी महोदय ने इसका अनुवाद यह किया है कि, "and therefore he wrote out an account of his experience that worthy readers might share with him what he had heard and seen." पर चीनी भाषा के मूल में कोई ऐसा चिह्न नहीं है जिससे यह अर्थ निकाला जा सके। वहां कोई ऐसा सर्वनाम ही नहीं है जिससे यह आशय ले सकें कि 'उसने' लिखा व 'अपने' अनुभव का विवरण लिखा। सारे का सारा वाक्य सर्वनाम रहित है। इसके सिवाय इसका दूसरा अभिप्राय हो ही नहीं सकता कि लेखक ने यह यात्रा विवरण इसलिए लिखा कि पाठक लोग यह जानें कि उससे क्या देखा और क्या सुना?

इस विवरण को अति संक्षिप्त देखकर कितने ही अनुवादकों को यह सूझी है कि उसके हाथ का लिखा हुआ कोई इससे पृथक और परिपूर्ण विवरण रहा होगा और उसको ढूंढने के लिए उन्होंने बहुत बड़ा प्रयास भी किया है। स्वयं लेगी महोदय को भी यही आशंका थी कि कोई दूसरा पूर्ण यात्रा विवरण उसका होगा और अपनी भूमिका में उन्हीं की बहुत कुछ छान-बीन की है। वे लिखते हैं–

"It is added that there is another larger work giving an account of his travels within various countires... If there were ever another and larger account of Fa-hien's travels than the narative of which a translation is now given, it has long ceased to be in existence."

तात्पर्य यह है कि लेगी महोदय कहते हैं कि– *"एक और वृहत ग्रंथ है जिसमें भिन्न-भिन्न जनपदों में उसकी यात्रा का विवरण है... यदि कोई और बड़ा ग्रंथ 'फाह्यान' के यात्रा विवरण का इसके अलावा, जिसका यह अनुवाद है, रहा होगा तो वह बहुत दिनों से लुप्तप्राय हो गया है।"*

आगे चलकर लेगी महोदय सुइ वंश (589-618) के सूचीपत्र का प्रतीक (उदाहरण) देते हुए लिखते हैं कि उसमें 'फाह्यान' का नाम चार बार आया है,

एक तो अंत के खंड में पृ. 22 पर उसकी यात्रा का प्रतीक देकर किंगलिंग (यह नानकिंग का दूसरा नाम है) में आचार्य बुद्धभद्र के साथ रहकर उसका अनुवाद करने का वर्णन है। फिर दूसरे खंड (पृ. 15) में "बौद्ध जनपदों का विवरण" लिखा है और टीका में यह लिखा है कि यह श्रमण 'फाह्यान' का ग्रंथ है। फिर (पृ. 13) में "फाह्यान का विवरण" दो जिल्दों में और पुनः "फाह्यान की यात्रा का विवरण, एक जिल्द में" लिखा है। लेगी महोदय लिखते हैं कि "ये तीनों संभवतया एक ही पुस्तक की पृथक-पृथक प्रतियों का ही उल्लेख हो सकता है।" प्रथम और अंत के दोनों एक ही सूची के अलग-अलग खंड हैं। आगे लेगी महोदय ने अपनी प्रति की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए विभिन्न सूचियों को उद्धृत किया है।

उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट है कि वह पुस्तक जिसमें 'फाह्यान' का आचार्य बुद्धभद्र के साथ किंगलिंग में अनुवाद करने का वर्णन है, संभवतया यह नहीं है। यह भी मुमकिन है कि वह इसी का उत्तरार्द्ध रहा हो अथवा कोई वृहत ग्रंथ हो, हम बिना देखे निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते, पर इसमें तो आचार्य बुद्धभद्र के साथ नानकिंग (किंगलिंग) में अनुवाद का कुछ भी उल्लेख नहीं है। हमें तो वर्तमान प्रति के आधार पर ही विचार करना है।

आधुनिक रीति से सोच-विचार करने पर तो हम यह कह सकते हैं कि यह 'फाह्यान' का लिखा नहीं है। पर जब हम पूर्व के अथवा प्राचीन लिखे अन्य ग्रंथों पर दृष्टिपात करते हैं तो हम यह कहने पर विवश हो जाते हैं कि प्राचीन काल में समस्त पूर्वी देशों में लिखने की यही परिपाटी प्रचलित थी। भारतवर्ष के अति प्राचीन ग्रंथों को जाने दीजिए, 'कौटिल्य' के 'अर्थशास्त्र' और 'राजशेखर' के 'काव्यमीमांसा' को ही लीजिए जिनका उन्हीं के हाथों का होना निर्विवाद लोग मानते हैं, पर उनकी रचना को देखकर कोई यह कह नहीं सकता कि ये ग्रंथ 'कौटिल्य' व 'राजशेखर' के लिखे हुए हैं। इसी प्रकार यद्यपि रचना से यह मालूम पड़ता है कि यह ग्रंथ 'फाह्यान' का लिखा नहीं है तो भी यह मानते हुए कि प्राचीनकाल में लेखकों की यही परिपाटी थी, यह मानने में कुछ भी संकोच नहीं है कि चालीसवें अध्याय के अंत तक सारा ग्रंथ 'फाह्यान' ने चीन देश में पहुंचकर लिखा कि "पढ़ने वाले जानें कि उसने क्या-क्या सुना और देखा।"

यद्यपि 'फाह्यान' धार्मिक यात्रा करने और बौद्ध धर्मग्रंथों का संग्रह करने के उद्देश्य से आया था और इसीलिए उसने इतने कष्ट उठाए, पर फिर भी उसने अपने समय के आचार-व्यवहार को जो उसने भिक्खुसंघ में देखा था और देशवासियों की अवस्था का अच्छा चित्र खींचा है। विदेशी यात्रियों के लेखों से किसी देश के इतिहास की सत्यता को जांचना अच्छी बात है, यही कारण है कि श्रावस्ती, कुशीनगर और लुंबिनी आदि के स्थानों का निर्णय हो जाने पर भी स्मिथ महोदय सरीखे ऐतिहासिकों को जो वर्षों फैजाबाद, बस्ती और गोरखपुर में कलक्ट्री और कमिश्नरी आदि पदों पर रह चुके थे, प्रायः स्वयं भ्रम में पड़ना और अन्यों को शंका में डालना पड़ा है। उन्हें फुहर महोदय सदृश सत्यवादी विद्वान तक पर जाल करने का कलंक लगाना पड़ा है।

यहां हम 'फाह्यान' के मार्ग का पुनः दिग्दर्शन करा देना उचित समझते हैं जिससे इस बात के पढ़ने वालों को साधारण रीति से ज्ञान हो जाए कि उसने कहां से अपनी यात्रा का आरंभ किया और किन-किन जनपदों से होकर वह भारतवर्ष में आया तथा किस मार्ग से होकर चीन को लौट गया।

'फाह्यान' 'चांगान' से 400 ई. में विनयपिटक की खोज में भारतवर्ष की ओर चला। वह 'लंग' से होकर 'कीनक्वी' में आया और वहां उसने वर्षावास किया। वहां से 'यंगालो पर्वत' पारकर 'चांगयी' में आया। वहां उस समय उपद्रव मचा हुआ था। वहीं वर्ष भर रुक गया। विप्लव शांत हो जाने पर 'तुनह्वांग' में आया और वहां के शासक की सहायता से 'गोबी' पारकर 17 दिन में 'शेनशेन' में आया। 'शेनशेन' प्रदेश से पंद्रह दिन में 'ऊए' पहुंचा। 'शेनशेन' 'लोवनगर' के आसपास और 'ऊए' तुरकिस्त के किनारे था। ये दोनों प्रदेश अब 'गोबी' के मरुस्थल के नीचे हैं, और 'लोवनगर' के आसपास सौ-दो सौ मील के भीतर थे। अधिक सटीक है कि वे नगर जहां पर कई बार यात्रा करने से यूरोपीय और रूसी यात्रियों को मूल्यवान प्राचीन प्रतियां मिली हैं इन्हीं जनपदों के रहे हों, जो पीछे मरुभूमि की बालुका (रेत) में दबकर सदा के लिए संसार से मिट गए।

'ऊए' से 'फाह्यान' 'खुतन' आया और वहां की रथयात्रा देख 25 दिन में 'जीहो' और 'जीहो' से 4 दिन में 'सुंगलिंग' पहुंच पर्वत पारकर 'यूहे' पहुंचा। 'जीहो' और 'यूहे' का पता यद्यपि यूरोपीय विद्वानों को अब तक

नहीं चला है परंतु ये दोनों प्रदेश 'सीहून नदी' और 'जीहून नदी' के किनारे के प्रदेश हैं, जहां इन दोनों नदियों के मध्य तक छोटी पहाड़ी है।

'यूहे' अथवा जीहून के किनारे से 'फाह्यान' दक्षिण-पूर्व दिशा में चला और पच्चीस दिन में पर्वतों से होकर 'कीचा' में पहुंचा। 'कीचा' को कोई-कोई 'कश्मीर' व 'स्कूर्द' लिखते हैं परंतु यह वही प्रदेश मालूम पड़ता है जो 'कराकोरम' और 'सिंधु नदी' के मध्य है। इसी को 'कैकय' जनपद और इसकी राजधानी को पर्वतों से परिवेष्टित होने के कारण 'गिरिव्रज' लिखा है।

'कीचा' व 'कैकय' से 'फाह्यान' पंच परिषद देखकर 'दरद' में आया। 'दरद' 'कैकय' के पश्चिम में पड़ता था। एक मास मार्ग में लगा। समय पर भी विचार करने से यही ठीक जान पड़ता है कि वह 'यूहे' से पूर्व-दक्षिण गया और फिर वहां से पश्चिम की ओर मुड़ा। उसे 'यूहे' से 'कीचा' जाने में 25 दिन और 'कीचा' से 'दरद' आने में एक मास लगा। दोनों मार्ग पहाड़ीदार और कठिन थे। दरद को ही दूसरे लोगों ने 'दरदिस्तान' लिखा है।

'दरद' से पंद्रह दिन और चलकर 'फाह्यान' एक झूले पर से होकर 'उद्यान' में आया। अंग्रेजी अनुवादकों ने इसे 'सिंधु' लिखा है। उनके संशय के लिए सेतु भी है क्योंकि चौदहवें अध्याय के अंत में भी यही चिह्न हैं। वहां सिवाय 'सिंधु नदी' के अलावा दूसरी नदी नहीं पड़ती। ये दो चिह्न हैं, जिनमें पहले का अर्थ ऊपर पुल व झूला और दूसरे का अर्थ नदी है। इनमें दूसरा संकेत पंद्रहवें अध्याय के आदि में भी है। सिंधु के लिए 'फाह्यान' ने कोई चिह्न व्यवहार नहीं किया है और उस नदी के लिए वही चिह्न व्यवहृत होता है जो भारत के लिए होता है। सिंधु के कारण भारत को चीन वाले 'सिंतू' कहते आए हैं। लेकिन उन दोनों संकेतों का अभिप्राय जो 'दरद प्रदेश' से 'उद्यान' आते समय व 'पोनो' से 'पीतो' आते समय अध्याय 7 और 14 में किया गया है, केवल नदी पार करने का झूला ही है। यही अर्थ डॉक्टर ओ. फ्रैंक महोदय (Dr. O. Frank) ने 'इंडियन एंटीक्केरी' में भी किया है–Hintu-hanging bridge। यही मत समीचीन जान पड़ता है। उच्चारणसाम्य से ही अनुवादकों और टीकाकारों को संशय में पड़ना पड़ा है।

'उद्यान' में पहुंचकर फाह्यान वहां से 'सुहोतो' (सुवात=स्वात) गया। वहां से 'गांधार', 'गांधार' से 'तक्षशिला' और 'तक्षशिला' से 'पेशावर' आया।

'पेशावर' से 'नगार' गया और 'नगार' में 'हूंकिंग' के देहांत हो जाने पर 'पोनो' होकर फिर एक झूले व पुल पर से उतरकर 'पीतो' आया।

'पीतो' से दक्षिण-पूर्व चलकर 'मथुरा' आया, फिर 'मथुरा' से 'यमुना' के किनारे-किनारे चलकर 18 योजन पर 'संकाश्य' नगर मिला। 'संकाश्य' नगर में वर्षावास व्यतीत कर 'कान्यकुब्ज' नगर आया और 'कान्यकुब्ज' से गंगा नदी पार करके 'आले' गांव में जो 'कान्यकुब्ज' (अब कन्नौज) से तीन योजन पर था, गया।

आले से दस योजन पर 'सांखे' दक्षिण-पूर्व में पड़ा। यह 'सांखे' यात्रा विवरण मिलाने से 'सुएनच्वांग' का 'विसाखा' मालूम पड़ता है, संभवतया यह 'साकेत' का ही विकृत नाम हो, ऐसा अनुमान होता है।

'सांखे' से आठ योजन पर 'कौशल जनपद' की राजधानी 'श्रावस्ती' में गया। 'श्रावस्ती' से 'कपिलवस्तु' की ओर गया और 'लुंबिनी वन' के दर्शन किए। 'लुंबिनी' भगवान बुद्ध का जन्मस्थल है और नेपाल की तराई में 'भगवानपुर' के पास है।

'लुंबिनी' से 'रामस्तूप' होते हुए 'कुशीनगर' व 'कसया' गया और 'कसया' से 'वैशाली' पहुंचा। 'वैशाली' से 'पाटलिपुत्र' और वहां से 'राजगृह' गया और 'गृध्रकूट पर्वत' और 'सप्तपर्णी गुफा' होता हुआ 'बोधगया' में पहुंचा।

'बोधगया' से 'गरुड़पाद पर्वत' का दर्शन कर 'अनालय' व 'अरण्य' से जो 'बलिया' के पास था, होता हुआ 'वाराणसी' आया। 'वाराणसी' में 'ऋषिपत्तन' मृगदाव के 'धर्मचक्र प्रवर्तन' स्तूप (धम्मेख स्तूप) का दर्शन कर 'पाटलिपुत्र' लौट गया और वहां तीन वर्ष रहकर उसने अनेक पुस्तकों का संग्रह किया और संस्कृत विद्या का अध्ययन किया।

'पाटलिपुत्र' से 'फाह्यान' अठारह योजन चलकर 'चंपा' गया। 'चंपा' अब 'भागलपुर' जिले में है, जो 'चंपा नगरी' कहलाती है। 'चंपा' से वह 'ताम्रलिप्ति' गया जिसे अब 'तमलुक' कहते हैं। वहां दो वर्षों तक रहा और ग्रंथों तथा चित्रों की प्रतिलिपि तैयार करके ली।

'तमलुक' से 'फाह्यान' एक व्यापारी नौका पर सवार होकर 'सिंहल' में गया और वहां दो वर्ष तक रहा और अनेक ग्रंथों की प्रतिलिपि ली।

'सिंहल' से 'फाह्यान' 'जावा द्वीप' गया। वहां पांच महीने तक ठहरा रहा। फिर एक अन्य नौका पर चढ़कर 'चीन' को चला। तीन महीने के आसपास तूफान में भटकती हुई नाव 'चांगक्कांग' के किनारे लगी। वहां के शासक 'लेए' ने 'फाह्यान' का स्वागत किया और वह उसे अपने शासक स्थान 'सिंगचाव' में ले गया। 'सिंगचाव' में 'फाह्यान' ने एक वर्ष व्यतीत कर, फिर दक्षिण को चलकर 'नानकिंग' गया और वहां अपने अभीष्ट ग्रंथों का अनुवाद करने लगा।

इस यात्रा में 'फाह्यान' के शब्दों में ही, "वह 6 वर्षों में 'मध्य देश' (भारत) पहुंचा, 6 वर्ष वहां घूमा-फिरा, लौटकर 3 वर्ष में 'सिंगचाव' पहुंचा, 30 से कुछ ही कम जनपदों में भ्रमण किया" सब मिलाकर उसको पंद्रह वर्ष लगे।

'फाह्यान' के स्वभाव और प्रकृति के विषय में उपसंहार के लेखक के, जो कोई उसका मित्र व अनुयायी मालूम पड़ता है, ये शब्द मात्र पर्याप्त हैं कि "वह नम्र और सुशील था। जबसे इस बड़े धर्म का पूर्व के देश में प्रचार हुआ कोई भी निरपेक्ष, धर्म का जिज्ञासु आचार्य-सा नहीं हुआ। अतः मैं तो जान गया कि सत्य के प्रभाव को कोई रोक नहीं सकता, चाहे वह जितना बड़ा हो, वह (भवसागर को) पार ही कर जाता है। मानसिक बल जो काम चाहे, उसे पूरा करने में चूकता नहीं। ऐसे कार्यों का संपादन, आवश्यक को भूलने और भूले हुए को स्मरण करने से होता है।"

चांगगान से चलकर लंग[1] से होकर वे कीनकी[2] के जनपद[3] में पहुंचे और वर्षा[4] के लिए ठहरे। वर्षा बिताकर वे नवतन[5] के जनपद में गए और यांगलो पर्वत पारकर चांगयीः[6] के नाके पर पहुंचे। चांगयीः में अशांति फैली हुई थी। मार्ग से होकर जाना संभव न था। चांगयीः के अधिपति ने बड़ी आवभगत की और रोक कर रखा और दानपति[7] बना।

यहां चेयन, हेकीन, सांगसाव और सांगकिंग से भेंट हुई। ये लोग भी वहीं जा रहे थे। उनके साथ वहां वर्षा बिताकर उनके साथ-साथ तनह्वांग[8]

---

1. शेनसे के पश्चिमी और कानसुः के पूर्वीय भाग मिलकर, उस समय लंग प्रदेश के नाम से प्रख्यात थे।
2. यह पश्चिमीय चीन का दूसरा राजा था। उसकी राजधानी कानसु देश के लानचाउ प्रांत में थी। वह सीनपे जाति का था और उसका वंश केयेःफू कहलाता था। उस वंश का पहला शासक क्रोजिन था और चीन के महाराज ने सन् 385 ई. में उसे नियत किया था। क्रोजिन के परिनिर्वाण पर कीनकी 388 ई. में उसके स्थान पर पश्चिमी चीन का शासक हुआ और सन् 398 ई. में वहां का राजा बन बैठा।
3. फाह्यान ने 'जनपद' का नाम अपनी यात्रा में तीन प्रकार से रखा है–1. शासक के नाम पर, 2. नदी के नाम पर, 3. प्रचलित नाम।
4. बर्मा आदि के भिक्खु वर्षा ऋतु में तीन मास एक ही स्थल पर रहते हैं।
5. लेगी महोदय का विचार है कि नवतन दक्षिण लियांग के राजसिंहासन पर सन् 402 ई. में बैठा था। उस समय उसका भाई ले-लूःकूः वहां का अधिपति था। नवतन लियांग का तीसरा राजा था। पर अन्य अनुवादकों का मत है कि नवतन पीतन के पश्चिमांश में होसा प्रदेश का शासक था।
6. यह स्थान कान-सुः देश के कानचाउ प्रांत में है बीलने इसे *Military Station* और लेगी महोदय ने *Emporium* लिखा है। यथार्थ में यह एक नाका है जहां से होकर लोग एक देश से दूसरे देश में व्यापार की वस्तु ले जाते हैं। यह लांगचाउ के उत्तर-पश्चिम में चीन की दीवार के पास है।
7. दान महायान की छह पारमिताओं (हीनयान में दस पारमिताएं मानी जाती हैं, दान पारमिता उनमें भी सम्मिलित है) में से एक है। दान को भवसागर के त्राण और निर्वाण का हेतु माना गया है। दान का इतना महत्व है कि स्वयं भगवान बुद्ध ने अनेक जन्मों में विविध दान दिए हैं। यहां तक कि (जातक कथाओं के अनुसार) उन्होंने अपना सिर, देह आदि तक दे दिए थे।
8. कान-सुः प्रदेश के गानसे प्रांत का एक विभाग। यह चीन की दीवार के बाहर की ओर है।

गए। इसकी प्राचीर (नगर दीवार) पूर्व-पश्चिम 80 ली और उत्तर-दक्षिण में 40 ली लंबा-चौड़ा है। यहां कुछ दिन अधिक एक मास रहे। 'फाह्यान' आदि चार जन, एक अगुआ दूत[1] के साथ आगे चले। पावयुन आदि का साथ वहीं छूट गया।

तुनह्वांग के शासक लेहाव[2] ने मरुभूमि[3] पार करने के लिए सामग्री का सुभीता कर दिया। सुना कि मरुभूमि में राक्षस फिरा करते हैं, गर्म हवा चलती है, वहां जाकर उनसे कोई बचकर नहीं आता। न ऊपर कोई चिड़िया उड़ती है और न नीचे कोई जंतु दिखाई पड़ता है। आंख उठाकर जिधर देखो कहीं चारों ओर जाने का मार्ग नहीं सूझता, बहुत ध्यान देने पर भी कोई मार्ग नहीं मिलता। हां, मुर्दों की सूखी हड्डियों के चिह्न भले ही मिलते हैं।

2

शेनशेन और ऊए

सत्रह दिन में लगभग 1,500 ली चलकर 'शेनशेन'[4] जनपद में पहुंचे। यह पहाड़ी प्रदेश है। भूमि यहां की पथरीली और बंजर है। साधारण निवासी मोटे वस्त्र पहनते हैं जैसे हमारे हान देश में (पहना जाता है)। कोई पश्मीना और कोई कंबल पहनते हैं, मात्र इतना ही अंतर है। इस देश के राजा का धर्म हमारा ही है। यहां लगभग चार हजार से भी ज्यादा भिक्खु रहते हैं। सबके सब हीनयान बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। इधर के देश के सभी लोग क्या भिक्खु क्या गृहस्थ उपासक सब भारतीय आचार और नियम का पालन करते हैं, अंतर इतना ही है कि एक सामान्य और दूसरे विशेष। यहां से पश्चिम जिन-जिन देशों में गए सभी देशों में ऐसा ही पाया। भेद इतना ही था कि देश की भाषा न्यारी-न्यारी और अनोखी थी। पर सब गृहत्यागी

---

1. संभव है कि तुनह्वांग के शासक ने मरुभूमि में राह बताने के लिए फाह्यान के साथ किसी व्यक्ति को कर दिया हो। उसी को उसने दूत लिखा है।
2. यह उस समय तुनह्वांग का शासक था। उत्तरी लियांग के राजा ने इसे सन् 400 ई. में तुनह्वांग के शासक के पद पर नियुक्त किया था। यह बड़ा विद्वान, दयालु और कुशल प्रकाशक था। बढ़ते-बढ़ते यह पश्चिमी लियांग का अधिपति हो गया था। इसका परिनिर्वाण सन् 417 ई. में हुआ था।
3. चीनी भाषा के मूल में बालू को नदी लिखा है। यह मरुभूमि गोवी की मरुभूमि थी।
4. यह जनपद 'लोव' व 'लोपनार' कद के दक्षिण किनारे पर था।

श्रमण विरक्त भारतीय ग्रंथों और भारतीय भाषा का अध्ययन करते पाए गए। यहां महीना भर रहे।

यहां से उत्तर-पश्चिम की ओर पंद्रह दिन चले। 'ऊए'[1] देश में पहुंचे। यहां चार हजार से अधिक श्रमण रहते हैं। सबके सब हीनयान बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। इनके आचार-नियम आसान नहीं हैं। उस पर वे दृढ़-संकल्पी हैं। चीन देश के श्रमणों में उनके पालन की क्षमता नहीं है। फुकुंग-सन[2] की उदारता से 'फाह्यान' यहां दो महीने से अधिक रह सका। यहीं उसे पावयुन आदि आकर मिल गए। ऊए के अधिवासियों ने सुजनता, सज्जनता और उदारता त्याग कर विदेशियों से क्षुद्रता का आचरण किया। इससे 'चेयुन', 'ह्वेकीन' और 'ह्वीई' कावचांग[3] चले गए। उन्हें वैसे जाने में सुविधा जान पड़ी। 'फाह्यान' फू (उद्देशिक) की उदारता से अन्य साथियों समेत दक्षिण-पश्चिम की ओर सीधे जाने में समर्थ हुआ। मार्ग में जनशून्य देश मिले। नदी उतरने में और मार्ग में चलने पर जो क्लेश और दुख उठाने पड़े किसी ने उठाए न होंगे। एक महीने पांच दिन में योतन (खुतन) पहुंचे।

3

खुतन

यह जनपद आनंदमय और वैभवशाली है। जनसंख्या बहुत घनी और बुद्धिमान है। सभी निवासी धार्मिक वृत्ति के हैं। मिलकर सब झुंड के झुंड धार्मिक संगीत का आनंद उठाते हैं। कई अयुत श्रमण यहां निवास करते हैं। जनपद में निवासियों के घर तारों की भांति पृथक-पृथक छितरे हुए हैं। प्रत्येक घर के द्वार पर छोटे धम्म स्तूप स्थापित किए हुए हैं। छोटे से छोटा धम्म स्तूप बीस हाथ से अधिक ऊंचा होगा। चारों ओर भिक्खुओं के लिए कोठरियां बनी हैं। अतिथि भिक्खु जो आते हैं इसी में ठहराए जाते हैं। उनकी सभी आवश्यकताएं पूरी की जाती हैं।

---

1. *इस जनपद का अब तक निश्चय नहीं हुआ है। वाटर महोदय का मत है कि यह 'खरभर' है व 'खरशर' और 'कुखर' के मध्य कहीं रहा होगा। 'सांगया' और 'हुईसां' नाम के दो यात्री इसी देश की रानी की आज्ञा से छठी शताब्दी में भारत आए थे और 'उद्यान', 'काबुल', 'पेशावर' आदि होकर वापिस गए थे।*
2. *चीनी भाषा में फू को उद्देशिक भी कहते हैं।*
3. *ओइग्स प्रदेश। वर्तमान तुर्कान वा संगुत प्रांत के आसपास था।*

जनपद के अधिपति (राजा) ने 'फाह्यान' आदि को एक संघाराम (बुद्ध विहार) में सुखपूर्वक ठहराया। उसका नाम 'गोमती संघाराम' था। यह महायान का बुद्ध विहार था। उसमें तीन हजार भिक्खु रहते थे। सबके सब महायान बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। घंटा बजने पर सब भंडार में भोजन के लिए इकट्ठा हो जाते थे। वहां उनका भाव अत्यंत गंभीर रहता था। पांती की पांती यथास्थान बैठते थे। सब चुपचाप, पात्रों में शब्द भी नहीं सुनाई पड़ते थे। ये भिक्खु भंडार में मौन रहते थे। आवश्यकता पड़ने पर हाथ से मात्र संकेत भर करते थे।

'ह्वेकिंग', 'तावचिंग' और 'ह्वेता':[1] पहले ही 'कीचा'[2] जनपद की ओर चले गए। पर 'फाह्यान' आदि रथयात्रा देखने के लिए तीन महीने तक ठहर गए। इस देश में चार[3] बड़े संघाराम हैं। छोटे-छोटों की तो गिनती ही नहीं। चौथे महीने की पहली तिथि से नगर में सड़कों पर साफ-सफाई होने लगती है, पानी छिड़का जाता है, गली-गली में सजावट होती है। नगर के द्वार पर एक बड़ा तंबू खड़ा कर दिया जाता है। सब प्रकार की सजावट होती है। फिर राजा और रानी अपनी परिचारिकाओं (सेविकाओं) समेत वहां पधारते हैं।

'गोमती विहार' के भिक्खु महायान के अनुयायी हैं। महाराजा इनकी प्रतिष्ठा करते हैं। उनकी रथयात्रा पहले निकलती है। नगर से तीन-चार ली पर भगवान बुद्ध का रथ चार पहियों का बनाया जाता है। वह तीस हाथ ऊंचा होता है और चलता प्रासाद (महल) जान पड़ता है। सप्तरत्न के तोरण लगाए जाते हैं, रेशम की ध्वजा और चांदनी से सुसज्जित किया जाता है। भगवान बुद्ध की मूर्ति रथ में रखी जाती है। दोनों ओर दो बोधिसत्व (की प्रतिमाएं) रहते हैं। सब देवता साथ-साथ चलते हैं। सभी मूर्तियां सोने-चांदी से निर्मित होती हैं। ऊपर ध्वजा फहराती है। जब रथ नगर के द्वार से सौ पग पर पहुंचता है, तो राजा अपना मुकुट उतारता है, नवीन वस्त्र धारण करता है और हाथ में फूल और धूप लिए नंगे पांव नगर से रथ की अगवानी को जाता है। परिचारक (सेवक) पंक्तिबद्ध दोनों ओर रहते हैं। राजा पंचांग प्रणाम कर फूल अर्पण करता है और धूप देता है। जब रथ नगर में प्रवेश

---

1. *यह अनोखा नाम आया है। संभव है कि यिंग के स्थान में ताः हो गया हो।*
2. *चौथे अध्याय में देखो।*
3. *लेगी महोदय लिखते हैं कि चीन के संस्करण में चौदह हैं।*

करता है, राजद्वार के दरवाजे पर रानी अपनी परिचारिकाओं (सेविकाओं) सहित बैठकर ऊपर से फूल बरसाती है। भूमि पर ढेर सारे फूल गिरते हैं। उत्सव बड़े समारोह सहित मनाया जाता है। प्रत्येक संघाराम के अलग-अलग रथ होते हैं। उनकी रथयात्रा के लिए एक-एक दिन नियत है। रथयात्रा महीने की पहली तिथि (वैसाख पूर्णिमा) को प्रारंभ होती है और चौदहवीं को पूरी होती है। रथयात्रा की समाप्ति होने पर महाराजा और महारानी राजमहल कोच ले गए।

नगर से पश्चिम दिशा में सात-आठ ली पर एक संघाराम है। इसे राजा का नव-विहार कहते हैं। यह अस्सी वर्ष में बना है और पूरे तीन राजाओं के शासनकाल तक बना है। यह कोई लगभग 250 हाथ ऊंचा होगा। इस पर सुंदर खुदाई का काम और पच्चीकारी है। ऊपर सोने-चांदी के पत्र चढ़े हैं और भांति-भांति के रत्न जड़े हैं। स्तूप के पीछे भगवान बुद्ध का विहार है। यह अत्यंत मनोहर है। इसकी धरन, धम्म स्तंभ, द्वार, किवाड़, जंगले आदि सभी पर सोने का पत्र चढ़ा है। इसके अतिरिक्त भिक्खुओं के रहने की कक्षाएं (आगार) भी अति रमणीय, भव्य और सुसज्जित बनी हैं। इसकी शोभा वाणी से वर्णन नहीं की जा सकती। पर्वतमाला के पूर्व छओं जनपदों के राजा अपने बहुमूल्य धन और रत्नों का अधिकांश (इस पर) धर्मार्थ लगाते हैं और अति स्वल्प (थोड़ा) अंश अपने खर्च में लाते हैं।

4

सीहून और जीहून

चौथे महीने में रथयात्रा संपन्न हुई। शांगशाउ अकेला एक तातारी सज्जन के साथ कुफेन[1] की ओर चला और 'फाह्यान' आदि जीहो[2] जनपद की ओर चले। मार्ग में 25 दिन चलकर उस जनपद में पहुंचे। जनपद का अधिपति (राजा) बड़ा धर्मिष्ठ है। एक सहस्र से अधिक भिक्खु यहां निवास करते हैं, सब महायान बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। यहां वे पंद्रह दिन रहे,

1. *काबुल प्रदेश*
2. *इस प्रदेश का अब तक ठीक प्रकार से पता यूरोप के विद्वानों को नहीं चला है। बील महोदय का मत है कि यह यारकंद खुतन से उत्तर-पश्चिम की ओर है। वाटर महोदय का अनुमान है कि यह 'ताशकुर्गन' ही है।*

फिर वहां से दक्षिण दिशा में चार दिन चले और सुंगलिंग[1] में होकर यूहे[2] जनपद में पहुंचे। वर्षा बिताई। विश्राम कर के पहाड़ में 25 दिन चलकर कीचा[3] जनपद में पहुंचे। हेकिंग आदि लोग उसे यहां पर ही फिर मिले।

5

कीचा व कैकय

इस समय इस जनपद के अधिपति ने पंच-परिषद आमंत्रित की थी। पंच-परिषद पांचवें वर्ष के अधिवेशन को कहते हैं। अधिवेशन होता है तो चारों ओर के भिक्खुगण मेघ की भांति चले आते हैं। भिक्खुओं के बैठने का स्थान सजाया जाता है, रेशम की ध्वजाएं, चांदनी लगती हैं, आसन के पीछे सोने-चांदी के पद्म के पुष्प लगाए जाते हैं, साफ-सुथरा आसन बिछाया जाता है। श्रमण उन आसनों पर बैठते हैं। राजा अपने सहचरों और मंत्रियों सहित उनकी यथाविधि पूजा करता है। यह प्रायः बसंत ऋतु के पहले, दूसरे व तीसरे महीने में होता है। राजा अधिवेशन आमंत्रित करता है। वह अपने बंधुओं और मंत्रियों को विविध प्रकार की पूजा करने के लिए प्रोत्साहित करता है। इसमें एक, दो, तीन, पांच अथवा सात दिन भी लग जाते हैं। पूजा होने के उपरांत राजा अपनी सवारी के घोड़े को मांगता है, लगाम और चार-जामा कसकर (फिर) अपने जनपद के गणमान्य मंत्रियों को सवार कराता है।[4] इसके अनंतर वह सफेद ऊनी वस्त्र, भांति-भांति के

1. *हिमालय और उसके विस्तार कराकोरम हिंदुकुश आदि जो पामीर तक फैले हुए हैं। यहां पामीर की ऊंची भूमि जो सीहून और जीहून के मध्य है।*
2. *इस जनपद का भी पता अब तक नहीं चला है। वाटर महोदय का अनुमान है कि यह वर्तमान 'अकताश' है। सुंगलिंग पर्वत पर किसी अंग्रेजी अनुवादक ने कुछ टिप्पणी नहीं लिखी है। बिल्कुल साफ छोड़ दिया है मानो वह चीन आदि देशों की भांति सामान्य बोधगम्य (समझ में आने लायक) स्थान है। लेगी महोदय ने सुंगलिंग शब्द का अनुवाद Onion Mountain अर्थात् प्याज का पर्वत भले की कर डाला है।*
3. *इसका भी ठीक पता अब तक यूरोपीय विद्वानों को नहीं लगा है। रेसुमट जी ने इसे कश्मीर काप्रोथ ने इस्कर्दू, बील महोदय ने करचाउ, इटेल ने खस और लेगी जी ने लद्दाख वा उसके आसपास का कोई प्रसिद्ध स्थान लिखा है।*
4. *इस वाक्य का अनुवाद बील महोदय ने इस प्रकार किया है—'राजा अपने दूतों*

बहुमूल्य रत्न, और श्रमणों के लिए उपयोगी वस्तुओं को लेता है और (अपने) बंधुओं और मंत्रियों के साथ पुकार-पुकार कर भिक्खुसंघ को दान में देता है। श्रमण जब दान पा जाते हैं तब (राजा) श्रमणों को दाम (कीमत, मूल्य) देकर जो-जो चाहे, सो ले लेता है।

यह देश पहाड़ी और ठंडा है। सुनते हैं कि यहां गेहूं के अलावा और कोई अन्न पैदा नहीं होता। भिक्खुसंघ को अग्रहार मिला कि तुषार (बर्फ) पड़ने लगी। अतः अब अधिपति भिक्खुसंघ से अग्रहार पाने के पूर्व ही गेहूं की उपज के लिए प्रार्थना करता है। इस देश में भगवान बुद्ध की एक पीकदानी है जो पत्थर की बनी है और भगवान बुद्ध के भिक्खापात्र के रंग की है। यहां बुद्ध का एक दांत भी है। इस जनपद में लोगों ने भगवान बुद्ध के दांत के लिए बुद्धविहार बना रखा है, वहां एक हजार से अधिक हीनयानी बौद्ध धर्म मानने वाले भिक्खु बसते हैं। पर्वत के पूर्व के साधारण लोग मोटा-झोंटा वस्त्र पहनते हैं जैसे कि हमारे हान देश में पहना जाता है, पर कोई बारीक पश्मीना, कोई कंबल (पहनता है)। श्रमणों का आचार आश्चर्यजनक है, इतना विधि-निषेधात्मक कि वर्णनातीत। यह जनपद सुंगलिंग पर्वतमाला के मध्य में है। इस पर्वतमाला से हम जितना ही आगे बढ़े, विभिन्न प्रकार की वनस्पति, वृक्ष और फल मिलते गए, केवल बांस, विल्व और ईख ये ही तीन हमारे देश की तरह होते हैं, यह सुना है।

6

तोले व दरद

यहां से पश्चिम उत्तर भारत की ओर चले। एक महीना चलकर 'सुंगलिंग' पर्वतमाला पार की। 'सुंगलिंग' पर्वतमाला ग्रीष्म ऋतु में हिमंत तक तुषारावृत (बर्फ से ढकी) रहती है। उस पर विषधर नाग रहते हैं, वे क्रोधित होकर विषयुक्त वायु छोड़ते हैं, तुषार गिराते, अंधड़ चलाते और पत्थर बरसाते हैं। यहां इन विपत्तियों से बचकर दस हजार में एक भी नहीं निकल पाता।

को सेनापतियों और प्रधान अमात्यों के पास अपनी सवारी का घोड़ा लेकर उन्हें सवार कराता है और उन्हें अनेक प्रकार के उपहार देता है।' और लेगी महोदय ने यह किया है कि "प्रधान मंत्रियों (महामात्यों) को घोड़े पर सवार कराता है।" सबने इन वाक्यों को संदिग्ध और अव्यक्त पाया है।

इस देश के निवासी इसे हिमालय पर्वत कहते हैं इस पर्वतमाला को पारकर वे उत्तर भारत में पहुंचे। सीमा में पैर रखते ही एक लघु जनपद मिला। इसका नाम तोले[1] था। यहां अनेक श्रमण (भिक्खु) सब हीनयानी बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। यहां पूर्वकाल में एक अर्हत था। वह अपनी ऋद्धि साक्षात क्रिया के बल एक चतुर कारु (शिल्पी) को तुषित लोक (स्वर्ग) ले गया कि वह मैत्रेय बोधिसत्व की ऊंचाई, वर्ण और रूप को देख आए और आकर उनकी लकड़ी की प्रतिमा बना दे। आदि से अंत तक उसे तीन बार देखने के लिए ऐसा करना पड़ा, तब कहीं प्रतिमा बनकर तैयार हुई। उसकी ऊंचाई अस्सी हाथ है और आसन पालथी के एक घुटने से दूसरे तक, आठ हाथ है। उपोसथ के दिन इससे शुभ्र (श्वेत) प्रकाश निकलता है, सभी जनपद के अधिपति इसकी पूजा के लिए होड़ाहोड़ी मचाते हैं। यह अब भी पहले की भांति ही दिखाई पड़ती है।

7

नदी पार करना

पर्वतमाला के किनारे दक्षिण-पश्चिम दिशा में चले, तो पंद्रह दिनों तक चलते रहे। पथ दुखदायी था, चढ़ाई-उतराई अधिक थी, किनारा बहुत ढालू पर्वताकार पाषाण की दीवार-सा सीधा खड़ा था जिसकी ऊंचाई नीचे से दस हजार हाथ थी। किनारे पर खड़े होने से आंख तिलमिलाती थी। आगे पग धरने को जगह न थी, नीचे जल था जिसे हिंतु[2] कहते हैं। आगे के

1. इसे दरद कहते हैं। यह प्रदेश सिंधु नदी के दाहिनी ओर पड़ता है।

2. 1. इसका अनुवाद सिंधु किया गया है। फाह्यान ने इसके पूर्व कहीं सिंधु का उल्लेख नहीं किया है। इसी से लेगी महोदय ने 14वें अध्याय, पृष्ठ 41, नोट 6 में लिखा है कि 'They had crossed the Indus before. They had done so, indeed, twice : first from north to south at Skardo or east of it and second as described in Ch. VII' अर्थात् वे पहले सिंधु पारकर चुके थे—दो बार और उतर चुके थे—एक तो स्कर्दों के पास, और फिर जिसका वर्णन अध्याय 7 में है। सांगयांग और हुईसांग के यात्रा विवरण में झूले का उल्लेख है, पर वहां सिंधु का नाम नहीं है। डॉ. ओफ्रैन जी का मत है कि 'हियन् तू' का अर्थ है, 'Hanging bridge' व वह पुल जो अधर में लटका हो। यहां पर बील महोदय, और वाटर महोदय ने कनिंघम जी के वर्णन

लोगों ने यहां पत्थरों को काटकर राह बना दी है—सीढ़ियां बनी हैं—सात सौ सीढ़ियां सब हैं। सीढ़ियों के नीचे रस्सी का झूला है। इसी पर चलकर नदी पार करते हैं, नदी का पाट अस्सी पग है। इसका उल्लेख 'क्यूयी'[1] में है, चांगकीन[2] यहां पहुंचे नहीं थे।

से जो उन्होंने लद्दाख में सिंधु के मार्ग का वर्णन किया है, निम्नलिखित वाक्यों को उद्धृत किया है। "From Skardo to Rangdo and from Rangdo to Makpou-i-Shang-rong, for upwards of (शेष अगले पृष्ठ पर) two miles, the Indus sweeps sullen and dark through a mighty gorge in the mountains, which for wild subilimity is perhaps unequalled. Rangdo means the country of defiles. Between these points the Indus raves from side to side of the gloomy chasm, foaming and chafing with ungovernable fury. Yet even in these inaccessible places has daring and ingenious man triumhed over nature. The yawning abyss is spanned by frail rope bridges, and the narrow ledges of rock are connected by...ladders to form a giddy pathway overhanging the seething caldron below" सारांश यह है कि स्कर्दे से रोंगड़ों तक और रोंगड़ों से माकुशेई-शांग-रोंग तक सिंधु नदी में बड़े-बड़े खड्ड (खाई) और दर्रे पड़े हैं, पर मनुष्यों ने वहां भी तंग दर्रे में खड्डों पर रस्सी के लटकते हुए पुल व झूले बनाकर राह बना ली है। मुमकिन है कि और नदियों में भी एकाध झूले हों जिनका उल्लेख चीनी यात्रियों ने किया है।

1. मूल में 'क्यूयी' पद है जिसका अर्थ है—'राजविस्तार का विवरण' पर लेगी महोदय ने Records of nine Interpreters अर्थात् 'नौ द्विभाषियों का विवरण' लिखा है। ये द्विभाषिए चीनी सेना के साथ पश्चिम देशों पर हमला करते समय आए थे।
2. लेगी महोदय का कथन है कि हान के महाराज 'वू' के काल में (140-87 ईसा से पूर्व) चांगकीन अमात्य (मंत्री) था। वह पहले चीन की सीमा पर अतिक्रमण कर पश्चिम के देशों में जहां अब तुर्किस्तान है घुसा था। उसी के द्वारा 115 वर्ष ईसा से पूर्व चीन और अन्य पश्चिम के 36 राज्यों में वाणिज्य संबंध स्थापित हुए थे। रमुसेट जी ने चांगकीन को हानवंशी 'कूटी' सम्राट का सेनापति लिखा और कहा है कि उसने 112 ई. में मध्य एशिया में हमला किया था। लेगी महोदय यह भी लिखते हैं कि चांगकीन के विवरणों का अनुवाद बील महोदय ने हानवंश को पहली पुस्तक से करके Anthropological Institute के जर्नल सन् 1880 ई. में प्रकाशित किया है। व कानयिंग1 1. 'कानयिंग' 'पान-चाव' की ओर से रोम के महाराज के पास दूत बनकर गया था और कश्यप सागर तक जाकर लौट आया था। इसका विवरण हानवंश की द्वितीय पुस्तक में है।

सभी भिक्खुओं ने फाह्यान से पूछा कि बौद्ध-धम्म पूर्व में कब[1] गया, बता सकते हो? फाह्यान ने उत्तर दिया—उस ओर वालों से पूछा था, वे कहते थे कि बाप-दादों से सुनते आए हैं कि मैत्रेय बोधिसत्व की प्रतिमा स्थापित कर भारत के भिक्खु सूत्र और विनयपिटक लेकर नदी पार गए। मूर्ति की स्थापना भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण काल से तीन सौ वर्ष पश्चात हुई। उस समय हान देश में चाव वंशी महाराज पिंग[2] का राज्य था। इस वाक्य से यह सिद्ध है कि हमारे धर्म का प्रचार इस प्रतिमा के स्थापन (काल) से प्रारंभ हुआ। भगवान मैत्रेय धर्मराज हैं, उसी शाक्य वंशावतंस ने त्रिरत्न की घोषणा (मुनादी) की है और यहां आकर पार के लोगों को धर्मोपदेश दिया है। हमें स्पष्ट मालूम है कि अश्रुतपूर्व धर्म का यह उद्घाटन (प्रचार) किसी मनुष्य का किया नहीं है अतः 'हान' के सम्राट मिंग[3] का स्वप्न सहेतुक था।

8

उद्यान जनपद

नदी पार करते ही उचांग[1] (उद्यान) जनपद पहुंचे। यह उद्यान जनपद वस्तुतया उत्तरीय भारत का देश है। लोग मध्य भारत की भाषा बोलते हैं। मध्य भारत कहते हैं मध्य जनपद देश को। साधारण लोगों का असन-बसन (रहन-सहन) 'मध्य देश' (भारत) के समान

---

1. लेगी महोदय ने 'कब और कहां' लिखकर नोट में लिखा है कि संभवतया सिंधु पारकर जहां ठहरे।
2. पिंग का शासन काल 750-719 तक ईसा के पूर्व में था। इससे भगवान बुद्ध का महापरिनिर्वाण काल ईसा से पूर्व 11वीं शताब्दी निश्चय होता है। पर भगवान बुद्ध का महापरिनिर्वाण काल 480 से 470 वर्ष ईसा से पूर्व माना जाता है।
3. 61 ईसवी में मिंग ने यह स्वप्न देखा था। देखें उपक्रम
4. यह जनपद सुवास्तु प्रदेश में है और स्वात नदी के दून के उत्तरी भाग में है।

ही है। बौद्ध-धम्म का आधिपत्य है। श्रमणों के आवास स्थान को 'संघाराम' कहते हैं। यहां सब पांच सौ संघाराम हैं। सब हीनयानानुयायियों के हैं। अतिथि भिक्खु उनमें आएं तो दिन तक (अर्थात दिन के 12 बजे तक) उन्हें भोजन दिया जाता है। तीन दिन व्यतीत होने पर कह दिया जाता है कि आप अपना कोई और आश्रय ढूंढ़ो।

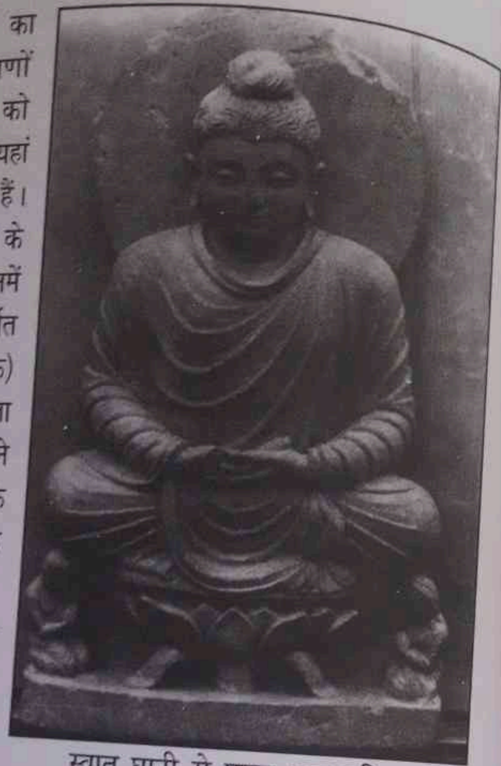

स्वात घाटी से प्राप्त बुद्ध प्रतिमा

जनश्रुति है कि जब भगवान बुद्ध का आगमन उत्तर भारत में हुआ तो पहले इस जनपद में पधारे। यहां भगवान बुद्ध के पद का चिह्न (बुद्ध पाद) बना है। वह दर्शकों की वृत्ति के अनुसार छोटा-बड़ा दिखाई पड़ता है। वह अब तक बना है और उसकी सारी बातें आज तक वैसी ही हैं। जिस शिला पर आकर यहां वस्त्र सुखाया था, वह जगह जहां पर 'नाग' को उपदेश दिया था, अब तक वैसी ही दिखाई

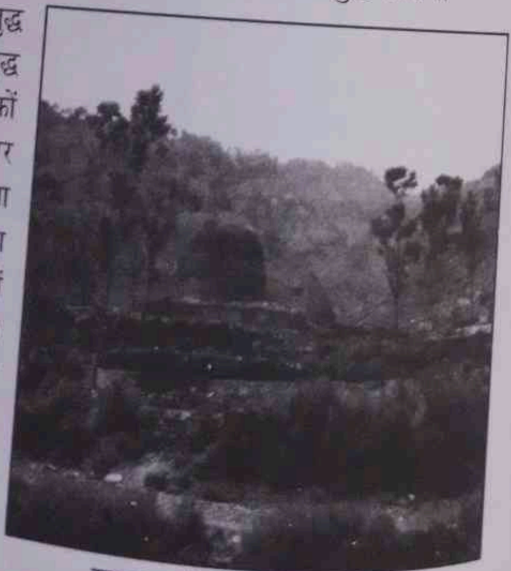

स्वात घाटी स्थित एक स्तूप

पड़ती है। शिला चौदह हाथ ऊंची, बीस हाथ चौड़ी, और एक ओर चिकनी है। 'हेकिंग', 'हेता': और 'तावचिंग' तीनों यहां से भगवान बुद्ध की छाया (भित्ति चित्र) का दर्शन करने नागर जनपद की तरफ चले गए। फाह्यान आदि 'उद्यान' नगर में रह गए और वर्षा (वर्षावास) बिताई। वर्षा बीतने पर दक्षिण उतरे और सुहोतो[1] जनपद में पहुंचे।

9

सुहोतो जनपद

इस देश में बौद्ध-धम्म ही प्रधान है। पूर्वकाल में देवराज शक्र (इंद्र) ने इस स्थल पर श्येन और कपोत[2] बाज से एक बोधिसत्व की परीक्षा की थी। उसने निज मांस काटकर कपोत के बदले में दिया था। भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त किया। उन्होंने अपने शिष्यों समेत यात्रा के समय उनसे कहा कि यही वह स्थान है, जहां मैंने अपना मांस काटकर कपोत के बदले में दिया था। जनपदवासियों को इस प्रकार वृत्तांत (कहानी) का ज्ञान हुआ और उन्होंने इस जगह धम्म स्तूप बनाया और सोने-चांदी के पत्र उस पर चढ़ाए।

10

गांधार

यहां से पूर्व में उतरकर वे पांच दिन चले। गांधार[3] जनपद में पहुंचे। यहां सम्राट अशोक का राजकुमार धर्मवर्द्धन[4] शासक था। भगवान बुद्ध ने जब वे बोधिसत्व थे, तब इस जनपद में एक मानव को अपनी आंख का

---

1. *यह स्वात नदी के नीचे का जनपद था। इसे स्वात कहते हैं। यह स्वात की घाटी का दक्षिणी भाग है।*
2. *यह कथा कपोत व शिवि जातक (499) में आई है। इसी कथा को शिवि की धर्म परीक्षा के नाम से लिखा है। देवराज शक्र स्वयं श्येन बन और अग्नि को कपोत बना राजा शिवि के निकट आए थे। कपोत राजा शिवि की गोद में गिर पड़ा था। शिवि ने उसकी रक्षा की और कपोत के कहने से अपने शरीर के मांस को काटकर उसके बराबर तौलकर श्येन को दिया था।*
3. *यह जनपद बहुत विशाल था। सारे अफगानिस्तान का दक्षिण भाग इसमें सम्मिलित था। इटेल ने ढेरी और वंजीर तक इसको विस्तार से लिखा है।*
4. *धर्मवर्द्धन सम्राट अशोक के पुत्र का ही दूसरा नाम है।*

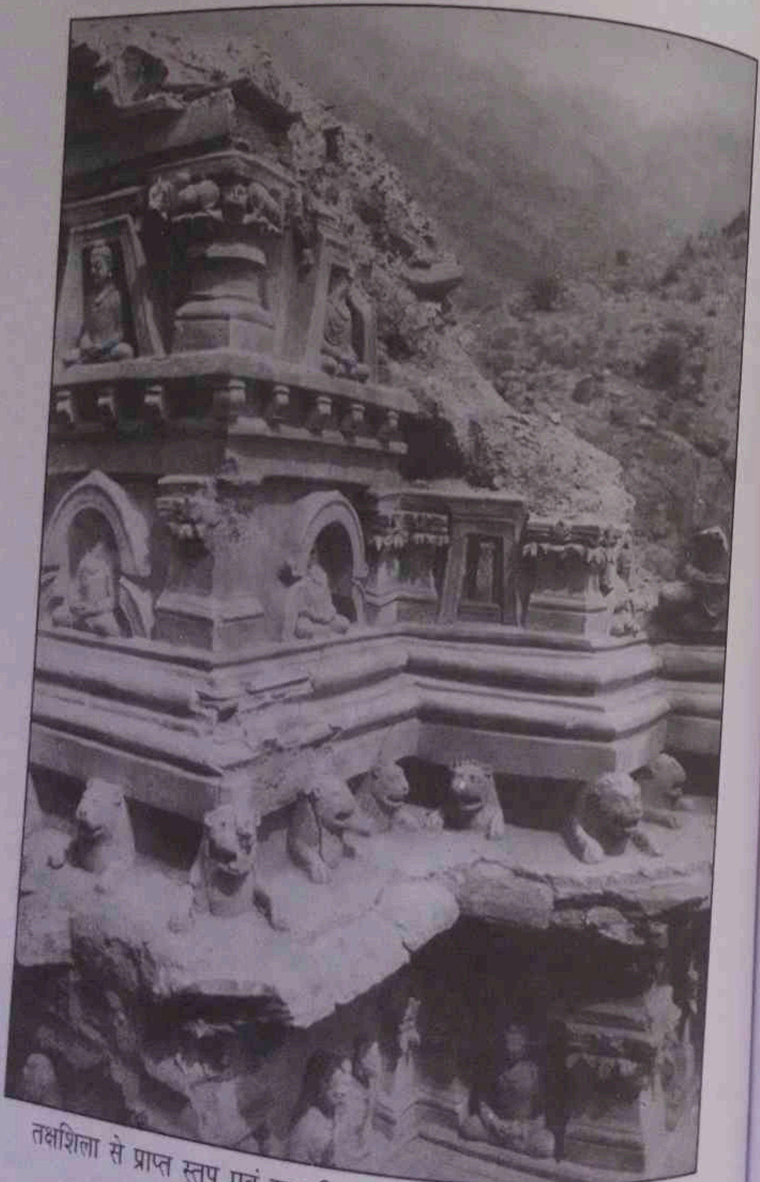

तक्षशिला से प्राप्त स्तूप एवं बुद्ध विहारों से उत्खनन में प्राप्त बुद्ध प्रतिमाओं की सुन्दरता देखते ही बनती है

दान दिया था।[1] इस स्थान पर बड़ा धम्म स्तूप बना है। उस पर सोने-चांदी के पत्र चढ़े हैं। इस जनपद के निवासी सभी हीनयान के अनुयायी हैं।

11

तक्षशिला

यहां से पूर्व और सात दिन चलकर तक्षशिर[2] नामक जनपद में पहुंचे। तक्षशिरा कहते हैं शिर कटे को। भगवान बुद्ध ने जब वे बोधिसत्व थे तब इस स्थान पर अपना सिर एक मानव को दानस्वरूप दिया था।[3] इसी कारण इसका ऐसा नाम पड़ा। पूर्व दिशा में दो दिन चलकर उस स्थान पर पहुंचे जहां बोधिसत्व ने भूखी बाघिन को अपने शरीर का दान दिया था।[4] दोनों स्थानों पर बड़े-बड़े धम्म स्तूप निर्मित हैं। उन पर बहुमूल्य धातुओं के पत्र चढ़े हैं। राजा, मंत्री और जन साधारण उनकी पूजा करते हैं। इन दोनों स्तूपों पर फूल और द्वीप चढ़ाने वालों का कभी तांता नहीं टूटता। इधर के लोग इसे चतुःस्तूप[5] कहते हैं।

12

पुरुषपुर

गांधार जनपद से दक्षिण की तरफ चार दिन चलकर पुरुषपुर (पेशावर) जनपद में पहुंचे। भगवान बुद्ध ने जब अपने शिष्यों समेत इस देश की चारिका (यात्रा) की तो आनंद थेर से कहा—'मेरे परिनिर्वाण के उपरांत इस देश में

---

1. *यह भी जातक की ही एक कथा है।*
2. *यह तक्षशिला का अपभ्रंश रूप है। यह रावलपिंडी से 22 मील पर थी। यहां तीन नगरों के अवशेष मिलते हैं, एक भीड़ टीले के निकट, दूसरा सिरकप और तीसरा सिरसुख। तीनों एक-दूसरे के उजड़ने पर बसे थे। सिरकप भी फाह्यान के आने के पूर्व उजड़ चुका था। उस समय सिरमुख में ही नगर बसा था। यहां की खुदाई से पुरातत्व विभाग के काम की विभिन्न वस्तुएं और अनेक धम्म स्तूपों के खंडहर मिले हैं।*
3. *एक जातक कथा का वृत्तांत।*
4. *व्यग्ध जातक (272) के आधार पद।*
5. *कपोत धम्म स्तूप, चक्षुस्तूप, और दोये स्तूप।*

महाराजा कनिष्क की भग्न प्रतिमा

कनिष्क नामक राजा होगा। वह यहां धम्म स्तूप बनवाएगा। पीछे कनिष्क[1] संसार में पैदा हुआ। एक दिन वह सैर करने जा रहा था कि देवराज शक्र उसे चेतावनी देने के लिए, ग्वालबाल का रूप धारण कर राह में धम्म स्तूप बनाने लगे। राजा ने पूछा कि तू क्या बना रहा है? उसने जवाब दिया कि भगवान बुद्ध का धम्म स्तूप बना रहा हूं। राजा ने कहा बहुत अच्छा। ऐसा कहकर राजा ने भी बालक के लघु धम्म स्तूप के ऊपर चार सौ हाथ ऊंचा और अनेक रत्नों से जड़ित दूसरा धम्म स्तूप बनवा दिया। अनेक धम्म स्तूप और बुद्धविहार यात्रा में देखे पर इतना सुंदर और भव्य कोई और न मिला। कहते हैं कि जंबुद्वीप में यह धम्म स्तूप सर्वोत्तम है। राजा ने यह स्तूप उस छोटे धम्म स्तूप पर बनवा तो दिया पर वह बड़े स्तूप के दक्षिण की तरफ तीन हाथ से अधिक ऊंचा निकल आया।

भगवान बुद्ध का भिक्खापात्र भी इसी जनपद में है। पूर्वकाल में यूशे[2] राजा ने विशाल सेना लेकर इस देश पर आक्रमण किया था और भगवान बुद्ध को उठा ले जाना चाहा था। उसने इस जनपद को जीत लिया। यूशे:

1. *विंसेंट स्मिथ महोदय ने लिखा है कि कनिष्क 120 व 128 में राजसिंहासन पर बैठा था, कोई इसका 10 ई. में सिंहासन पर विराजमान होना बताते हैं।*
2. *यूशे लोग 173 ई.पू. चीन के उत्तर-पश्चिम से निकाले गए थे और 160 ई. में उन्होंने शकों को परास्त किया था। फिर शकों ने आक्सस नदी के उत्तर में उन्हें खदेड़ दिया। इसके बहुत दिन पश्चात ई.पू. 459 में काडफाइसस ने यूशे को एकत्र किया। इटल महोदय का मत है कि ये लोग शक और तातार थे और ई.पू. 180 में हूणों ने उन्हें निकाल दिया था तब आक्सस नदी के पास देश को बाखतर से 126 ई.पू. में उन्होंने छीन लिया और अंत में पंजाब, कश्मीर आदि को विजित किया।*

राजा और उसका सेनापति बौद्ध-धम्म के मानने वाले थे और भिक्खापात्र ले जाने के लिए उन्होंने जाकर बड़ी पूजा की। त्रिरत्न की बड़ी पूजा कर एक हाथी सजाकर भिक्खापात्र उस पर रखा गया, पर हाथी भूमि पर घुटने के बल बैठ गया और आगे न बढ़ा। फिर चार पहिए की गाड़ी पर भिक्खापात्र को रखा और आठ हाथी जोते पर वे भी उसे न खींच सके। राजा जान गया कि भिक्खापात्र को गजरथ पर ले जाने का संयोग नहीं है। वह बहुत चिंतित और शर्मिंदा हुआ। निदान स्वरूप उसने वहां एक धम्म स्तूप और संघाराम बनवा दिया। रक्षा के लिए रक्षक नियत किए और विविध प्रकार के दान दिए।

यहां कोई 700 से अधिक श्रमण रहते होंगे। जब मध्याह्न होता है श्रमण भिक्खापात्र बाहर निकालते हैं और गृहस्थों[1] के साथ उसकी विविध भांति से पूजा करते हैं, तब मध्याह्न का आहार करते हैं। सायं काल धूप देने का समय आता है तब फिर ऐसा ही करते हैं। इसमें दो छूट पेक् से अधिक आ सकता है। यह कृष्णवर्ण की प्रधानता लिए अनेक वर्ण का है। इसकी मोटाई एक इंच के पांचवें हिस्से (2 सूत) के समान है जिसकी कांति बड़ी उज्ज्वल तथा जगमगाती हुई है। चारों तहें अलग-अलग दो-दो के बीच जोड़-सी दिखाई पड़ती हैं। गरीबों के थोड़े पुष्प चढ़ाने से यह शीघ्र भर जाता है, परंतु यदि कोई बड़ा धनी बहुत-से फूल चढ़ाने की कामना करे तो फूलों की सौ सहस्र क्या अयुत (अनेकानेक) टोकरियों से भी नहीं भरता।

'पावयुन' 'सांगकिंग', ने बुद्ध के भिक्खापात्र की पूजा करके लौटना चाहा। ह्वेकिंग, ह्वेता और तावचिंग' पहले ही नगर की तरफ बुद्ध की छाया, बुद्ध के दांत और कपालधातु की पूजा करने चले गए थे। ह्वेकिंग तो बीमार पड़ गया, तावचिंग' उसकी सेवा के लिए ठहर गया। ह्वेता अकेला पुरुषपुर गया और उसने सबको देखा। फिर ह्वेता, पावयुन और सांगकिंग चीन देश को पुनः वापस चले गए। भिक्खापात्र के विहार में ह्वेकिंग की दशा बिगड़ती गई।[2] इस पर फाह्यान ने बुद्ध के कपालधातु की ओर का मार्ग लिया।

1. *चीनी भाषा के मूल में "श्वेताम्बर" है। भिक्खु ही रंगे वस्त्र पहनते हैं इसीलिए यह शब्द गृहस्थों के लिए प्रयुक्त हुआ है।*
2. *चीनी भाषा के मूल में जो चिह्न है उसका आशय है 'अवस्था का बिगड़ते जाना' पर उसे न समझकर लेगी महोदय आदि ने came to his end और*

13

नगार व नगरहरा

दक्षिण दिशा में 16 योजन चलकर नगर जनपद की सीमा पर हेलो[1] नगर में पहुंचे। इस नगर में भगवान बुद्ध का 'कपालधातु' एक विहार में है। विहार पर सोने-चांदी के पत्र चढ़े हैं और सप्तरत्न जड़े हैं। जनपद का राजा कपालधातु का अत्यधिक मान-सम्मान करता है और उसे चिंता रहती है कि कहीं उसे चोर न ले जाएं। उसने जनपद के श्रेष्ठ कुलों के आठ मनुष्यों (अट्ठकुलिकों) को नियत किया है। प्रत्येक को एक-एक चाबी दे दी जाती है। वे इसे चाबी से बंद करते और रक्षा प्रदान करते हैं। किवाड़ खोलकर सुगंधित जल से हाथ धोते हैं, फिर भगवान बुद्ध के कपालधातु को निकालकर विहार के बाहर उच्च सिंहासन पर रखते हैं। यह सप्तरत्न के संपुट (दोना) में रहता है जिस पर स्फटिक का ढक्कन होता है और मोतियों की झालर लगी रहती है। धातु पीताभ श्वेत वर्ण है, चार इंच (सुएनच्वांग ने 12 इंच लिखा है) भर गोलाई में है और मध्य में उभरा हुआ है। विहार से बाहर निकलने वाले ऊंचे मचान पर चढ़कर बड़ा डंका बजाते

योगीन्द्रनाथ समाहार ने 'तथाय देहावसान करिलेन' उसी के आधार पर अनुवाद किया है। लेगी महोदय 13 अध्याय में हेकिंग की मृत्यु का वर्णन देख चकरा गए हैं। वे इस अध्याय के नोट में लिखते हैं–"This should be Hwuy-ying. King was at this time ill in Nagar and indeed *(शेष अगले पृष्ठ पर)* *afterwards he dies in crossing the little snowy mountains, but all the texts make him die twice. The confounding of the two names has been pointed out by Chinese critics." यह हेयिंग होना चाहिए। किंग उस समय नगर में बीमार पड़ा था और वह पीछे छोटा हिमालय पार करते मरा, पर सब मूल ग्रंथों में इसका दो बार मरना लिखा है। चीनी आलोचकों ने भी इन दोनों नामों की गड़बड़ी स्वीकार की है। वे 14 अध्याय के नोट 1 में घबराकर लिखते हैं कि ill the texts have Hwuyking, see note 2. page 36. chap. viii. अर्थात सभी मूल ग्रंथों में हेकिंग है, देखो नोट 2, पृ. 36। पर लेगी महोदय को यह न सूझी कि कपालधातु नगर ही में थी। ज्ञात होता है कि कपालधातु संघाराम को उन्होंने भ्रमवश नगर से अलग समझा।*

1. *इसे अब हिड्डा कहते हैं। यह पेशावर के पश्चिमी जलालाबाद से पांच मील दक्षिण में है। इस जनपद को नगरहरा भी कहते थे।*

हैं, शंखनाद करते और तांबे की झांझ ठोकते हैं। राजा शब्द सुनकर विहार में जाता है, पुष्प और धूप से पूजा करता और विनती करके चला जाता है।[1] पश्चिम के द्वार से जाता और पूर्व के द्वार से आता है। नित्य प्रातःकाल के समय राजा पूजा-अर्चना करता है। पूजा करके फिर राज्य का कार्य करता है। यहां के सेठ लोग भी पहले यहां पूजा करके तब फिर अपने घर का काम-काज करते हैं। प्रतिदिन ऐसा ही होता है। क्रिया में तनिक भी व्यतिक्रम (क्रमभंग) नहीं होने पाता। पूजा हो जाती है तो धातु विहार में रख देते हैं। यह सप्त-धातु निर्मित 'विमोक्ष स्तूप'[2] निकालने और रखने के वक्त खुलता और बंद होता है। यह पांच हाथ ऊंचा है। विहार के द्वार पर सुबह के समय फूल और धूप बेचनेवालों की भीड़ लगी रहती है। पूजा करने वाले उनसे खरीदकर फूल चढ़ाते हैं। अनेक देश के राजा हमेशा अपनी ओर से यहां पूजा करने के लिए दूत भेजते रहते हैं। विहार तीस पग घेरे में है। आकाश हिले, पृथ्वी धंसे, पर यह स्थान नहीं हिल सकता।

यहां से उत्तर में एक योजन जाकर 'नगार' जनपद की राजधानी में पहुंचे। यहां भगवान बुद्ध ने जब वे बोधिसत्व थे, फूलों की पांच डालियां मोल लेकर 'दीपंकर बुद्ध' को अर्पण की थीं। नगर के मध्य में भगवान बुद्ध का दंतस्तूप है। वहां भी कपालधातु की भांति पूजा होती है।

'नगार' के पूर्व में एक योजन चलकर एक दून के मुहाने (नाके) पर पहुंचे। यहां भगवान बुद्ध का दंड है।[3] यहां पर भी बुद्धविहार बना हुआ है तथा उसमें भी पूजा होती है। दंड गोशीर्ष चंदन का बना हुआ सत्रह अठारह हाथ लंबा है और लकड़ी की चोंगी में रखा है। सैकड़ों हजारों लोगों से भी नहीं उठ सकता।

---

1. *लेगी महोदय ने लिखा है कि सब यथाक्रम हो जाने पर सिर पर रखता है।*
2. *वह स्तूप जिसके भीतर धातु के रखने और निकालने का मार्ग बना हो।*
3. *आईसिंग महोदय ने लिखा है कि मैंने अपने नेत्रों से देखा है कि भारतवर्ष में दंड के ऊपर लौह की मुठ (कुबड़ी) होती है जिसका व्यास दो व तीन इंच और मध्य से चार-पांच अंगुल धातु की छड़ की भांति मोटा होता है। यह दंड दृढ़ और कड़ी लकड़ी का होता है और पैर से भौं तक ऊंचा होता है, इसमें नीचे लौह की सामी लगी होती है।*

दून के मुहाने से पश्चिम की तरफ चलने पर भगवान बुद्ध की संघाटी[1] मिलती है। यहां पर भी एक बुद्धविहार है जिसकी पूजा होती है। इस देश के लोगों में यह प्रचलन है कि जब अवर्षण (अकाल) पड़ता है तो देश के लोग झुंड-के-झुंड एकत्रित होकर उस वस्त्र को निकालते हैं और पूजा-अर्चना करते हैं, तब दैव कृपा होती है।

नगर के दक्षिण में आधे योजन पर पर्वत में एक पहाड़ी गुफा है जिसका द्वार दक्षिण-पश्चिमाभिमुखी है। इसमें भगवान बुद्ध की छाया है। दस पग से अधिक दूर जाकर देखने से साक्षात दर्शन होता है। उनके स्वर्णाभ वर्ण और लक्षण[2] स्पष्ट और स्वच्छ दिखाई पड़ते हैं, पर ज्यों-ज्यों पास जाने पर स्वप्नवत विलीन होते जाते हैं। सभी देशों के राजा बड़े-बड़े चतुर चितेरे प्रतिकृति बनाने के लिए भेजते-भेजते हार गए, पर कोई बना न सका। इस देश के लोगों में यह लोकोक्ति चली आती है कि सहस्र बुद्धों की छाया यहां रहेगी।

छाया के दक्षिण चार सौ पग पर जब भगवान बुद्ध यहां आए थे तो उन्होंने अपने केश और नख का छेदन किया था। फिर अपने शिष्यों के साथ जाकर सत्तर-अस्सी हाथ ऊंचे धम्म स्तूप का निर्माण करवाया था, जो पीछे के स्तूपों का नमूना हुआ। वह आज तक भी मौजूद है। इसके निकट एक संघाराम भी है वहां लगभग 700 श्रमण-भिक्खु निवास करते हैं। इस स्थान पर अर्हत और प्रत्येक बुद्ध (=पालि=पच्चेक बुद्ध) के धम्म स्तूप सहस्र के लगभग होंगे।

14

हेकिंग की मृत्यु—लोई और पोना जनपद

यहां तीन मास जाड़े भर रुककर फाह्यान आदि तीन लोग दक्षिण की ओर छोटे हिमाद्रि पर गए। हिमाद्रि[3] जाड़े-गर्मी दोनों में तुषारावृत्त (बर्फ से ढ़का हुआ) रहता है। पर्वत के उत्तर छाया में उन्हें ठंडी वायु चलती मिली। सभी ठिठुरकर मूक रह गए। हेकिंग तो बेकार हो गया और उसके मुंह से फिचकुर निकल पड़ा। वह फाह्यान से बोला कि मैं तो जीने का नहीं, तुम तत्काल यहां से भागो, ऐसा न हो कि सब के सब यहीं मर जाएं। इतना

1. संघाटी-चीवर का तीन में से एक अंग—चादर (उपरला चीवर)।
2. महापुरुषों के बत्तीस लक्षणों के लिए देखें परिशिष्ट-2।
3. सफेद कोह। हिमाद्रि से छोटा है इसलिए इसे छोटा हिमाद्रि लिखा है।

कहकर वह तो मर गया। फाह्यान उसके शव (मृत शरीर) को पीट-पीटकर यह कहकर चिल्लाकर रोने लगा कि मुख्य उद्देश्य पर पानी फिर गया[1] —भाग्य, हम क्या करें? निदान उठे और दक्षिण पर्वतमाला को ज्यों-त्यों पार कर लोई[2] जनपद में पहुंचे। यहां लगभग तीन हजार महायान और हीनयानानुयायी श्रमण (भिक्खु) बसते हैं। वहां वर्षावास के लिए ठहरे। उसे बिताकर दक्षिण की ओर दस दिन चलकर पोना[3] जनपद में पहुंचे। यहां लगभग तीन सहस्र के लगभग हीनयानानुयायी श्रमण निवास करते हैं। यहां से पूर्व दिशा में तीन दिन चले फिर 'हिंतू'[4] जनपद पार किया। इस पार की भूमि समतल और नीची थी।

15

पीतू व पंजाब

नदी पार करते ही पीतू[5] नामक जनपद पड़ा जहां बौद्ध-धम्म का बहुत प्रचार था। सब महायान और हीनयान के अनुयायी थे। चीन देश से अपने सहधर्मी को आया देख उन्होंने बड़ी कृपा और सहानुभूति प्रकट की। कहने लगे कि प्रांत में रहकर ये लोग प्रव्रज्या लेकर सद्धम्म की खोज में आए। उनकी कामना पूर्ण की और धर्मानुसार उनसे व्यवहार किया।

16

मथुरा

यहां से दक्षिण-पूर्व दिशा में अस्सी योजन चले। पथ में लगातार बहुत से बुद्ध विहार मिले, जिनमें लाखों श्रमण मिले। सभी स्थानों में होते हुए एक जनपद में पहुंचे। जनपद का नाम मताऊला (मथुरा) था। पूना (यमुना)

1. *बील महोदय ने इसका अनुवाद 'Our purpose was not to produce fortune' और लेगी महोदय ने "Our original plan has failed" किया है।*
2. *लोई व रोही—काबुल के एक भाग का नाम जो सफेद कोह के दक्षिण और कुर्रम नदी के आसपास है।*
3. *'बन्नू' यह पंजाब में है।*
4. *यहां भी हियंतु शब्द है जिसे सिंधु लिखा है।*
5. *सिंधु नदी के बाएं किनारे का देश। इसमें संपूर्ण पंजाब सम्मिलित था।*

नदी के किनारे-किनारे चले। नदी के दाएं-बाएं बीस विहार थे। जिनमें तीन हजार से ज्यादा भिक्खु रहते थे। बौद्ध-धम्म का अच्छा-खासा प्रचार अब तक है। मरुभूमि से पश्चिम भारत के सभी जनपदों में जनपदों के अधिपति (राजा) बौद्ध धर्मानुयायी मिले। भिक्खुसंघ को भिक्खा कराते या देते समय वे अपने मुकुट उतार देते हैं। अपने बंधुओं और अमात्यों सहित अपने हाथों से आहार परोसते हैं। परोस कर प्रधान[1] के आगे आसन बिछवाकर बैठ जाते हैं। संघ के समक्ष खाट पर बैठने का साहस नहीं करते। तथागत बुद्ध के समय जो प्रथा राजाओं में भिक्खा कराने की थी, वही अब तक चली आ रही है।

यहां से दक्षिण मध्य देश (दक्षिण भारत) कहलाता है। यहां शीत और ऊष्ण ऋतु एक समान है। प्रजा बहुत साधन संपन्न और सुखी है। व्यवहार की लिखा-पढ़ी और पंच-पंचायत कुछ नहीं है। लोग राजा की भूमि जोतते और उपज का अंश (हिस्सा) देते हैं। जहां चाहें जाएं, जहां चाहें रहें। राजा न प्राणदंड देता है और न शारीरिक दंड देता है। अपराधों को अवस्थानुसार उत्तम व मध्यम साहस का अर्थदंड दिया जाता है। बार-बार दस्यु कर्म करने पर दक्षिण करच्छेद किया जाता है। राजा के प्रतिहार और सहचर वेतनभोगी हैं। सारे देश में कोई निवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्यपान करता है और न लहसुन-प्याज खाता है; सिवाय चांडाल के। दस्यु को चांडाल कहते हैं। वे नगर के बाहर रहते हैं और नगर में जब प्रवेश करते हैं तो सूचना के तौर पर लकड़ी बजाते चलते हैं, कि लोग जान जाएं और बचकर चलें, कहीं उनसे छू (स्पर्श) न जाएं। जनपद में सूअर और मुर्गी नहीं पालते, जीवित पशु बेचते हैं, न कहीं सूनागार और शराब की दुकानें हैं। क्रय-विक्रय में कोड़ियों का व्यवहार है। केवल चांडाल मछली मारते, मृगया (शिकार) करते और मांस बेचते हैं।

भगवान बुद्ध के बोधि लाभ करने पर सभी जनपदों के राजा और सेठों (श्रेष्ठियों) ने भिक्खुओं के लिए बुद्ध विहार बनवाए। खेत, घर, वन, आराम वहां की प्रजा और पशुओं को दान कर दिए। दान-पत्र ताम्र-पत्र पर खुदे हैं। प्राचीन राजाओं के समय से चले आ रहे हैं, किसी ने आज तक (यह

1. *संघ का नायक। यह कोई 'महास्थविर' होता था जो संघ में विद्या-वयोवृद्ध होता था। (यानी ज्ञान की दृष्टि से सबसे वरिष्ठ होता था। भिक्खुसंघ का मुखिया होने के कारण 'संघ नायक' कहलाता था—सं.)*

क्रम) विफल नहीं किया, अब तक वैसे ही हैं विहार में संघ को खान-पान मिलते हैं, वस्त्र मिलता है, आए-गए को वर्षा में आवास (घर) मिलता है।[1]

श्रमणों का काम अच्छे कर्मों से धर्मोपार्जन करना, सूत्र का पाठ करना और ध्यान लगाना है। आगंतुक (अतिथि) भिक्खु आते हैं तो रहने वाले (स्थायी) भिक्खु उन्हें आगे बढ़कर लेते हैं। उनके वस्त्र और भिक्खापात्र स्वयं ले आते हैं। उन्हें चरण धोने को जल और सिर में लगाने को तेल देते हैं। विश्राम करने पर उनसे पूछते हैं कि कितने दिनों से प्रव्रज्या ग्रहण की है फिर उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार आवास (रहने को स्थान) देते हैं और नियमानुसार उनसे व्यवहार करते हैं।

भिक्खुसंघ के स्थान पर सारिपुत्र, महामौद्गल्यायन और महाकाश्यप के स्तूप बने रहते हैं और वहीं अभिधर्म, विनय और सूत्र के धम्म स्तूप भी होते हैं। वर्षावास से एक मास पीछे उपासक लोग भिक्खुओं को दान देने के लिए परस्पर स्पर्द्धा करते हैं। सब ओर से लोग साधुओं को विकाल[2] के लिए 'पेय' भेजते हैं। भिक्खुसंघ के संघ आते हैं, धर्मोपदेश करते हैं, फिर सारिपुत्त के स्तूप की पूजा माला और गंध से करते हैं। सारी रात दीपमालिका होती है और गीत-वाद्य कराया जाता है।

सारिपुत्त कुलीन ब्राह्मण थे। तथागत से प्रव्रज्या के लिए प्रार्थना की थी। महामौद्गल्यायन और महाकश्यप ने भी ऐसा ही किया था। भिक्खुनियां प्रायः आनंद के स्तूप की पूजा करती हैं। उन्होंने ही तथागत से स्त्रियों को प्रव्रज्या देने की प्रार्थना की थी। श्रामणेर राहुल की पूजा करते हैं। अभिधर्म के अभ्यासी अभिधर्म की, विनय के अनुयायी विनय की पूजा करते हैं। प्रति वर्ष पूजा एक बार होती है। हर एक के लिए दिन नियत है। महायान के अनुयायी प्रज्ञापारमिता, मंजुश्री[3] और अवलोकितेश्वर[4] की पूजा करते हैं।

1. *अंग्रेजी अनुवादकों ने इस वाक्य का अनुवाद न जाने क्यों छोड़ दिया है।*
2. *दिन के 12.00 बजे के पश्चात भोजन करने को 'विकाल भोजन' कहते हैं। इस दौरान ठोस भोजन नहीं अपितु तरल पेय ही दिया जाता है।*
3. *इन्हें महामति कुमार भी कहते हैं। ये एक बोधिसत्व हैं।*
4. *चीनी भाषा में इन्हें कावूनेशेयेन कहते हैं। तिब्बत में यह महापुरुष है, पर जापान के लोग इसे देवी मानते हैं।*

जब भिक्खु वार्षिकी अग्रहार पा जाते हैं तब सेठ और ब्राह्मण लोग उनको वस्त्र और अन्य पुरस्कार बांटते हैं। भिक्खु उन्हें लेकर यथाभाग विभक्त करते हैं। भगवान बुद्ध के बोधि प्राप्त काल से ही यह रीति, आचार-व्यवहार और नियम अविच्छिन्न रूप से लगातार चले आ रहे हैं। हियंतु उतरने के स्थान से दक्षिण भारत तक और दक्षिण समुद्र तक चालीस-पचास हजार ली तक चौरस (भूमि) है, इसमें कहीं पर्वत, झरने नहीं हैं, केवल नदी का ही जल है।

17

संकाश्य

यहां से दक्षिण-पूर्व अठारह योजन चले—संकाश्य (कन्नौज से पश्चिम दिशा में फरुर्खाबाद जिले के संकिसया नामक स्थान पर इसके खंडहर हैं) नामक जनपद मिला। जब भगवान बुद्ध त्रयस्त्रिंश लोक (स्वर्ग) गए थे, तो तीन मास अपनी माता को अभिधर्म का उपदेश देकर उसी जगह पर उतरे थे (*इस सम्बन्ध में इस अध्याय के अंत में पृ. 105 पर दी गई टिप्पणी देखें)। भगवान बुद्ध त्रयंस्त्रिश लोक में अपनी दिव्य[1] शक्ति से गए थे, उन्होंने अपने शिष्यों को भी न बतलाया था। वर्षावास बीतने पर जब सात दिन रह गए तब दृष्टि-अवरोध दूर हुआ। आयुष्मान अनिरुद्ध थेर ने दिव्यचक्षु से भगवान को देखा और तत्क्षण आयुष्मान महामौद्गल्यायन से कहा कि जाकर भगवान का अभिवादन करो। महामौद्गल्यायन भगवान के समीप गया और अभिवादन करके उसने उनसे संवाद किया। भगवान बुद्ध ने कहा कि सात दिन पीछे जंबुद्वीप में उतरूंगा। महामौद्गल्यायन लौट आया। फिर आठों जनपद के अधिपति (राजा) अमात्य और प्रजाजन जो भगवान बुद्ध के दर्शन के प्यासे थे, इस जनपद में भगवान के दर्शनों के लिए इकट्ठे होने लगे। भिक्खुनी उत्पलवर्णा ने अपने मन में कहा कि आज देश-देश के राजा अमात्य और प्रजाजन भगवान को मिलने आए हैं। मैं एक साधारण-सी स्त्री हूं, कैसे भगवान को पहले अभिवादन कर सकूंगी। भगवान बुद्ध ने अपनी दिव्य शक्ति से उसे (आध्यात्मिक जगत का) चक्रवर्ती राजा बना दिया। उसने भगवान बुद्ध को पहले अभिवादन किया।

1. कोई-कोई इसे 'ऋद्धि' भी कहते हैं।

भगवान का देवलोक से संकिसा में अवतरण का दृश्य (गांधार मूर्तिकला)

भगवान बुद्ध जब त्रयस्त्रिंश लोक से आए थे तो उतरते समय तीन निःश्रेणियां (पालि=निस्सेनी=सीढ़ियां) प्रगट हुई थीं। भगवान बुद्ध मध्य की निःश्रेणी (सीढ़ी) पर थे। वह सप्त-रत्नमयी थी। ब्रह्मलोक के महाराज ने दाहिनी ओर चांदी की निःश्रेणी प्रगट की थी और वे श्वेत चामर लेकर खड़े थे। देवराज शक्र ने बाईं ओर तप्त कांचन की निःश्रेणी प्रकट की थी और वे सप्त रत्नमय छत्र लेकर खड़े थे। अनगिनत देवतागण भगवान बुद्ध के साथ उतरे थे। तीनों निःश्रेणियां भूमि में धंस गईं, केवल सात आरोह देखने को बच गए थे। बाद में सम्राट अशोक ने यह जानने के लिए कि (निःश्रेणी की) नींव कहां है, खोदने के लिए आदमी भेजे, पीले जल तक भूमि खोदी गई, पर अंत न मिला। राजा की श्रद्धा-भक्ति बढ़ गई, उसने 'आरोह का विहार' बनवाया और मध्य के आरोह पर 16 हाथ की मूर्ति स्थापित की, विहार के पीछे तीस[1] हाथ ऊंचा धम्म स्तंभ बनवाया, जिसके ऊपर सिंह की प्रतिमा[2] बनी है। स्तूप के चारों ओर भगवान बुद्ध की मूर्ति बनवाई। भीतर-बाहर से स्वच्छ स्फटिक जैसा चमकीला है। यहां जैनियों[3]

1. चीनी भाषा में चाउ है। वह लगभग हाथ भर का होता है। जिसे अंग्रेजी अनुवादकों ने 50 हाथ लिखा है।
2. वर्तमान संकिसा में शेर की प्रतिमा वाला स्तंभ तो नहीं है, हां वहां अब भी हाथी की पाषाण प्रतिमा से युक्त स्तंभ का ऊपरी भाग अवश्य विद्यमान है।
3. अन्य तीर्थंकर व अन्य तीर्थों से अभिप्राय जैनाचार्यों से है।

के आचार्यों ने भिक्खुओं से इस स्थान के अधिकार पर विवाद किया। भिक्खु निग्रह स्थान में आ रहे थे। विपक्षियों ने प्रण किया और कहा कि भिक्खुओं के पक्ष का अधिकार हो, तो कुछ दैवी साक्षी मिले। विपक्षियों का यह कहना था कि स्तूप पर सिंह बड़े जोर से तड़पा। साक्षी देख विपक्षी डर गए और पराजित होकर वहां से भाग गए।

भगवान बुद्ध तीन मास तक (वर्षावास के दौरान) स्वर्ग का अन्न खाते रहे थे, उनकी देह से देवताओं को सुवास (सुगंध) आती थी। वह सामान्य मनुष्यों में नहीं होती। उन्होंने तत्क्षण स्नान किया था। बाद में लोगों ने उस जगह को तीर्थ स्थान बना दिया। वह तीर्थ स्थान अब तक मौजूद है।

जिस स्थान पर उत्पलवर्णा ने भगवान बुद्ध का अभिवादन किया था, वहां स्तूप बना हुआ है। जहां भगवान बुद्ध आकर बैठे, जहां केश और नखछेदन किया, वहां भी स्तूप बने हैं। जहां पूर्व के तीन बुद्ध और शाक्यमुनि बुद्ध बैठे थे, जिस स्थान पर चंक्रमण किया था, जिस स्थान पर सब बुद्धों की छाया है, सर्वत्र धम्म स्तूप बने हैं। इस स्थान पर लगभग चार हजार श्रमण (भिक्खु) होंगे। सभी भिक्खुसंघ के भंडार में भोजन पाते हैं और हीनयान तथा महायान के अनुयायी मिलजुल कर रहते हैं।

इस स्थान के पास ही एक श्वेतकर्ण नाग (लगता है यह कोई वहां का मूलनिवासी पराक्रमी नाग जाति का कोई धनी-मानी व्यक्ति रहा होगा–सं.) है। वही भिक्खुसंघ का दानपति है। जनपद में उसी से पुष्कल अन्न होता है, समयोचित वृष्टि (वर्षा) होती है और ईतियां (बाधाएं) नहीं पड़तीं। इसके प्रत्युपकार में भिक्खुसंघ ने नाग के लिए बुद्ध विहार बना दिया है, उसके बैठने के लिए आसन कल्पित है, उसका भोग लगता है और पूजा होती है। भिक्खुसंघ से नित्य तीन लोग नाग विहार में जाते हैं और भोजन करते हैं। वर्षावास बीतने पर नागराज कलेवर बदलता है। एक छोटा-सा संपोला बन जाता है जिसके कानों के पास सफेद बुंदकियां होती हैं। भिक्खुसंघ उसे पहचानते हैं, तांबे के कलश में दूध भरते हैं और नाग को उसमें डाल सब ऊंच-नीच के पास ले जाते हैं। यह कृत्य अकथनीय होता है। ऐसी यात्रा वर्ष में एक बार होती है। जनपद बहुत उपजाऊ है, प्रजा प्रभूत और सुखी है। यहां दूसरे देश के लोग आते हैं तो उन्हें कष्ट नहीं होने पाता, उन्हें जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, देते हैं।

वहां से पश्चिमोत्तर पचास योजन पर एक बुद्ध विहार है, जिसे आडवक (सही नाम=आळवक) कहते हैं। आडवक नाम का एक यक्ष[1] था। भगवान बुद्ध ने उसे धर्मोपदेश दिया था। बाद में लोगों ने उस स्थान पर बुद्ध विहार का निर्माण करवा दिया। जब एक अर्हत को उसका दान देने के लिए उसके हाथ पर (झारी से) जल छोड़ने लगे तो जल की कुछ बूंदें पृथ्वी पर गिर गई थीं, उस जगह अब तक पड़ी हैं कितना ही पोंछो मिटती नहीं।

यहां भगवान बुद्ध का एक धम्म स्तूप है। एक धर्मवान यक्ष वहां साफ-सफाई करता और पानी छिड़कता है–इस कार्य के लिए किसी मनुष्य की आवश्यकता नहीं पड़ती।

अंध्र[2] देश के राजा ने उससे कहा कि जो तू सब कर सकता है, तो अच्छा मैं बहुतेरे दल अपने साथ लेकर आता हूं, मल बढ़कर ढेर लगेगा, साफ करना? इस पर यक्ष ने बड़ी आंधी चलाई उसे बहाकर सब साफ कर दिया।

यहां छोटे-छोटे सैकड़ों धम्म स्तूप हैं। मनुष्य दिन भर गिना करे तब भी पार नहीं पा सकता। यदि कोई चाहे कि जानेंगे ही और एक-एक धम्म स्तूप पर एक-एक मनुष्य खड़ा कर दें, तो फिर एक-एक करके गिने तो भी न्यूनाधिक (संख्या) न जान पाएगा।

एक संघाराम है। उसमें लगभग छह-सात सौ भिक्खु होंगे। उसमें प्रत्येक बुद्ध (पच्चेक बुद्ध–पूर्व बुद्ध) के भोजन करने का स्थान है, निर्वाण स्थान पहिए के बराबर है। उस स्थान पर घास नहीं जमती। जहां वस्त्र सुखाया था वहां अब तक चिह्न है।[3]

*(*यहां भगवान के त्रयस्त्रिंश लोक जाने और वहां से संकिसा में उतरने की घटना पर कई लोग विश्वास करते हैं और कई लोग नाक-मुंह सिकोड़ते हैं। इस संबंध में हमारा कहना है कि प्राचीन पालि साहित्य में कहीं-कहीं अतिशयोक्ति और कहीं-कहीं शब्दालंकार की भरमार मिलती है। यदि हम इन दो बातों से हटकर अध्ययन करें*

1. *अंग्रेजी में यक्ष के नाम का अनुवाद The Great Heap किया गया है, देखो पंद्रहवां वर्षावास–'भगवान बुद्ध'।*
2. *लेगी महोदय ने 'A king of the corrupt views' अनुवाद किया है अर्थात "दुष्टविचारक राजा।"*
3. *यह बात फाह्यान ने सुनी-सुनाई लिखी थी, देखी नहीं थी। संकाश्य नगर (संकिसा) में किसी आम आदमी से ये बातें उसने सुनी होंगी।*

तो वास्तविकता समझ में आने लगती है। भगवान बुद्ध द्वारा अपनी माता महामाया को स्वर्ग लोक में अभिधम्म का उपदेश देकर संकिसा में पहुंचने की घटना भी अतिशयोक्ति, शब्दालंकार और काव्यात्मकता से परिपूर्ण है। इस विशेष में हमारा कहना है कि भगवान बुद्ध जब अपने भिक्खुसंघ को अभिधम्म की देशना करते हुए चारिका कर रहे थे, उस समय ज्ञानवान और सूझवान भिक्खुओं के लिए स्वर्ग जैसा सुखद वातावरण उत्पन्न हो गया था। भगवान बुद्ध ने अभिधम्म का यह उपदेश अपनी पूज्य माता महामाया को समर्पित करके दिया था। इस अभिधम्म-देशना-यात्रा का समापन संकिसा में हुआ था। यदि हम इस प्रकार मान लें तो हमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं लगेगा।)

18

कान्यकुब्ज

'फाह्यान' ने 'नाग विहार' में 'वर्षावास' बिताया। वर्षावास व्यतीत कर दक्षिण-पूर्व दिशा में सात योजन चलकर कान्यकुब्ज (वर्तमान कन्नौज) नगर में पहुंचा। यह नगर गंगा के किनारे स्थित है। यहां दो संघाराम मौजूद हैं, दोनों हीनयानानुयाइयों के हैं। नगर से पश्चिम में सात ली पर गंगा के किनारे भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश किया था। कहते हैं उपदेश था दुख-सुख की क्षणिकता और जीवन को पानी के बबूले व फेन के सदृश होने पर। इस स्थान पर धम्म स्तूप बना है और अब तक है।

गंगा के पार तीन योजन दक्षिण चलकर आले[1] नामक एक गांव में पहुंचे। इस स्थान पर भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को धर्मोपदेश किया था, चंक्रमण किया था और बैठे थे। यहां स्तूप बने हुए थे।

19

शांखे व शांचे

यहां से दक्षिण पश्चिम दिशा में दस[2] योजन चलकर शांचे नामक महाजनपद में पहुंचे। शांचे[3] नगर के दक्षिण द्वार पर पूर्व की ओर के मार्ग

1. आरण्य पूर्व में एक जंगल था। फाह्यान के समय वहां एक छोटी-सी बस्ती थी।
2. लेगी महोदय आदि ने तीन योजन लिखा है, पर मूल में दस योजन है।
3. यह साकेत है। अयोध्या का पुराना नाम साकेत है। मुमकिन है कि शांचे नगर

पर भगवान बुद्ध ने दंतधावन करके काष्ठ को भूमि पर फेंक दिया था, वह न बढ़ता था और न ही घटता था।

जैनियों और ब्राह्मणों ने ईर्ष्या की और उसे काट-कूटकर दूर फेंक दिया, पर वह फिर वहीं पूर्ववत उग गया। यहां चारों बुद्धों (प्रत्येक बुद्धों) के चंक्रमण स्थल और बैठने के स्थान पर स्तूप अब तक बने हुए हैं।

20

श्रावस्ती

दक्षिण दिशा में चले, आठ योजन चलकर कोशल जनपद के नगर श्रावस्ती[1] में पहुंचे। नगर में अल्प संख्या में निवासी हैं और जो हैं भी, वे तितर-बितर हैं, सब मिलाकर यहां दो सौ से कुछ ही अधिक घर होंगे। यह नगर प्रसेनजित (पसेनदि)[2] राजा की राजधानी थी। महाप्रजापति के प्राचीन विहार की जगह, सेठ सुदत्त (अनाथपिण्डिक) की भीत और कुओं पर, अंगुलिमाल के अर्हत होने और निर्वाणानंतर उसके चैत्य के स्थान पर कालांतर में लोगों ने धम्म स्तूप बनाए, वे अब तक नगर में हैं। ब्राह्मणों और जैनियों ने मन ही मन बुद्ध के प्रति द्वेष और डाह किया, उन्हें नष्ट करना चाहा पर आकाश से इतनी झड़ी, वज्रपात और अशनिपात (बिजली गिरना) हुए कि वे अंत को कृतकार्य (सफल) न हो सके।

साकेत नगर ही हो। यह भी संदेह होता है कि कहीं यह वही जनपद न हो जिसे सुएनच्वांग ने विशाखा लिखा है। उस स्थान के संबंध में उसने लिखा है कि 'इस स्थान पर 70 फुट ऊंचा एक वृक्ष है। यहां पूर्वकाल में भगवान बुद्ध ने दंतधावन किया था। दंतधावन का काष्ठ पृथ्वी पर फेंक दिया था। काष्ठ ने जड़ पकड़ ली और वह बढ़कर यह वृक्ष हो गया। विधर्मियों ने बार-बार इसे काटा पर वह फिर हरा हो गया। उसकी पत्तियां और डालियां सब हरी रहती हैं।

1. यह स्थान अवध के बहराइच जिले में बलरामपुर के पास है। इसे अब सहट-महट कहते हैं। जो अब उजाड़ पड़ा है। यहां बौद्ध और जैनी यात्री बहुत आते हैं। जैनी भी इसे अपना पवित्र स्थान मानते हैं अब 'श्रावस्ती' नाम से ही एक स्वतंत्र जिला बना दिया गया है।
2. पसेनदि (प्रसेनजित) गौतमबुद्ध का समकालीन राजा था। पूर्व हिन्दी अनुवाद में पसेनदि के स्थान पर प्रसेनजित लिखा हुआ है, जो गलत है।

नगर के बाहर दक्षिण द्वार से 1,200 पग पर पश्चिम के मार्ग पर सेठ सुदत्त ने विहार (जेतवनाराम) बनवाया था। विहार के पूर्व ओर के द्वार खुलने पर इधर-उधर दो पत्थर के धम्म स्तंभ पड़ते थे। बाईं ओर के धम्म स्तंभ पर चक्र की, और दाहिनी ओर के धम्म स्तंभ पर वृष (वृषभ=सांड) की आकृति बनी हुई थीं। विहार के दाएं-बाएं और निर्मल जलपूर्ण सरोवर थे, सदाबहार वृक्षों के वन थे जिनमें रंग-बिरंगे फूल खिले रहते थे। ऐसी अपूर्व और मनोहर शोभा जेतवन विहार (जेतवनाराम) की थी।

भगवान बुद्ध जब त्रयस्त्रिंश लोक (स्वर्ग) को गए और उन्होंने 90 दिन तक अपनी माता को अभिधर्म का उपदेश किया तो महाराज प्रसेनजित (पसेनदि) भगवान बुद्ध के दर्शन को उत्सुक हुए और उन्होंने भगवान बुद्ध की गोशीर्ष चंदन की एक प्रतिमा बनवाकर जिस स्थान पर वे प्रायः बैठते थे, रखवा दी थी। बाद में जब भगवान बुद्ध विहार में लौटकर आए तो प्रतिमा भगवान बुद्ध से मिलने के लिए उठकर चली। भगवान बुद्ध ने कहा कि अपने स्थान पर लौट जा, मेरे महापरिनिर्वाण के पश्चात तू चतुर्विधि भिक्खुसंघ के लिए आदर्श होगी। मूर्ति अपने स्थान पर लौट गई। यह प्रतिमा भगवान बुद्ध की पहली प्रतिमा थी। तदुपरांत लोगों ने उसी के आदर्श पर अन्य बुद्ध प्रतिमाएं बनवाई हैं। भगवान बुद्ध तब वहां से गए। दक्षिण की ओर एक छोटे बुद्ध विहार में, जो मूर्ति के रहने के स्थान से अलग 20 पग पर था, वे ले गए।

जेतवन विहार सात तले का था। सारे जनपद के राजा-प्रजा सब परस्पर उस पर चढ़ावा चढ़ाने की ध्वजा और चांदनी लटकाने, फूल बिखेरने, धूप जलाने, और दीप प्रज्वलित करने के लिए स्पर्धा करते थे। नित्य प्रति अव्यवच्छिन्न यानी निर्बाध रूप से ऐसा ही करते थे। एक चूहा दीप की बत्ती मुंह में दबाकर ले गया और ध्वजा व चांदनी में उसने आग लगा दी, विहार में आग लग गई और सातों तले जलकर भस्म हो गए। जनपद के राजा प्रजा लोग सब दुखी और क्लेशित हुए, उन्होंने यह समझा कि चंदन की मूर्ति भी जल गई। आश्चर्य की बात! चार-पांच दिन पीछे जब पूर्व के एक छोटे विहार का द्वार खुला तो मूर्ति वहां दिखाई पड़ी। सभी बड़े प्रसन्न हुए और मिलकर विहार बनवाने लगे। जब छत बन गई तो मूर्ति को फिर अपने स्थान पर ले गए।

'फाह्यान' और 'ताउचांग' जब जेतवन विहार में पहुंचे तो उनके मन में यह विचार आया कि भगवान ने यहां पच्चीस वर्षावास बिताए, बड़ी करुणा उत्पन्न हुई। पृथ्वी के प्रांत में उत्पन्न होकर अपने अंतरंग मित्रों के साथ इतने जनपदों से होकर आए, उनमें से कुछ लौट गए, कुछ ने जीवन की असारता और क्षणिकता प्रमाणित की। आज उस स्थान को, जहां भगवान बुद्ध रहे थे, बिना उनके देखा। इस आंतरिक अनुभूति से सभी को बहुत दुख हुआ। श्रमणों का झुंड बाहर आया, वे पूछने लगे कि किस जनपद से आए हो। जवाब दिया कि हान के देश से आए हैं। श्रमण लोग दीर्घ श्वास लेकर कहने लगे आह! सीमांत के लोग हमारे धर्म की जिज्ञासा में यहां आते हैं–आश्चर्य की बात है। परस्पर कहने लगे कि हम लोग गुरु-शिष्य परंपरा से आने वालों को देखते आए हैं, पर हान देश के 'मार्गी'[1] लोगों को यहां कभी आते नहीं देखा।

जेतवन विहार से पश्चिमोत्तर में चार ली पर 'चक्षुकरणी'[2] नामक वन है। पहले पांच सौ अंधे यहां विहार के आश्रित थे। भगवान बुद्ध के धर्मोपदेश से उनको फिर दृष्टि मिल गई। अंधों ने मारे हर्ष के अपने दंडों को भूमि में गाड़ दिया और पंचांग प्रणाम किया। दंडे तत्क्षण लग गए और खड़े हो गए। सामान्य जनों ने बहुत प्रशंसा की और किसी ने उन्हें काटने का साहस नहीं किया और बाद में बढ़कर वे वन हो गए। इसी कारण उसे 'चक्षुकरणी' वन कहने लगे। 'जेतवन' संघाराम के श्रमण भोजनांतर प्रायः इस वन में बैठकर ध्यान लगाया करते हैं।

जेतवन विहार के पूर्वोत्तर छह-सात ली पर 'माता विशाखा' ने (पुब्बाराम) विहार का निर्माण करवाया था और उसमें भगवान बुद्ध और श्रमणों को आमंत्रित किया था, वह अब तक मौजूद है।

जेतवन विहार महाराम (जेतवन महाविहार) में दो द्वार हैं, एक पूर्व की ओर, दूसरा उत्तर की ओर। इस बाग को सेठ सुदत्त ने भूमि पर स्वर्ण मुद्रा (अशर्फियां) बिछाकर मोल लिया था। विहार ठीक मध्य में था। भगवान

---

1. *बौद्ध मार्गानुयाई।*
2. *यह स्थान त्रिपिटक के अनुसार (साकेत का) 'अंजनवन' अथवा 'अंधकवन' होना चाहिए–सं.*

बुद्ध इस स्थान पर बहुत समय तक रहे और उन्होंने लोगों को धर्मोपदेश दिए थे। जहां चंक्रमण किया, जिस स्थान पर बैठे, सर्वत्र धम्म स्तूप बने हैं और उनके पृथक-पृथक नाम हैं। यहीं सुंदरिक (सुंदरी परिव्राजिका) ने मनुष्य-हत्या का दोष भगवान बुद्ध पर लगाया था। जेतवन विहार के पूर्वी द्वार से उत्तर में 70 पग चलकर पश्चिमी मार्ग पर 86 अन्य-तीर्थंकरों से शास्त्रार्थ किया था। जनपद के राजा, महामात्य, सेठ और प्रजाजन सब सुनने के लिए झुंड के झुंड एकत्रित थे, एक जैनी स्त्री जिसका नाम चिचमना[1] था विद्वेषियों की प्रेरणा से अपने ऊपर वस्त्र लपेट गर्भिणी का रूप धर समाज में आई और उसने भगवान बुद्ध पर व्यभिचार का आरोप लगाया था। इस पर देवराज शक्र[2] संपादक द्वारा लिखी पुस्तक में यह वर्णन बिना इंद्र और चूहे के दिया गया है। उसमें लिखा है कि....आया, उसने सफेद चूहे उत्पन्न किए जिन्होंने मेखला को दांत से काट दिया और अतिरिक्त वस्त्र भूमि पर गिर पड़े। भूमि फट गई और वह भूमि के गर्भ में समा कर मर गई। देवदत्त भी जो अपने नखों में विष भर के भगवान बुद्ध पर आघात करना चाहता था, वह भी (श्रावस्ती में ही) भूमि के गर्भ में समा कर मर गया था। पीछे लोगों ने इन स्थानों पर स्मरणार्थ चिह्न बनाए हैं।

शास्त्रार्थ के स्थान पर 60 हाथ ऊंचा विहार बना था। विहार में भगवान बुद्ध की बैठी हुई मूर्ति थी। सड़क के पूर्व भी एक विहार था जिसे 'छायागत'[3] कहते थे। वह भी साठ हाथ ही ऊंचा था। उसके 'छायागत' नाम पड़ने का कारण यह है कि जब सूर्य पश्चिम दिशा में रहता था तो भगवान के (जेतवनाराम) विहार की छाया जैनियों के देवालय पर पड़ती थी, परंतु जब सूर्य पूर्व दिशा में रहता था तब देवालय की छाया उत्तर की

1. *बौद्ध ग्रंथों में उस स्त्री का नाम 'चिंचा' लिखा है।*
2. *लेगी महोदय ने Changed himself and some devas into white mice भाषार्थ आप और अन्य देवता चूहे बन गए लिखा है, पर मूल में कोई ऐसा चिह्न नहीं जिसका यह आशय हो कि 'अन्य देवता'।*
3. *तिपिटक साहित्य में जेतवन के सामने जिस विहार के बनने का विवरण आया है उसे परिस्थितिवश महाराजा पसेनदि ने बनवाया था, इसका नाम 'राजकाराम' था। 'छायागत विहार' नाम फाह्यान के समय में प्रचालित रहा होगा। राजकाराम के निर्माण की विस्तृत जानकारी के लिए संपादक द्वारा लिखी पुस्तक 'पसेनदि' पढ़ें।*

ओर पड़ती थी, पर भगवान बुद्ध के विहार पर नहीं पड़ती थी। जैनियों के आदमी नियत थे, वे नित्य देवालय में साफ-सफाई करते थे, पानी छिड़कते थे, धूप-दीप करते और पूजा करते थे, प्रातःकाल के समय दीप वहां से भगवान बुद्ध के विहार में उठकर चला आता था। (यानी ले जाया जाता था—सं.) ब्राह्मण लोग (संभवतया 'पुजारी') घबराए और कहने लगे कि देखो श्रमण हमारे दीप उठा ले जाते हैं और भगवान बुद्ध की पूजा करते हैं। हम (दीप जलाने) बंद न करेंगे। इस पर ब्राह्मण रातभर जागते रहे तो देखा कि पूज्य देवगण ने दीप लेकर भगवान बुद्ध के विहार की तीन बार परिक्रमा करते हुए भगवान बुद्ध की पूजा की। पूजा करके वे अंतर्धान (लुप्त) हो गए यानी चले गए। इससे ब्राह्मणों को भगवान बुद्ध का आध्यात्मिक महत्त्व विदित हो गया और उन्होंने गृहत्याग करके (बुद्ध प्रमुख भिक्खुओं में) प्रव्रज्या ग्रहण की। कहते हैं, यह तब कि बात है जब जेतवन विहार के समीप 98 संघाराम थे। सबमें श्रमण रहते थे,[1] एक स्थान भी रीता न था।

मध्य देश में 96 पाषंडों (अन्य तैर्थिकों) का प्रचार है, सब लोक-परलोक को मानते हैं, उनके साधु संघ हैं, वे भिक्खा करते हैं, परंतु भिक्खापात्र नहीं रखते। सब विभिन्न प्रकार से धर्मानुष्ठान करते हैं; मार्गों पर धर्मशालाएं स्थापित की हैं वहां आए-गए को आवास, खाट, बिस्तर, खाना-पीना मिलता है। यती भी वहां आते-जाते और वास करते हैं। सुनते हैं कि केवल काल[2] में कुछ मतभेद है।

देवदत्त के अनुयाइयों के भी संघ हैं। वे पूर्व के तीन 'बुद्धों की पूजा करते हैं, केवल शाक्यमुनि (पूर्व-बुद्धों) की पूजा नहीं करते।

श्रावस्ती नगर के दक्षिण-पूर्व दिशा में चार ली पर विरूढ़क (विडूडभ)[3] राजा को शाक्य जनपद पर आक्रमण करने के लिए जाते हुए भगवान बुद्ध मार्ग में बैठे हुए मिले थे। बैठने के स्थान पर धम्म स्तूप बना हुआ है।

1. *लेगी महोदय ने लिखा है Excepting only in one place which was vacant अर्थात सिवाय एक स्थान के जो सूना पड़ा था। पर मूल में ऐसा नहीं है।*
2. *यहां काल से अभिप्राय भिक्खा करने के काल से जान पड़ता है। बौद्ध भिक्खु मध्यांतर आहार नहीं करते अन्य संप्रदायों के भिक्खु अपराह्न में भिक्खा करते थे।*
3. *मूल में 'शोय-ए' है। देखो बोधिनी*

21

कश्यप, ककुच्छंद और कनकमुनि के जन्मस्थान

नगर के पश्चिम 50 ली पर 'टूवीइ'[1] नामक एक गांव पड़ता है। यह काश्यप बुद्ध का जन्मस्थान माना जाता है। पिता पुत्र के दर्शन के स्थान पर (परिनिवास स्थान पर) स्तूप बने हुए हैं। काश्यप बुद्ध की शरीर धातुओं पर एक विशाल धम्म स्तूप बना हुआ है।

श्रावस्ती नगर के दक्षिण-पश्चिम दिशा में 12 योजन पर 'न पीइ किया'[2] नामक गांव पड़ा। यहां ककुच्छंध बुद्ध के जन्म स्थान पर, पिता-पुत्र के दर्शन के स्थान पर और परिनिर्वाण स्थान पर धम्म स्तूप बने हुए हैं।

यहां से उत्तर दिशा में एक योजन से कम पर[3] एक और गांव पड़ा। यह कनकमुनि का जन्मस्थान है। पिता-पुत्र के दर्शन के स्थान पर और परिनिर्वाण स्थान पर स्तूप बने हैं।

22

कपिलवस्तु

यहां से एक योजन से कम चलकर कपिलवस्तु[4] नगर में पहुंचे। नगर में न राजा है न प्रजा। केवल खंडहर और उजाड़ है। कुछ श्रमण निवास करते हैं और दस घर निवासियों के हैं। शुद्धोदन के महल में अब कुमार और माता की प्रतिमा बनी हैं। जहां श्वेत हाथी के रूप में सिद्धार्थ कुमार

---

1. श्रावस्ती से 9 मील पर 'टंडवा' नामक ग्राम।

2. इसे नाभिका कहते थे। इसका खंडहर नेपाल राज्य में वाण गंगा नदी की बाईं ओर 'लोरी की कुदान' और 'गोटिहवा' गांवों के मध्य में है।

3. यह स्थान नाभिका से उत्तर पूर्व साढ़े 6 मील पर उजाड़ पड़ा है। तिलौरा और गोवरी के पास कुछ खंडहर हैं। यहां का अशोक धम्म स्तंभ अब तिलौरा के उत्तर डेढ़ मील पर विगलिहवा (निग्लीवा) टूटा पड़ा है, उस पर लिखा है– "देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के चौदह वर्ष बाद कनकमुनि बुद्ध के स्तूप की लंबाई बढ़ाकर दुगुनी कर दी और राज्याभिषेक के बीस वर्ष बाद स्वयं आकर (इस स्तूप की) पूजा की और (एक शिला-स्तंभ) खड़ा किया।"

4. कौशल और रामग्राम के बीच का देश जो अचिरावती (राप्ति) और बाणगंगा के बीच में था।

ने माता के गर्भ में प्रविष्ट किया था और जहां कुमार ने नगर के पूर्व द्वार से रोगी को देख रथ लौटाया था, वहां स्तूप बने हैं।

जहां 'अए' (असित) ने कुमार के चिह्नों (32 महापुरुष लक्षणों)[1] को देखा था, जहां कुमार ने नंद आदि के साथ मृत हाथी को खींचकर अलग फेंका था, जहां पूर्व दिशा में तीर चलाया और वह 30 ली पर भूमि में गड़ा और सोता फूट निकला (जिस पर) पीछे लोगों ने कुआं बनाया (जिसका) आगंतुकजन पानी पीते हैं, (जहां) भगवान बुद्ध ने मार्ग प्राप्त कर पिता राजा के दर्शन किए, जहां 500 शाक्यों ने गृह त्यागकर उपालि को नमन किया, जहां पृथ्वी 6 बार विचलित हुई, जहां भगवान बुद्ध ने देवताओं को धर्मोपदेश किया, चातुर्महाराज आदि द्वाररक्षक थे कि पिता राजा (शुद्धोदन) न आएं, जहां भगवान बुद्ध न्यग्रोध वृक्ष के नीचे जो अभी भी हैं पूर्वाभिमुख बैठे और जहां प्रजापति ने संघाटी प्रदान की और जहां विरूढक[2] (ठीक नाम विडूडभ है) ने शाक्यों को निर्जीव किया और शाक्य स्रोतापन्न हुए—सभी जगह स्तूप बने हैं। अंत का स्तूप अब तक खड़ा है।

नगर के पूर्वोत्तर कई ली पर राजा का[3] खेत है जहां कुमार ने वृक्ष के नीचे बैठकर हलवाहों को देखा था।

नगर के पूर्व में 50 ली पर राजा का बाग है। बाग का नाम लुंबिनी वन[4] है। महारानी ने एक कुंड में प्रवेश कर स्नान किया था। वह कुंड (तालाब) के उत्तर

---

1. देखे परिशिष्ट-2

2. चीन के ग्रंथों में '1,000 शाक्यों को' पाठ है। किसी-किसी के मत से '500 शाक्य राजकन्याओं को, जिन्हें विरूढ़क अपने अंतःपुर में ले जाना चाहता था और जब उन्होंने इनकार किया, तो उसने उन्हें मार डाला', पाठ है। देखें बोधिनी में विडूडभ।

3. प्राचीनकाल में राजा लोग हल जोतते और खेती करते थे। इसीलिए कुछ राजा के कृषि का स्थान 'कुरुक्षेत्र' कहलाता है।

4. यह स्थान नेपाल की तराई में भगवानपुर के उत्तर में उजाड़ पड़ा है। बुद्ध का जन्म यहीं हुआ था और ग्रंथों में इसे– "देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने राज्याभिषेक के 20 वर्ष बाद स्वयं आकर इस स्थान की पूजा की, क्योंकि यहां शाक्यमुनि बुद्ध का जन्म हुआ था। यहां पत्थर की एक प्राचीर (दीवार) बनवाई गई और पत्थर का एक स्तंभ खड़ा किया गया। बुद्ध भगवान यहां जन्मे थे इसलिए लुम्बिनी ग्राम को कर से मुक्त कर दिया गया और (पैदावार का) आठवां भाग भी (जो राजा का हक था) उसी ग्राम को दे दिया गया।

किनारे से निकली, 20 पग चली, उसने अपना हाथ उठाकर एक वृक्ष की शाखा पूर्वाभिमुख होकर पकड़ी और कुमार को जन्म दिया। कुमार पृथ्वी पर गिरकर 7 पग चले, दो नागराजों ने कुमार को नहलाया। स्नान के स्थान पर कुआं (कुंड) बना है। इससे और स्नान के कुंड से अब तक श्रमण पानी भरते और पीते हैं।

सब बुद्धों के चार समान घटनाओं के स्थान[1] होते हैं—(1) मार्ग-प्राप्ति-स्थान, (2) धर्म-चक्र-प्रवर्तन का स्थान, (3) धर्मोपदेश, सत्यनिर्णय और पाषंड खंडन का स्थान और (4) त्रयस्त्रिंश स्वर्ग से माता को अभिधर्म का उपदेश करके उतरने का स्थान। अन्यान्य प्रसिद्धि समय विशेष से होती है।

कपिलवस्तु जनपद महाजन-शून्य है। यहां पर निवासी बहुत कम हैं। पथ में हस्ती और सिंह से बचने की आवश्यकता है, बिना सावधानी के जाने योग्य नहीं है।

23

रामग्राम और रामस्तूप

भगवान बुद्ध के जन्म स्थान से 5 योजन पर राम[2] नामक जनपद मिला। जनपद के राजा को भगवान बुद्ध की धातु का एक भाग मिला था। वापसी में उसने एक स्तूप बनवाया था। उसका नाम राम धम्म स्तूप है। स्तूप के पास एक हृद है। हृद में एक नाग रहता था। वह धम्म स्तूप की रक्षा और निरंतर पूजा करता था। जब सम्राट अशोक यहां आया तो उसने चाहा कि आठों स्तूपों में से भगवान बुद्ध के शरीर धातुओं के कुछ भाग

1. *आइसिंग में अष्टचैत्य (आठ चैत्यों) का उल्लेख है। (1) जन्म स्थान, (2) बोधि-प्राप्त स्थान, (3) धर्म-चक्रप्रवर्तन स्थान, (4) विभूति दर्शन व पाखंड खंडन स्थान, (5) त्रयस्त्रिंश परलोक से अवतरण स्थान, (6) विवाद-मीमांसा स्थान, (7) परमायु-उल्लेख स्थान और (8) परिनिर्वाण स्थान। ये आठों क्रमशः लुंबिनी, बोधगया, वाराणसी, श्रावस्ती, संकाश्य नगर, राजगृह, वैशाली और कुशीनगर हैं।*
2. *यह जनपद कपिलवस्तु' और कुशीनगर के मध्य में पड़ता है। संभवतया यह गोरखपुर के आसपास का कोई स्थान होगा। गोरखपुर के पास अनेक छोटी-छोटी झीलें हैं, मुमकिन है कि वह झील जिसका होना फाह्यान के स्तूप के पास लिखा है, उन्हीं में से कोई हो। वाणगंगा कपिलवस्तु' और रामग्राम के बीच की जो सीमा मानी गई है, उसी के आसपास उसे कहीं होना चाहिए।*

निकलवाकर 84,000 स्तूप बनवाए। सात स्तूप गिरवाकर उसने इस स्तूप को भी गिरवाना चाहा। नाग सदेह प्रगट हुआ, सम्राट अशोक को अपने घर ले गया और पूजा के उपकरण (सामान) दिखा उसने राजा से कहा, यदि इससे उत्तम रूप से पूजा कर सको तो (स्तूप को) गिरा दो, सब ले जाओ मैं झगड़ता नहीं। राजा समझ गया कि पूजा के ऐसे उपकरण संसार में कहीं नहीं मिलेंगे। इस पर वह लौट गया।

वह स्थान जंगल हो गया, कोई पानी और झाडू देने तक को न रहा। हाथियों का एक यूथ अपने सूंड में जल भरकर यथाविधि भूमि पर छिड़कता और भांति-भांति के पुष्प और गंधद्रव्य चढ़ाता रहा।

एक देश का 'मार्गी' यानी धम्म स्तूप के प्रणिपात (प्रणाम) को गया। हाथियों को देख बहुत भयभीत हुआ। पेड़ पर चढ़कर छिप गया। देखा हाथी यथाविधि पूजा करते हैं। मार्गी को बहुत दुख हुआ—यहां संघाराम नहीं कि धम्म स्तूप की पूजा हो सके, हाथी पानी और झाडू देते हैं। मार्गी परिग्रह छोड़ सामनेर बनकर लौटा। उसने अपने हाथों घास और पेड़ साफ किए। स्थान को ठीक और साफ-सुथरा बनाया। उपदेश बल से इस जनपद के राजा से भिक्खुओं के लिए उसने स्थान बनवाया और स्वयं बुद्धविहार का नायक बना। अब उसमें भिक्खु रहते हैं। यह समीप की घटना है। उस समय से अब तक श्रमण बुद्धविहार के नायक होते आए हैं।

24

महापरिनिर्वाण स्थान

यहां से पूर्व में 3 योजन चलकर महत्ता कुमार (सिद्धार्थ) के छंदक (छन्न) के साथ श्वेत अश्व लौटाने का स्थान पड़ा। वहां धम्म स्तूप बना था। वहां से 4 योजन चलकर अंगार स्तूप[1] पर पहुंचे। वहां संघाराम हैं और पूर्व में 12 योजन चलकर कुशीनगर[2] नगर में पहुंचे। नगर के उत्तर में शाल

1. *यह स्तूप मौर्यों का बनाया हुआ पिप्पली वन में था। भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण पर जब उनके शरीर के सब धातुओं का विभाग हो गया, तब मौर्य लोग पहुंचे थे। उन्हें द्रोण ने चिता के अंगार दिए थे, उन्हें लाकर उन लोगों ने अपने यहां स्तूप बनवाया था।*
2. *यह स्थान गोरखपुर के जिले में कसया जंटी के पास है। वहां एक वृहत मूर्ति*

भगवान बुद्ध के शरीर-धातुओं (अस्थियों) का आठ भागों में विभाजन करते हुए आचार्य द्रोण

के (दो) वृक्षों के मध्य निरंजना नदी के किनारे भगवान के उत्तर (दिशा में) सिर करके महापरिनिर्वाण प्राप्त करने का स्थान है, सुभद्र परिव्राजक (बुद्ध का अंतिम शिष्य) के पीछे अर्हत होने का स्थान है, सुवर्ण की नाव (द्रोणी) में भगवान की 7 दिन तक पूजा करने का स्थान है, वज्रपाणि[1] के सुवर्ण गदा फेंकने का स्थान है और 8 राजाओं के धातु का अंश लेने का स्थान है–सब जगह धम्म स्तूप व संघाराम बने हैं। अब तक विद्यमान हैं। नगर में बस्ती कम और विरल है। केवल कुछ तितर-बितर श्रमणों के निवास हैं।

यहां से पूर्व दक्षिण में 12 योजन चलकर वहां पहुंचे जहां लिच्छिवी लोगों ने (जब) भगवान बुद्ध के साथ महापरिनिर्वाण स्थान पर चलने की अभिलाषा व्यक्त की और भगवान बुद्ध ने न माना तो वे भगवान बुद्ध के साथ-साथ चले, और नहीं लौटे, तो भगवान बुद्ध ने एक बड़ा हंद (हौद) प्रगट किया जिसे वे पार न कर सके, फिर भगवान बुद्ध ने अपना भिक्खापात्र स्मृति स्वरूप देकर उन्हें घर लौटाया। इस जगह पत्थर का एक धम्म स्तंभ बना है, उस पर एक कथा लिखी है।

उत्तर सिर किए एक बुद्धविहार में लेटी है और उसके निकट कुछ दूर चैत्य स्तूप भी हैं।

1. *संभवतया महाराज का नाम*

25

वैशाली

यहां से पूर्वी दिशा में 10 योजन चलकर वैशाली[1] जनपद में पहुंचे। वैशाली नगर के उत्तर में एक महावन[2] कूटागार विहार है–भगवान बुद्ध का निवास स्थान–अब तक वैसा ही है। नगर के दक्षिण में 3 ली पर अम्बपाली गणिका का बाग है जिसे उसने भगवान बुद्ध को उपहार-स्वरूप दान कर दिया था कि वे उसमें रहें। भगवान बुद्ध महापरिनिर्वाण के लिए जब सब शिष्यों सहित वैशाली नगर के पश्चिम द्वार से निकले, तो दाहिने ओर वैशाली नगर को देखकर शिष्यों से कहा यह मेरी अंतिम[3] विदा है। पीछे लोगों ने वह धम्म स्तूप बनवाया।

नगर से पश्चिमोत्तर में 3 ली पर एक स्तूप 'धनुर्बाण त्याग' स्तूप नाम से है। इसका नाम पड़ने का कारण यह है कि पूर्वकाल में गंगा के किनारे एक जनपद का राजा था। राजा की छोटी रानी ने एक मांसपिंड जना। बड़ी रानी ने द्वेष से कहा कि तूने कुलक्षण जना है और तुरंत एक लकड़ी की मंजूषा में रखकर उस पिंड को उसने गंगा में प्रवाहित कर दिया। उतार

---

1. *यह नगर मुजफ्फरपुर जिले में था। अब इसके खंडहर वैसर गांव के पास बखिरा में हैं। यहां अब तक सम्राट अशोक का एक धम्म स्तंभ 32 फुट ऊंचा है। खंडहर को राजा विशाल का गढ़ कहते हैं। यह 1,580 फुट लंबा और 750 फुट चौड़ा है। सुएनच्वांग ने इसे 4 ली से 5 ली तक लंबा-चौड़ा लिखा है। अबुल फजल ने भी वैसर गांव का उल्लेख किया है।*
2. *इसे कोई अरण्यहितल विहार लिखते हैं लेगी महोदय ने इसे "Double Gal-eeried Vihar" लिखकर नोट में लिखा है–It is difficult to tell what was the peculiar form of this vihar from which it got its name, something about the construction of its door or cupboards or galleries. अर्थात यह समझ में नहीं आता कि यह कैसा विहार था।" महावंश में इसे महावन और अन्यत्र 'महावन कूटागार' लिखा है।*
3. *लेगी महोदय ने इसका अनुवाद Here I have taken my last walk और गील ने "In this place I have performed the last religious act of my earthly career" अन्यों ने This is the last place I shall visit किया है, पर हमारे मत से यह मेरी अंतिम विदाई है–This is my last departure (from here) ठीक है।*

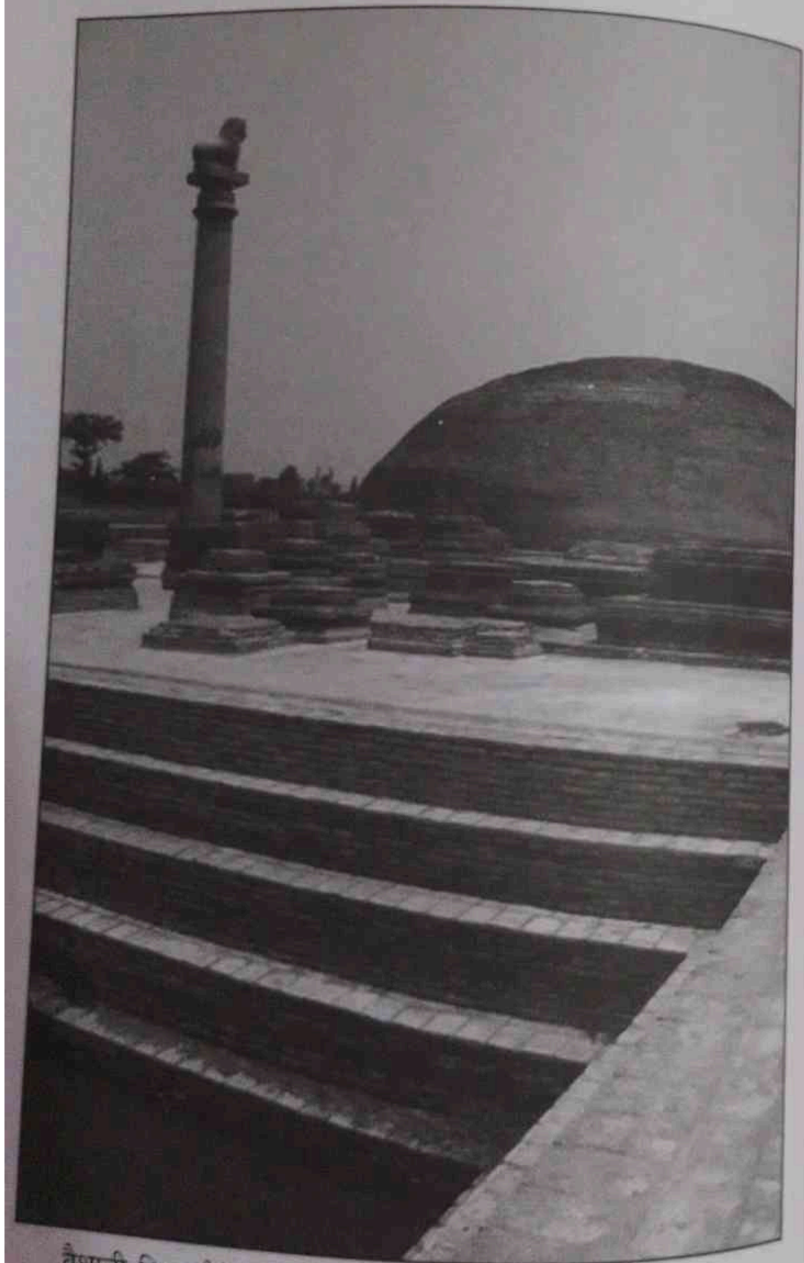

वैशाली स्थित बैठे हुए एक शेर वाला अशोक स्तम्भ, स्तूप और पुष्करिणी एक साथ दिखाई दे रहे हैं

पर एक जनपद का राजा सैर करने निकला था। पानी में उसने लकड़ी की मंजूषा देखी। खोला तो देखा उसमें एक सहस्र लड़के भरे-पूरे न्यारे-न्यारे हैं। राजा ने खिला-पिलाकर उनको सयाना और बड़ा किया। वे बड़े साहसी, प्रचंड, समर में द्वेषियों के विध्वंसक थे। होते-होते अपने बाप-राजा के जनपद पर उन्होंने चढ़ाई की। राजा इससे बहुत घबराया। छोटी रानी ने घबराने का कारण पूछा। राजा ने जवाब दिया कि उस राजा के एक सहस्र पुत्र अतुल साहसी और प्रचंड हैं। मेरे जनपद पर आक्रमण करना चाहते हैं। इसी से भयभीत हूं। छोटी रानी ने कहा राजा घबराओ मत। नगर के पूर्व की दीवार में एक ऊंचा बारजा (अटारी) बनवा दो, जब शत्रु आएंगे मैं बारजे पर से सबको लौटा दूंगी। रानी ने जैसा कहा था, उसी के अनुसार किया। शत्रु आए। छोटी रानी बारजे से बोली तुम मेरे बेटे हो, क्यों अनरीति उलटी करते हो। शत्रु बोले तू कौन है? जो कहती है कि हमारी माता है। छोटी रानी ने कहा विश्वास न हो, तो मुंह खोलकर इस ओर ताको। छोटी रानी ने दोनों हाथों से स्तनों को दबाया, प्रति स्तन से 500 धारा निकली और उन हजार लड़कों के मुंह में पड़ीं। शत्रु जान गए कि यह माता है और उन्होंने धनुष-बाण डाल दिए। दोनों पिता-राजा इस पर ध्यान करने लगे और प्रत्येक बुद्ध (पच्चेक बुद्ध) हो गए। यहां पर आज भी दोनों प्रत्येक बुद्धों के स्तूप विद्यमान हैं।

पीछे जब भगवान ने बोधि प्राप्त कर शिष्यों को इस 'धनुर्वाण त्याग विहार' स्थान के बारे में बताया। तब लोगों ने इस स्थान को जाना और धम्म स्तूप बनाकर यह नाम धरा। वे हजारों छोटे लड़के भद्रकल्प के हजार बुद्ध हुए। भगवान बुद्ध ने इसी 'धनुर्वाण त्याग स्तूप' के पास जीवनाशा त्यागी। भगवान बुद्ध ने आनंद से कहा—मैं तीन मास में महापरिनिर्वाण प्राप्त करूंगा। मार राजा ने आनंद थेर को मोहित कर लिया और वह भगवान से संसार में अधिक रहने के लिए न कह सका।

यहां से पश्चिम में तीन-चार ली पर एक धम्म स्तूप[1] है। भगवान बुद्ध

---

1. *यह द्वितीय धर्मसंगीति का स्थान है। यहां भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण से सौ वर्ष पश्चात त्रिपिटक का पारायण किया गया था। विनय के दस नियमों का उल्लंघन करने वाले भिक्खु 'वज्जिपुत्तक' कहलाते हैं। इनका नायक आनंद थेर का शिष्य 'यश' व 'यशद' था। दस शील ये हैं—पांच साधारण निषेध जैसे—*

के महापरिनिर्वाण के सौ वर्ष पश्चात वैशाली के भिक्खुओं ने विनय के दस शीलों के विरुद्ध-आचरण किया। यह कहा कि यह भगवान बुद्ध के वचनानुसार ही है। इस पर सब अर्हत और शीलवान 700 भिक्खुओं ने मिलकर त्रिपिटक के ग्रंथों का पारायण किया और मिलान बैठाया। इसके पश्चात लोगों ने इस स्थान पर धम्म स्तूप बना दिया, वह अब तक वर्तमान है।

26

आनंद का परिनिर्वाण स्थान

इस स्थान से 4 योजन चलकर पांच नदियों के संगम[1] पर पहुंचे। आनंद थेर मगध से वैशाली परिनिर्वाण के लिए चले। देवताओं ने अजातशत्रु को सूचना दी। अजातशत्रु शीघ्र रथ पर चढ़ सेना साथ लिए नदी के तट पर

पाणातिपाता ***वेरमणी सिक्खापदं समादियामि*** *(मैं प्राणी-हिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं।),* ***2. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि*** *(मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं।),* ***3. कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि*** *(मैं व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं।),* ***4. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि*** *(मैं झूठ बोलने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं।),* ***5. सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि*** *(मैं सुरा (पक्की शराब), मेरय (कच्ची शराब), मद्य और नशीली चीजों व प्रमाद (जुए) आदि से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं।),*
और पांच व्यसन जैसे–

6. विकाल भोजना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि *(मैं विकाल-भोजन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं।),* ***7. नच्च-गीत-वादित-विसूक-दस्सना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि*** *(मैं नाच, गाना, बाजा और मेले-तमाशे को देखने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं।),* ***8. माला-गंध-विलेपण धारण मण्डन विभूसनट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि*** *(मैं माला, सुगन्धि, लेपन को धारण करने एवं शरीर-शृंगार के लिए किसी प्रकार के आभूषण की वस्तुओं को धारण करने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं।)* ***9. उच्चासयन-महासयना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि*** *(मैं बहुत ऊंची और महार्घ शय्या पर सोने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं।),* ***10. जात-रूप-रजत पटिग्गहणा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि*** *(सोने-चांदी के ग्रहण करने से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं।),*

1. *यह वही स्थान है जहां सोन-गंडकादि गंगा नदी में सोनपुर के पास मिली है।*

पहुंचा। वैशाली के लिच्छिवियों ने आनंद का आगमन सुना, लेने को चले, नदी पर पहुंचे। आनंद थेर ने सोचा, आगे बढ़ता हूं, तो अजातशत्रु निकृष्ट मानता है, लौटता हूं तो लिच्छिवी रोकते हैं। निदान नदी के बीच में ही समाधि जनित अग्नि में उन्होंने परिनिर्वाण लाभ किया। शरीर का अंश दो भागों में विभक्त कर एक-एक भाग एक-एक किनारे पहुंचाया गया। दोनों राजाओं को आधे-आधे शरीर-धातु के अंश मिले। वे लौट आए और उन्होंने धम्म स्तूप बनवाया।

27

पाटलिपुत्र

नदी उतरकर दक्षिण में 1 योजन चलकर[1] मगध जनपद के पुष्पपुर (पाटलिपत्तन=पाटलिपुत्र=अब पटना) में पहुंचे। पुष्पपुर सम्राट अशोक की राजधानी थी। नगर में सम्राट अशोक का प्रासाद और सभाभवन है। सब असुरों के बनाए हैं। पत्थर चुनकर भीत (दीवार) और द्वार बनाए हैं। सुंदर खुदाई और पच्चीकारी है। ऐसा अब इस लोक के लोग नहीं बना सकते। अब तक वैसे ही है।

राजा अशोक का एक छोटा भाई था। अर्हतपद प्राप्त हुआ गृध्रकूट पर्वत पर रहता था। एकांत और शांत स्थान में मग्न रहता था। राजा अंतःकरण से उसका सम्मान करता था। राजा ने चाहा कि आमंत्रित कर उसे घर लायें और खिलायें। पर्वत के एकांतवास के आनंद के कारण उसने निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। राजा ने भाई से कहा निमंत्रण स्वीकार मात्र करो, नगर के अंदर पर्वत बनवाए देता हूं। तद्नुसार भोज की सामग्री तैयार की गई। सब असुरों का आह्वान किया गया, घोषणा (मुनादी) कर दी गई कि कल के लिए मेरा निमंत्रण स्वीकार करो। आसन बैठने को नहीं है। अपना-अपना लेते आना। दूसरे दिन सब महासुर आसन के लिए बड़ी-बड़ी शिला लेकर आए जो (समूची) दीवार के बराबर चार-पांच पग लंबी चौड़ी थी। भोज हो गया तो असुरों से बड़ी-बड़ी शिला चुनवाकर पर्वत बनवा दिया। पर्वत के पाद में पांच बड़ी शिलाओं से एक गुफा भी बनवा दी, जो 30 हाथ लंबी, 20 हाथ चौड़ी और 10 हाथ से अधिक ऊंची थी।

---

1. *नीचे की ओर चलकर अर्थात नदी के उतार की ओर जाकर।*

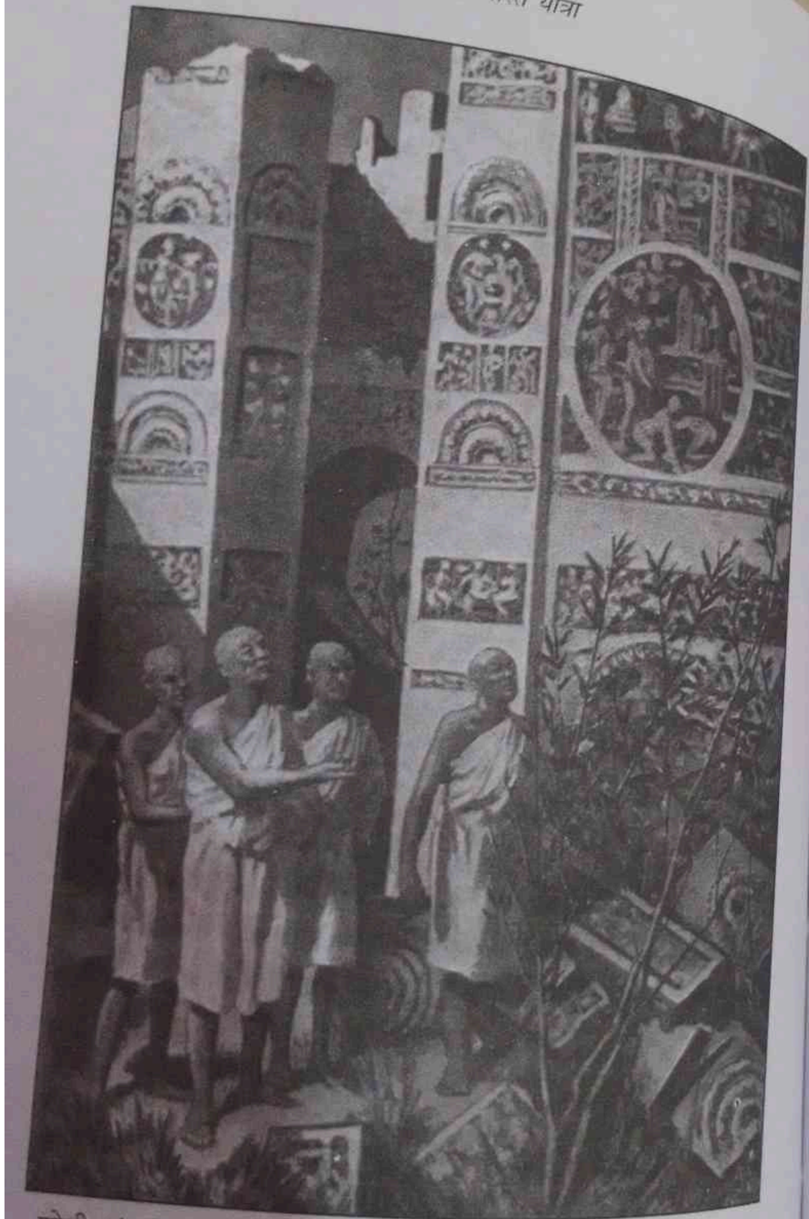

चोथी-पांचवीं शताब्दी के मध्य चीनी बौद्ध यात्री फाह्यान जब अपने दो साथी यात्री भिक्खुओं के साथ पटना पहुंचे तो उन्होंने अशोक के महल (अशोकाराम) को चित्र में दर्शाई गई अवस्था में देखा था।

एक महायानीनुयानी ब्राह्मण कुमार राध नामक इस नगर में था। वह विशुद्ध विवेक और पारदर्शी ज्ञान संपन्न था तथा विमल (शुद्ध) आचार में रहता था। जनपद का राजा उसका गुरुवत् आदर और व्यवहार करता था। बातचीत करने जाता तो सामने बैठने का साहस न करता। राजा भक्ति और श्रद्धा से कभी हाथ छूता तो छूटते ही ब्राह्मण झट पानी से उसे धो डालता था। 50 वर्ष से अधिक की आयु थी। सारे जनपद में उनका मान था। इस एक मनुष्य से बौद्ध-धम्म की सर्वत्र विख्याती थी। अन्य धर्मावलंबी श्रमणों को छू नहीं सकते थे।

अशोक के स्तूप के समीप महायान का एक संघाराम बना है। बहुत सुंदर और भव्य है। यहीं हीनयान का भी विहार है। सब में सात-आठ सौ भिक्खु निवास करते हैं। आचार-विचार, पठन-पाठन विधि दर्शनीय है। चारों ओर के संन्यासी श्रमण, विद्यार्थी, सत्य और हेतु के जिज्ञासु इस स्थान का आश्रय लेते हैं। यहां एक ब्राह्मण कुमार आचार्य हैं, नाम भी मंजुश्री है। जनपद के संन्यासी श्रमण और हीनयान के भिक्खु उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं और इस संघाराम में आते हैं।

मध्यदेश (मज्झदेस—तत्कालीन भारत) में इस जनपद का यह नगर सबसे बड़ा है। यहां के निवासी संपन्न और समृद्धशाली हैं। दान और सत्य में स्पर्द्धालु हैं। प्रत्येक वर्ष रथयात्रा होती है। दूसरे[1] मास की आठवीं तिथि को यात्रा निकलती है। चार पहिए के रथ बनते हैं। यह यूप पर ठाटी जाती है जिसमें धुरी और हर्से लग जाते हैं। रथ 20 हाथ ऊंचा और स्तूप के आकार का बनता है। ऊपर से सफेद चमकीला ऊनी कपड़ा मढ़ा जाता है। भांति-भांति की रंगाई होती है। देवताओं की मूर्तियां सोने-चांदी और स्फटिक की भव्य बनती हैं। रेशम की ध्वजा और चांदनी लगती है। चारों कोने पर कलगियां लगती हैं। बीच में भगवान बुद्ध की मूर्ति होती है और पास में एक बोधिसत्व खड़ा किया जाता है। बीस रथ होते हैं। एक से एक सुंदर और भड़कीले, सबके रंग न्यारे-न्यारे। नियत दिन पर आसपास के संन्यासी-परिव्राजक और गृहस्थ एकत्रित होते हैं। गाने-बजाने वाले साथ लेकर फूल और गंध से पूजा करते हैं। फिर ब्राह्मण आते हैं और भगवान

1. अन्य अनुवादकों ने "इसे प्रति वर्ष महीने की अष्टमी के दिन" लिखा है, जो मूल के विरुद्ध है।

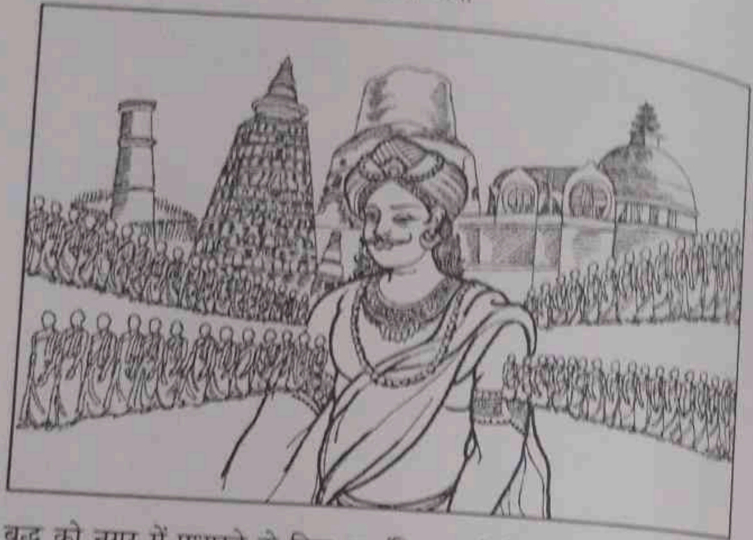

बुद्ध को [illegible] नगर में पधारने के लिए आमंत्रित करते हैं। बारी-बारी से नगर में प्रवेश करते हैं। इसमें दो रातें बीत जाती हैं। सारी रात दीया जलता है। गाना-बजाना होता है। पूजा होती है। जनपद में ऐसा ही होता है। जनपद के वैश्यों के मुखिया लोग नगर में सदावर्त और औषधालय स्थापित करते हैं। देश के धनहीन, अपंग, अनाथ, विधवा, निःसंतान, लूले, लंगड़े, और रोगी लोग इस स्थान पर जाते हैं, उन्हें सब प्रकार की सहायता मिलती है, वैद्य बीमार रोगों की चिकित्सा करते हैं, वे अनुकूल पथ्य और औषध पाते हैं, अच्छे होने पर जाते हैं।

सम्राट अशोक ने सातों स्तूप 84,000 स्तूप बनवाने के लिए खुदवाए। पहला महास्तूप जो बनवाया नगर के दक्षिण में 3 ली से अधिक दूरी पर है। इस स्तूप के सामने भगवान बुद्ध का पद-चिह्न (बुद्धपाद) है। वहां पर विहार बना हुआ है। द्वार उत्तर की ओर है। धम्म स्तूप के दक्षिण में पत्थर का एक स्तंभ है, घेरे में चौदह-पंद्रह हाथ और ऊंचाई में 30 हाथ से अधिक है, उस पर यह वाक्य अंकित है—"अशोक राजा ने जंबुद्वीप चारों ओर से भिक्खुसंघ को दानकर दिया, फिर धन देकर ले लिया। ऐसा तीन बार किया।" स्तूप के उत्तर में तीन-चार सौ पग पर अशोक राजा ने नेले नगर बसाया। नेले नगर में पत्थर का एक स्तंभ है, 30 हाथ से अधिक ऊंचा—इसके ऊपर सिंह है। स्तंभ पर खोदा है 'नगर बसन का हेतु वर्ष, तिथि और मास।'

28

राजगृह

यहां से पूर्व-दक्षिण 9 योजन चले। एक छोटे और पत्थर की छोटी-सी पहाड़ी पर पहुंचे। पहाड़ी के छोर पर एक पत्थर की[1] गुफा है। गुफा दक्षिणाभिमुखी है। भगवान बुद्ध इसमें बैठे थे। देवराज शक्र दिव्य गंधर्व पंच (शिखा) को लेकर आए कि भगवान बुद्ध को गाना सुनाएं। शक्र ने 42 सवाल भगवान बुद्ध से किए, उंगली से पत्थर पर एक-एक रेखा खींचकर। रेखाएं अब तक भर हैं, यहां पर एक संघाराम भी है।

यहां से पश्चिम-दक्षिण दिशा में चलकर एक योजन पर नाल[2] ग्राम में पहुंचे। सारिपुत्र का यह जन्म स्थान है, यहां ही सारिपुत्त लौटकर परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ था। इस स्थान पर स्तूप बना है और अब तक विद्यमान है।

यहां से पश्चिम एक योजन चलकर राजगृह के[3] नए नगर में पहुंचे। यह नवीन नगर अजातशत्रु राजा का बसाया हुआ है। इसमें दो संघाराम हैं। नगर के पश्चिम द्वार से 300 पग पर अजातशत्रु राजा ने भगवान बुद्ध के धातु के अंश लेकर उस पर एक स्तूप बनवाया है। वह ऊंचा, वृहत संभ्रमाकर्षक और सुंदर है। नगर के दक्षिण निकलकर चार ली पर दक्षिण की ओर से एक घाटी से होकर पांच पर्वतों के दून में पहुंचे। पांचों पर्वत किनारे-किनारे नगर के प्राचीर की भांति खड़े हैं। यहां बिम्बिसार राजा का प्राचीन[4] नगर था। नगर पूर्व-पश्चिम में पांच-छह ली और दक्षिण-उत्तर में सात-आठ ली था। सारिपुत्त और महामौद्गल्यायन इसी स्थान में उपसेन[5]

1. यह स्थान गया से 36 मील पर गिरियक नामक गांव के पास है। पचाना नदी के तट पर पर्वत की दो चोटियां हैं, जो उत्तर की ओर हैं वह कुछ अधिक ऊंची है उसके माथे पर एक विहार और अन्य भवनों के खंडहर पड़े हैं। 'सुएनच्वांग' ने इसे इंद्रशील गुफा लिखा है।
2. नालक।—इसे बड़गांव कहते हैं। हमारी जानकारी के अनुसार बड़गांव नहीं अपितु वर्तमान सारिचक धम्म सेनापति सारिपुत्त की जन्म भूमि थी।
3. यह प्राचीन राजगृह से उत्तर दिशा में 3.14 मील पर था।
4. इस नगर का खंडहर अब तक पांचों पर्वतों के मध्य है। दीवालों के चिह्न अब तक विद्यमान हैं।
5. अश्वजित का नाम था। वह भगवान बुद्ध का प्रधान शिष्य था।

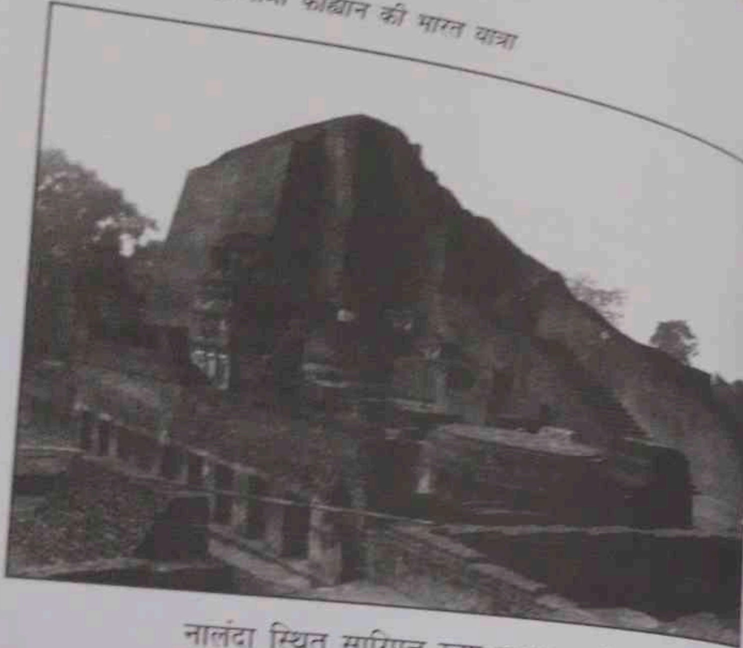

नालंदा स्थित सारिपुत्त स्तूप का भग्नावशेष

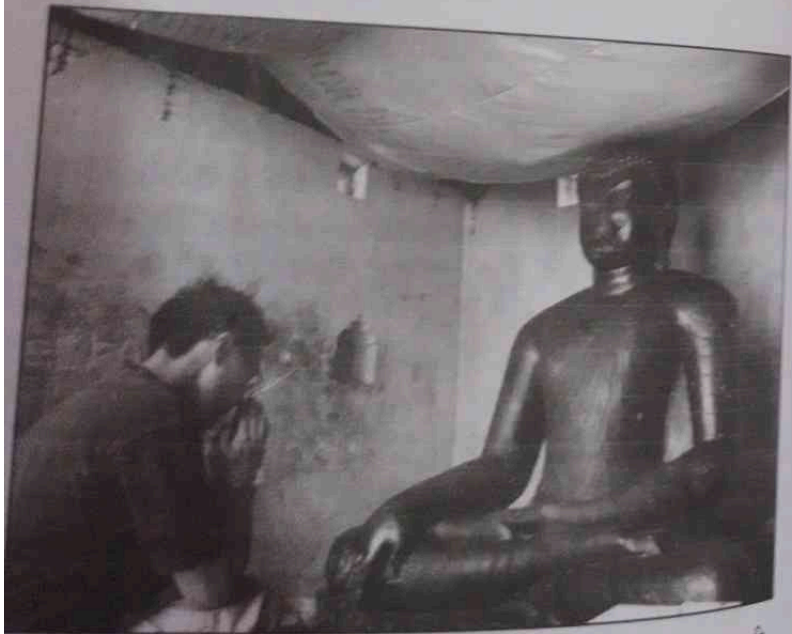

नालंदा भग्नावशेष परिसर के पीछे बड़गांव में स्थापित भगवान बुद्ध की काले पत्थर में बनी विशाल प्रतिमा

से मिले थे। निग्रंथ[1] ने यहीं अग्निकुंड और विषाक्त (जहरीला) भोजन द्वारा भगवान बुद्ध को आमंत्रित किया था और अजातशत्रु (अजातशत्रु नहीं, देवदत्त ने छोड़ा था–अजातशत्रु तो देवदत्त का संरक्षक था) राजा ने मदोन्मत्त काले हाथी (नालागिरी) को यहीं भगवान बुद्ध को मारने के लिए छोड़ा था। नगर के पूर्वोत्तर कोण में जीवक ने अम्बपाली के अंबवन (आम के बाग) में एक विहार बनवाया था और भगवान बुद्ध को 1,250 शिष्यों सहित आमंत्रित कर दान दिया था। अब भी उपस्थित है। नगर के अंदर सुनसान है, उसमें कोई मनुष्य नहीं है।

29

गृध्रकूट पर्वत

घाटी से होकर पर्वत के किनारे-किनारे पर पूर्व-दक्षिण की ओर 15 ली चढ़कर गृध्रकूट[2] पर्वत पर पहुंचे। शिखर पर पहुंचने से 3 ली इधर ही एक पाषाण की कंदरा दक्षिणाभिमुखी है। भगवान बुद्ध यहां बैठकर ध्यान करते थे। पश्चिमोत्तर दिशा में 30 पग पर एक और कंदरा है, आनंद उसमें बैठकर ध्यान करता था। देव मार (पिसुन) गिद्ध का रूप धर (आया) और कंदरा के समक्ष बैठा। आनंद थेर को डराया। भगवान बुद्ध अलौकिक शक्ति से जान गए, पत्थर फोड़कर उन्होंने हाथ निकाला और आनंद का कंधा ठोंका। तत्क्षण भय जाता रहा। पक्षी का पद-चिह्न, हाथ (निकालने) का दरार अब तक है। इसी से गृध्रकूट नाम पड़ा।

कंदरा के सामने चारों (पूर्व-बुद्धों) के बैठने के स्थान हैं। अनेक अर्हतों के अलग-अलग बैठकर ध्यान करने की कंदराएं हैं, सब कई सौ होंगी। भगवान बुद्ध गुफा के सामने पूर्व से पश्चिम चंक्रमण कर रहे थे। देवदत्त ने पर्वत के उत्तर की करार से पत्थर चलाया। भगवान बुद्ध के पैर के अंगूठे में लगा। पत्थर अब तक है।[3] भगवान बुद्ध के धर्मोपदेश का मंडप

1. *तीर्थंकर का एक नाम। भगवान बुद्ध के आमंत्रण की बात किसी अन्य ग्रंथ में नहीं मिलती।*
2. *किसी-किसी ने यह लिखा है कि गृध्रकूट का आकार गिद्ध (गृध्र) पक्षी के सदृश है।*
3. *एक जातक में लिखा है कि राजगृह में पहले सिवयान नामी वैश्य था। उसके पुत्र सिवन्सेथि ने पिता के मरने पर अपने सौतेले भाई को पर्वत से गिराकर मार*

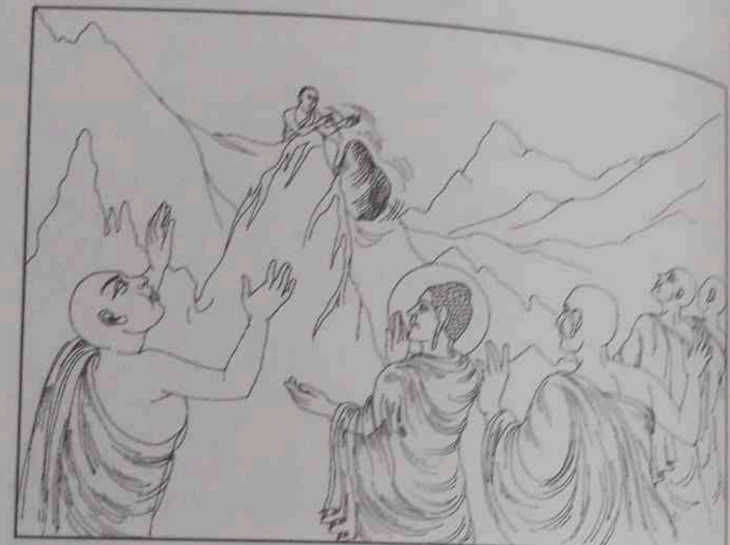

भगवान बुद्ध पर चट्टान लुढ़काकर उनकी जीवन लीला समाप्त करने का प्रया करते देवदत्त

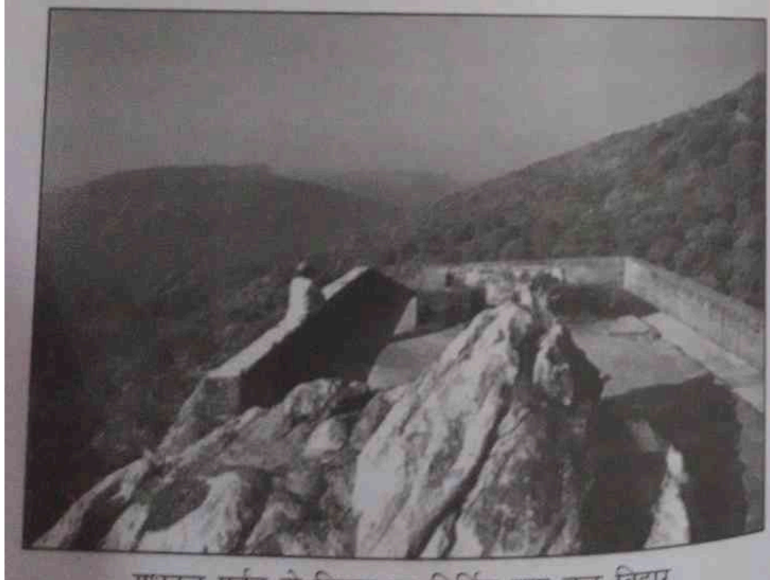

गृध्रकूट पर्वत के शिखर पर निर्मित एक बुद्ध विहार यानी स्तूप के भग्नावशेष

गिर गया है, केवल ईंटों की नींव शेष रह गई है। इस पर्वत का शिखर हरा-भरा और खड़ा है। यह पांचों पर्वतों में सर्वोच्च है। फाह्यान नए नगर में गंध, पुष्प, तेल, दीप, मोल लेकर यहां के दो भिक्खुओं से लिवा लाया गया। फाह्यान गृध्रकूट पर पहुंचा। पुष्प और गंध से पूजा की। रात्रि में दीप जलाया। उसे बहुत दुख हुआ। आंसू रोके। कहा, भगवान बुद्ध ने यहां सुरंगम (सूत्र) का उपदेश किया। फाह्यान जन्मा, भगवान बुद्ध को न मिल सका। पद-चिह्न और रहने के स्थानों के अतिरिक्त और कुछ न देखा। फिर पाषाण की कंदरा के समक्ष सुरंगम (सूत्र) गाया। एक रात्रि रहा और फिर नए नगर को लौट आया।

30

सप्तपर्णी गुफा

प्राचीन नगर से निकलकर उत्तर की ओर लगभग 300 पग चलने पर सड़क के पश्चिम करंड[1] वेणुवन विहार पड़ता है। अब तक विद्यमान है। भिक्खुसंघ सफाई करते और पानी देते हैं।

इस विहार से उत्तर में दो-तीन ली पर एक कब्रिस्तान है। कब्रिस्तान चीनी भाषा में भी मुर्दा गाड़ने के स्थान को कहते हैं।

डाला था और सारा धन ले लिया था। वहीं सिवन्मेथि बहुत जन्म पीछे भगवान बुद्ध गौतम हुआ और उसके सौतेले भाई देवदत्त ने पूर्वजन्म का बदला चुकाने के लिए उस पर पत्थर फेंका था, जो भगवान बुद्ध के अंगूठे में लगा था।

1. *इसे सब अनुवादकों ने कारंडवेणु वन लिखा है पर वास्तव में इसका यह नाम कालांतक में पड़ा जान पड़ता है। कहते हैं कि बिम्बिसार ने जब वह युवराज था इसके स्वामी से इसे बलपूर्वक छीन लिया था। वह स्वामी मरकर सर्प हो गया और उसी बाग में रहता था। एक बार उसने बिम्बिसार पर जब वह राजा था और उस बाग में गया था, चोट की थी। इसी कारण उसका नाम कालांतक वन पड़ा, पीछे वह भगवान बुद्ध को रहने के लिए दिया गया और वहां विहार बना। (उक्त कथा का हमें अभी कोई ज्ञान नहीं है परंतु हमारी जानकारी के अनुसार वेणुवन विहार में एक स्थान पर काफी मात्रा में गिलहरियां निवास करती थी, गिलहरी को पालि भाषा में कलन्दक कहते हैं। इसी कारण इसे कलन्दकनिवाप कहा गया। फाह्यान के समय कलन्दकनिवाप बिगड़ कर करंड हो गया जान पड़ता है—सं.)*

पर्वत को विदा देकर पश्चिम की ओर चलने पर 300 पग पर एक गुफा है। नाम पिप्पल गुफा। भगवान बुद्ध भोजनांतर यहां बैठकर ध्यान किया करते थे।

पश्चिम में पांच-छह ली जाने पर पर्वत की उत्तरी आड़ में एक और गुफा सप्तपर्णी है। भगवान तथागत सम्यक समबुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात 500 अर्हतों ने एकत्रित होकर इस स्थान पर तिपिटक के सूत्रों का संग्रह किया था। जब सूत्रों का पारायण होने लगा, तीन ऊंचे आसन बने थे और भली-भांति अलंकृत किए गए थे। सारिपुत्त बाईं ओर और मौद्गल्यायन दाहिनी ओर बैठा। 500 की गणना में एक अर्हत की कमी थी। आनंद थेर बाहर था (अर्हत न होने के कारण) भीतर नहीं आ पाया। यहां धम्म स्तूप बनाया गया, जो अब भी है।

पर्वत के किनारे, भी बहुत से अर्हतों के बैठकर ध्यान करने की विभिन्न गुफाएं हैं। पुराने नगर से उत्तर-पश्चिम निकलकर तीन ली उतरने पर देवदत्त की गुफा पड़ती है। इससे 50 पग पर एक बड़ी चौकोर शिला है। उस पर एक भिक्खु ने चंक्रमण करते विचारा 'देह अनित्य है, दुखमय और अलीक, पवित्र नहीं है। मैं इस देह से तंग आ गया हूं, इसने मुझे बहुत क्लेश दिया।' यह विचार कर उसने स्वहत्या करने के लिए छुरी उठाई। फिर मन में आया कि भगवान ने स्वघात का निषेध किया है। फिर मन में

आया—'अच्छा, किया तो है पर मैं अब तीनों दुखदाई शत्रुओं को[1] मारूंगा।' फिर छुरी ले गला काटने लगा छुरी के गले में प्रवेश करते ही स्रोतपन्न, आधा कटते-कटते अनागामी और सारा कटते-कटते वह अर्हत हो गया और निर्वाण पद को प्राप्त हुआ।

31

गया

यहां से पश्चिम 4 योजन चलकर गया[2] नगर में पहुंचे। नगर के अंदर सुनसान और उजाड़ है। और दक्षिण 12 ली चलकर बोधिसत्व के 6 वर्ष घोर तप करने के स्थान (गयासीस पर्वत पर डुंगेश्वरी स्थान) पर पहुंचे। इस स्थान पर जंगल था।

यहां से पश्चिम 3 ली चलकर उस स्थान पर पहुंचे, जहां भगवान बुद्ध स्नान के लिए[3] पानी में धंसे थे और एक देवता ने वृक्ष की डाली झुकाई थी, जिसे पकड़कर वे जलाशय से बाहर निकले थे।

उत्तर में 2 ली पर गांव की लड़कियों (सुजाता और उसकी दासी पूर्णा) ने, जहां बुद्ध को खीर दी थी, वह स्थान है। इससे उत्तर 2 ली पर भगवान बुद्ध ने एक बड़े वृक्ष के नीचे पत्थर पर पूर्वाभिमुख बैठकर खीर खाई थी। वृक्ष और शिला अब भी विद्यमान है। शिला की लंबाई-चौड़ाई 6 हाथ और

1. राग, द्वेष और अविद्या
2. यह स्थान गया नगर से पूर्व-पश्चिम में है और 'बोधगया' कहलाता है।
3. नीरंजना व नीलांजना (निरंजना) नदी में स्नान किया था।

ऊंचाई 2 हाथ है। मध्य देश में शीतोष्ण की समता है। वृक्ष कई सहस्र या दस सहस्र वर्ष तक रहते हैं।

यहां से पूर्वोत्तर आधे योजन पर एक पाषाण की कंदरा पड़ती है। बोधिसत्व इसमें जाकर पश्चिमाभिमुख पालथी मारकर बैठे थे। मन में कहा कि जो मुझे बोधिज्ञान प्राप्त होने को हो, तो अलौकिक प्रमाण मिले। शिला की दीवार पर भगवान बुद्ध की छाया दिखाई पड़ी। तीन हाथ से अधिक ऊंची थी। जो अब तक चमकती है। उस समय आकाश और पृथ्वी में बड़ा कंपन हुआ। सारे देवता बोल उठे, "यह स्थान नहीं है जहां आकर सारे बुद्धों में से कोई भी बोधिज्ञान प्राप्त हुआ हो। यहां से पश्चिम-दक्षिण आधे योजन से कम पर जाकर (चल)[1] पत्रवृक्ष पड़ेगा, वहां जाकर सब बुद्ध बोधिज्ञान प्राप्त करते हैं।" सारे देवताओं ने यह कह उस ओर का मार्ग दिखाया। वे गाते हुए आगे-आगे चले। बोधिसत्व उठकर चले। वृक्ष से 30 पग पर एक देवता (सोत्थिय नामक घसियारा) ने कुश (घास) दिया। बोधिसत्व उसे लेकर आगे चले। 15 पग चलने पर 500 हरे पक्षी (तोते) उड़ते हुए आए। उन्होंने बोधिसत्व की तीन बार परिक्रमा की और चले गए। बोधिसत्व चलपत्र वृक्ष के नीचे पहुंचे। कुश बिछाकर पूर्व की ओर मुख करके बैठ गए। फिर मारराज ने अपनी तीन सुंदर स्त्रियां भेजीं। वे उत्तर से आकर मोहित करने लगीं। मारराज दक्षिण से आकर मोहित करने लगा। बोधिसत्व ने पैर का अंगूठा पृथ्वी में लगाया। मार भागा और पराजित हुआ। तीनों युवतियां जराग्रस्त होकर वृद्धा हो गईं।

जहां छह वर्ष कठोर तप किया वहां तथा अन्य सब स्थलों पर पीछे लोगों ने जो स्तूप बनाए तथा मूर्तियां स्थापित की थीं, सब अब तक हैं।

जिस स्थान पर भगवान बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त कर दिन (सात सप्ताह सं.) ध्यान किया—वृक्ष की ओर—और विमुक्ति आनंद अनुभव किया, जिस स्थान पर चलपत्र (पीपल) वृक्ष के नीचे पूर्व-पश्चिम सात दिन चंक्रमण किया, जिस स्थान पर सब देवताओं ने आकर सप्तरत्न का मंडप बनाया और भगवान बुद्ध की आराधना सात दिन की, जिस स्थान पर मुचलिंद नाग

1. *फाह्यान ने केवल पत्र लिखा है जिसे न समझकर लेगी महोदय ने नोट में A palm tree, borassus flabellifera अर्थात ताड़ लिखा है। संस्कृत में चलपत्र पीपल को कहते हैं।*

सात दिन तक भगवान बुद्ध को आवेष्ठन (ढके हुए) किए था, जिस स्थान पर भगवान बुद्ध सात दिन तक न्योग्रोध (वटवृक्ष) वृक्ष के नीचे चतुष्कोण शिला पर पूर्वाभिमुख बैठे थे, और ब्रह्मदेव ने आकर प्रार्थना की थी, जिस स्थान पर चातुर्महाराजाओं ने भिक्खापात्र दान किया, जिस स्थान पर 500 वणिकों ने भुना हुआ आटा और मधु (मधुपिण्ड) दिया था, जिस स्थान पर कश्यप बंधुओं और उनके 1,000 शिष्यों को उपदेश किया—इन सभी स्थानों पर धम्म स्तूप बने थे।[1] भगवान बुद्ध के बोधि (बुद्धत्व) प्राप्त करने के स्थान पर तीन संघाराम हैं। सभी में श्रमण निवास करते हैं। निवासी भिक्खुसंघ को सभी आवश्यक पदार्थ प्रदान करते हैं। उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती। वे विनय का यथार्थ पालन करते हैं। बैठने-उठने और संघ में जाने के आचार-व्यवहार (सेखिय) उसी नियम के अनुसार हैं, जैसे भगवान बुद्ध के काल में थे। संघ में 1,000 वर्ष हुए वे अभी तक चले आ रहे हैं। भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के चारों महास्तूप के स्थान हैं। उन्हें सब जानते चले आ रहे हैं, कुछ विपर्यय (उलट-पुलट) नहीं हुआ है। चारों महास्तूप—बुद्ध का जन्म स्थान, बुद्धत्व-प्राप्ति-स्थान, धर्म-चक्र-प्रवर्तन स्थान और महापरिनिर्वाण स्थान से संबंधित हैं।

32

सम्राट अशोक

सम्राट अशोक पूर्वजन्म में जब बालक था और मार्ग में खेलता था शाक्य[2] बुद्ध भिक्खार्थ भ्रमण करते उसे मिले। बालक से मांगा। उसने एक

1. *इस अनुच्छेद में सभी जानकारियां तिपिटक साहित्य से मेल नहीं खातीं। कारण समय के साथ इनमें अंतर आ गया जिसे जानकर फाह्यान ने लिख दिया।*
2. *कोरिया की प्रति में काश्यप है। लेगी महोदय ने इसी को उचित माना है, पर यह एक भ्रम है। चीन का पाठ ठीक है। ग्रंथों में इस प्रकार लिखा है कि कभी भगवान बुद्ध आनंद थेर के साथ भिक्खा को आ रहे थे। मार्ग में लड़के खेलते थे, घरौंदा बना रहे थे। भगवान बुद्ध को देखकर एक लड़का हाथ में धूलि लेकर भिक्खा देने आया। पास पहुंचने पर वह उनके पात्र तक नहीं पहुंच सकता था, निदान दूसरे बालक के कंधे पर सवार होकर उनके पात्र में उसने धूलि डाल दी। भगवान बुद्ध ने आनंद थेर से कहा कि इस मिट्टी को पानी में मिलाकर चैत्य पर लेप कर दो। और बालक को आशीर्वाद दिया कि मेरे महापरिनिर्वाण से सौ वर्ष पश्चात तू राजा होगा और 84,000 स्तूप बनवाएगा।*

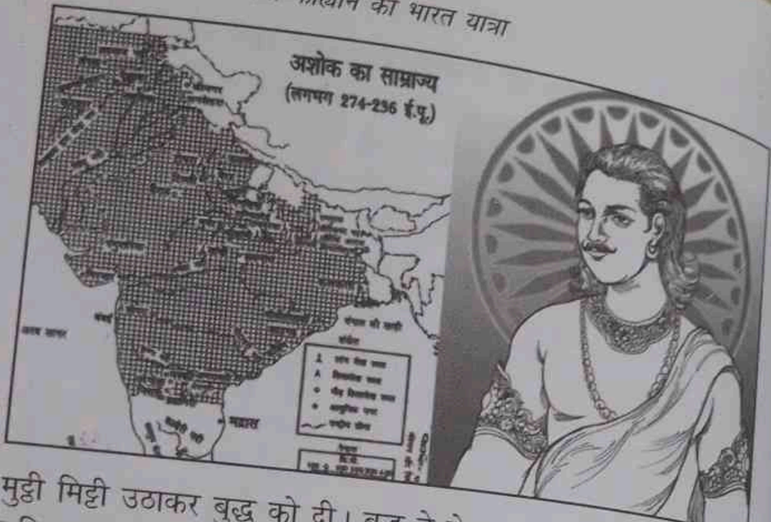

मुट्ठी मिट्टी उठाकर बुद्ध को दी। बुद्ध ने लेकर जहां चंक्रमण करते थे, उस भूमि पर डाल दी। इसका फल मिला, लौहचक्र का राजा जंबुदीप का राजा बन गया। राजा एक बार जंबुदीप में यात्रा पर था। उसने लौहचक्रवाल में दो पर्वतों के मध्य नरक देखा जो पापियों की यातना का स्थान था। बंधुओं और अमात्यों से पूछा यह क्या है? जवाब मिला असुरराज यमराज का पापियों की यातना (का स्थान)। राजा ने मन में सोचा असुरराज यमराज ने तो पापियों की यातना के लिए नरक बनाए, मैं मानवाधिप पापियों की यातना के लिए नरक न बनवाऊं। मंत्रियों से कहा कि किससे मैं नरक बनवाऊं। किसे पापियों की यातना का अध्यक्ष (मुखिया) बनवाऊं। मंत्रियों ने जवाब दिया "केवल अति चांडाल (दस्यु) मनुष्य इसे निर्माण करा सकता है।" राजा ने मंत्रियों को भेजा कि चांडालकर्मा मनुष्य खोजो। उन्होंने एक जलाशय के तट पर एक मनुष्य को देखा जो विशाल, प्रचंड, कृष्ण वर्ण, कपिश केश, और बिडालाक्ष था, पैर से मछली फंसाता, मुंह से पशु-पक्षियों को बुलाता और पशु-पक्षियों के आते ही प्रहार करता और मारता कि एक भी न बचते। इस मनुष्य को पकड़कर वे राजा के समीप ले गए। राजा ने गुप्त रूप से आज्ञा दी। तू चारों ओर से स्थान पर ऊंची प्राचीर बनवा, भीतर विभिन्न प्रकार के फूल-फल लगा, सुंदर घाटवाला सरोवर बनवा, सर्वतो भावेन, मनोहर और चित्ताकर्षक कि लोग चाव से देखने दौड़ें, कपाट (दरवाजा) सुदृढ़ बनवाना, लोग जाएं तो चट पकड़ लेना, भांति-भांति की यातनाएं पापियों को देना, अवरुद्ध करना, बाहर कदापि निकलने न देना।

(और क्या) मैं भी कदापि जाऊं तो मुझे भी पापियों की भांति यातना देना, वैसे ही अवरुद्ध करना। अब मैंने तुझे नरक का अध्यक्ष बनाया है।

फिर एक भिक्खु भिक्खा मांगता हुआ द्वार के भीतर गया। नरकाध्यक्ष ने देखा और उसे पकड़कर पापियों की यातना देनी चाही, भिक्खु भयभीत हुआ। उसने विनती की कि मध्याह्न के भोजन का अवकाश तो दो। इसी अंतराल में एक और मनुष्य वहां पर आया, नरकाध्यक्ष ने उसे कोल्हू में डाल दिया और पेर दिया। उसमें से लाल फेन बह निकली। भिक्खु को यह देख मन में ज्ञान जागृत हुआ कि देह नित्य नहीं, दुखमय, असत् और जल के फेन व बबूला जैसी है। वह तुरंत अर्हत पद प्राप्त हो गया। फिर नरकाध्यक्ष ने खौलते पानी के कड़ाह में उसे डाल दिया पर भिक्खु प्रसन्नचित्त और शांत रहा, आग बुझ गई, पानी का कड़ाह ठंडा हो गया, भीतर कमल का पुष्प उत्पन्न हुआ, उस पर भिक्खु विराजमान था। तदनंतर नरकाध्यक्ष ने दौड़कर राजा को सूचना दी कि नरक में यह अनहोनी बात हुई। महाराज चलकर देखें। राजा ने कहा, मैं पहले प्रतिज्ञा कर चुका हूं, अब जा नहीं सकता। नरकाध्यक्ष ने कहा, यह छोटी बात नहीं है। महाराज को विलंब न कर शीघ्र चलना चाहिए। पूर्व–प्रतिज्ञा छोड़िए। राजा साथ भीतर गया तो भिक्खु ने राजा को धर्मोपदेश किया। राजा ने सुना, विश्वास किया और वह मुक्त हुआ। उसने नरक का ध्वंस कर दिया। पूर्वकृत दुष्कर्मों का पश्चाताप किया। तब से वह त्रिरत्न का विश्वास और मान करने लगा। नित्य चलपत्र वृक्ष के नीचे जाता, पापदेशना करके पश्चाताप करता। उसने अष्टांग धर्म (आष्टांगिक मार्ग) को स्वीकार किया।

राजा की महारानी ने पूछा कि राजा नित्य कहां जाता है? बंधुओं और मंत्रियों ने जवाब दिया कि चलपत्र वृक्ष (पीपल का वृक्ष) तले जाता है। रानी ने देखा कि राजा नहीं है। उसने आदमी भेजकर, पेड़ कटवा डाला। राजा आया तो देखते ही शोक से मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ा। मंत्रियों ने मुंह पर पानी का छींटा दिया, बड़ी देर में चेत (होश) आया। राजा ने चारों ओर ईंट चुनवा दीं, सौ घड़े दूध वृक्ष के मूल (जड़) में दिए और आप चौरंग भूमि पर पड़ा। उसने प्रतिज्ञा की कि वृक्ष न जीया तो मैं भी न उठूंगा। इस शपथ के उपरांत वृक्ष मूल से निकलने लगा और अब तक बढ़ता जा रहा है। अब 100 हाथ के लगभग ऊंचा है।

33

कुक्कुटपाद

इस स्थान से दक्षिण में 3 ली चलकर एक पर्वत पर पहुंचे। आम कुक्कुट[1] पाद। महाकाश्यप अब तक इस पर्वत में रहते हैं। पर्वत की दरार में प्रवेश कर गए हैं। प्रवेश के स्थान पर मनुष्य की समाई (प्रवेश) नहीं है। नीचे जाकर किनारे पर एक बिल है। काश्यप सदेह उसमें हैं। बिल पर काश्यप ने हाथ धोए थे। आसपास के लोगों के सिर में घाव लगता है तो वे यहां की मिट्टी लगाकर चंगे (ठीक) हो जाते हैं। पर्वत में अब भी अनेक अर्हत रहते हैं। आसपास के सारे जनपद के बौद्ध लोग साल-दर-साल काश्यप की पूजा आकर करते हैं। धर्म के श्रद्धालुओं के पास रात्रि को अर्हत आते हैं, वार्तालाप करते हैं, शंका-समाधान करते हैं और अंतर्धान हो जाते हैं।

इस पर्वत में आताम[2] झाड़ बहुत हैं। उसमें अनेक सिंह, व्याघ्र और भेड़िये हैं। बिना सावधानी जाना ठीक नहीं है।

34

वाराणसी

'फाह्यान' 'पाटलिपुत्र' की ओर फिरा। गंगा के किनारे-किनारे पश्चिम जाकर 10 योजन पर एक बुद्ध विहार पड़ता है। नाम है 'अनालय'।[3] भगवान बुद्ध इस स्थान पर रहे थे। जहां अब भिक्खुगण निवास करते हैं।

गंगा के किनारे-किनारे पश्चिम में 12 योजन चलकर वाराणसी जनपद के काशी नगर में पहुंचा। नगर के पश्चिम-उत्तर में 10 ली पर ऋषिपत्तन मृगदाव

1. जनरल कनिंघम ने कुटकीहार के उत्तर की एक पहाड़ी को कुक्कुटपाद लिखा है। डॉ. श्टीन महोदय का मत है पुनावां से दो मील दक्षिण पर हर्सा (सोमनाथ) पहाड़ी कुक्कुटपाद है पर बाबू रखालदास ने एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के जनरल 1909 के पृ. 81-83 तक के एक लेख में यह प्रमाणित कर दिया है कि गुरुप्पा ही गरुडपाद है। गुरुप्पा बोधगया से 19, 20 मील पर कटारगढ़ स्टेशन के निकट है। प्रोफेसर समद्दार ने इसे गया से दक्षिण-पूर्व में सात मील पर लिखा है।

2. अनुवादकों ने इसे Hazel लिखा है।

3. यह वर्तमान बलिया नगर के नजदीक है।

विहार[1] है। इस वन में पहले एक प्रत्येक बुद्ध (पच्चेक बुद्ध) रहते थे। बहुतायत में मृग सदैव आश्रम के पास बसते थे। जब भगवान को बुद्धत्व प्राप्त होने को हुआ, सभी देवता आकाश में गान करने लगे, "शुद्धोदन का कुमार प्रव्रज्या ले मार्गानुसारी हुआ, सप्ताह बीते बुद्ध होगा।" प्रत्येक बुद्ध यह सुन परिनिर्वाण को प्राप्त हुआ। इसी से इस स्थान का ऋषिपत्तन मृगदाव नाम पड़ा। भगवान के बुद्धत्व प्राप्त होने के पीछे लोगों ने इस स्थान पर विहार निर्माण किया।

भगवान बुद्ध ने चाहा कि कोण्डिन्यादि पंचवर्गीयों को उपदेश करूं। पंचवर्गीय परस्पर कहने लगे, इस गौतम श्रवण ने 6 वर्ष तक कठोर तप किया। एक दाल और चावल खाया, मार्ग प्राप्त न हुआ। अब मनुष्यों के बीच रहता है, काया, वाणी और मन से दृढ़ है। मार्ग से क्या काम है? आज आ रहा है। सावधान रहो, बोलना नहीं। जब भगवान पहुंचे तो जिस स्थान से पंचवर्गीय भिक्खु उठे और अभिवादन किया, वहां से 60 पग जिस स्थान पर भगवान बुद्ध ने पूर्वाभिमुख बैठकर धर्मचक्र प्रवर्तन किया और कोण्डिन्यादि पंचवर्गियों को उपदेश किया था, वहां से 20 पग उत्तर जिस स्थान पर मैत्रेय बोधिसत्व के विषय में भविष्यवाणी की थी, और फिर उससे दक्षिण में 50 पग पर जहां 'एलापत्र' नाग (नाग जाति का मनुष्य) ने भगवान बुद्ध से पूछा था कि मैं कब इस नाग देह से मुक्त होऊंगा, इन

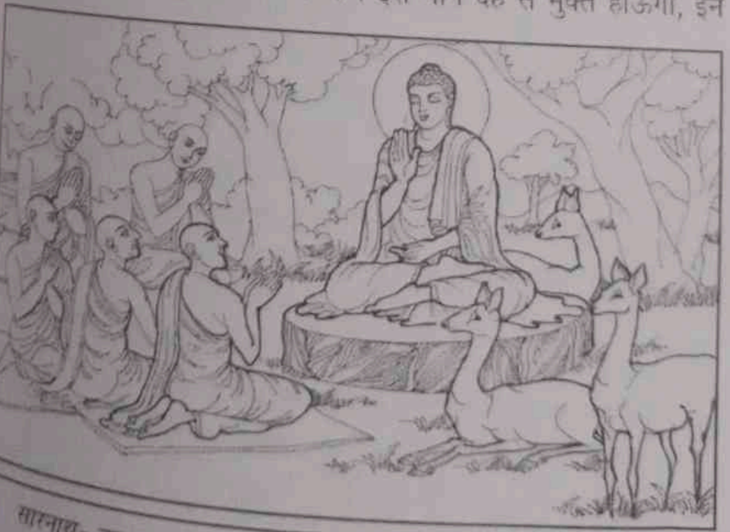

1. सारनाथ—उस समय वाराणसी का काशी नगर वरुण और गंगा के संगम के पास था। यह स्थान राजघाट के उत्तर में टूटी-फूटी अवस्था में पड़ा है।

सभी स्थानों पर स्तूप निर्मित हैं। अब तक भी हैं। भीतर दो संघाराम हैं। दोनों में श्रमण रहते हैं। पत्तन मृगदाव विहार से पश्चिमोत्तर 13 योजन पर कौशांबी[1] नामक जनपद है। विहार का नाम है गोक्षीर[2] वन। अब तक पूर्ववत है। भिक्खुसंघ रहते हैं, प्रायः हीनयानानुयायी हैं।

पश्चिम की ओर आठ योजन पर भगवान बुद्ध के दस्यु यक्ष को उपदेश करने के स्थान, चंक्रमण करने और बैठने के स्थान पर सर्वत्र धम्म स्तूप बने हैं। संघाराम भी बने हैं। यहां पर 100 से अधिक श्रमण रहते हैं।

35

दक्षिण

इससे दक्षिण 200 योजन में जाकर एक जनपद पड़ता है। नाम है दक्षिण। वहां प्राचीन काश्यप बुद्ध का एक संघाराम है। यह एक समूचे पर्वत को काटकर बना है। पांचतले का है, नीचे का तला हस्त्याकार (हाथी के आकार का) बना है, 500 प्रस्तर गुफा गृह हैं। द्वितीय प्रासाद सिंहाकार बना है, 400 गृह हैं। तृतीय प्रासाद अश्वाकर बना है, जिसमें 300 गृह हैं। चतुर्थ प्रासाद वृषभाकार बना है, 200 गृह हैं। पंचम प्रासाद कपोताकार है, 100 गृह हैं। प्रासाद शिखर पर पानी का झरना है। पत्थर की गुफाओं में सामने से होकर कोठरियों में फिरती पानी की धार कहीं चक्कर काटती कहीं मुड़ती हुई नीचे के तले में पहुंचती है, फिर सामने से घूमकर द्वार से बाहर निकल जाती है। श्रमणों की सब गुफाओं में स्थान-स्थान पर पत्थर काटकर प्रकाश के लिए गोखे (झरोखे) बने हैं, गुफा में स्वच्छ प्रकाश रहता है, अंधकार का नाम नहीं है। गुफाओं के चारों कानों में पत्थर काटकर ऊपर जाने के लिए आरोह (सीढ़ियां) बने हैं। अब के मनुष्यों का डील छोटा होता

1. *इलाहाबाद जिले में यमुना के किनारे पर बसे स्थान को कोसम कहते हैं। कोई-कोई कुसिरा को भ्रमवश कौशांबी समझते हैं।*
2. *गोक्षीर व गोशीर एक सेठ का नाम था। उसने एक वन व आराम और विहार बनवाकर भगवान बुद्ध को दान किया था। वह भगवान को वर्षावास के लिए श्रावस्ती से आमंत्रित करने स्वयं गया था। पालि ग्रंथों में वैश्य का नाम गोसित मिलता है। कौशांबी में उस समय उदयन का राज्य था। इसके खंडहर के चिह्न समगांव में जो इलाहाबाद के जिले में यमुना के किनारे मिलते हैं।*

है, सीढ़ी चढ़कर ऊपर जाते हैं। पहले के मनुष्य एक पग में ऊपर पहुंचते थे। इसी कारण इस विहार का नाम 'पारावत विहार' पड़ा। पारावत पर्वत का हिंदी नाम है। इस विहार में अर्हत निरंतर निवास करते हैं।

भूमि बंजर पड़ी है। बस्ती नहीं है। पर्वत से बहुत दूर पर एक बस्ती दुष्ट आचार-विचार वालों की है। वे न बौद्ध श्रमण, न ब्राह्मण, न अन्य धर्मों के जानने-मानने वाले हैं। जनपद के निवासी निरंतर देखते आए हैं कि उड़ने वाले मनुष्य विहार में आया करते हैं। एक बार कोई बौद्ध इस विहार में पूजा हेतु गया। गांव के लोगों ने पूछा उड़ते क्यों नहीं। हमने तो जिन बौद्धों को देखा सब उड़ते थे। बौद्ध व्यक्ति ने तुरंत जवाब दिया कि अभी हमारे पंख यथावत नहीं निकले हैं।

दक्षिण जनपद नितांत निराले हैं। मार्ग डरावना और कठिन है। कठिनाइयों को झेलकर जाने के इच्छुक सदा धन और उपहार स्वरूप वस्तु साथ ले जाते हैं और जनपद के राजा को देते हैं। राजा प्रसन्न हो रक्षक मनुष्य साथ भेजता है, जो एक बस्ती से दूसरी बस्ती तक पहुंचाते और सुगम मार्ग बताते हैं। फाह्यान तो वहां न जा सका। देश के लोगों ने जो कुछ कहा, उसे जैसा सुना वैसा ही उसने वर्णन किया है।

36

पाटलिपुत्र में खोज और विद्याध्ययन

वाराणसी से पूर्व की ओर लौटकर पाटलिपुत्र पहुंचा। फाह्यान का प्रधान लक्ष्य था उत्तर भारत के सभी जनपदों में जाकर विनयपिटक की खोज करना। परंपरा से मौखिक शिक्षा देता एक आचार्य मिला, पर मूल प्रति नहीं मिली, किससे वह लिखता? (इसलिए) इतनी दूर चलकर मध्य भारत में आया। यहां महायान के संघाराम में एक निकाय का विनय पिटक मिला अर्थात महासांघिक निकाय का विनयपिटक। भगवान बुद्ध जब संसार में थे तब प्रथम महासंघ में इसका प्रचार हुआ था। जेतवन विहार के शिक्षाक्रम के अनुसार मूल था। शेष 18 निकाय[1] अपने आचार्यों के मत और सिद्धांतानुसार

1. *भ्रमवश अंग्रेजी अनुवादकों ने भाव न समझ मनमाना अर्थ किया है। लेगी महोदय ने Eighteen Schools, बील महोदय ने Eighteen Sects और अन्यों ने*

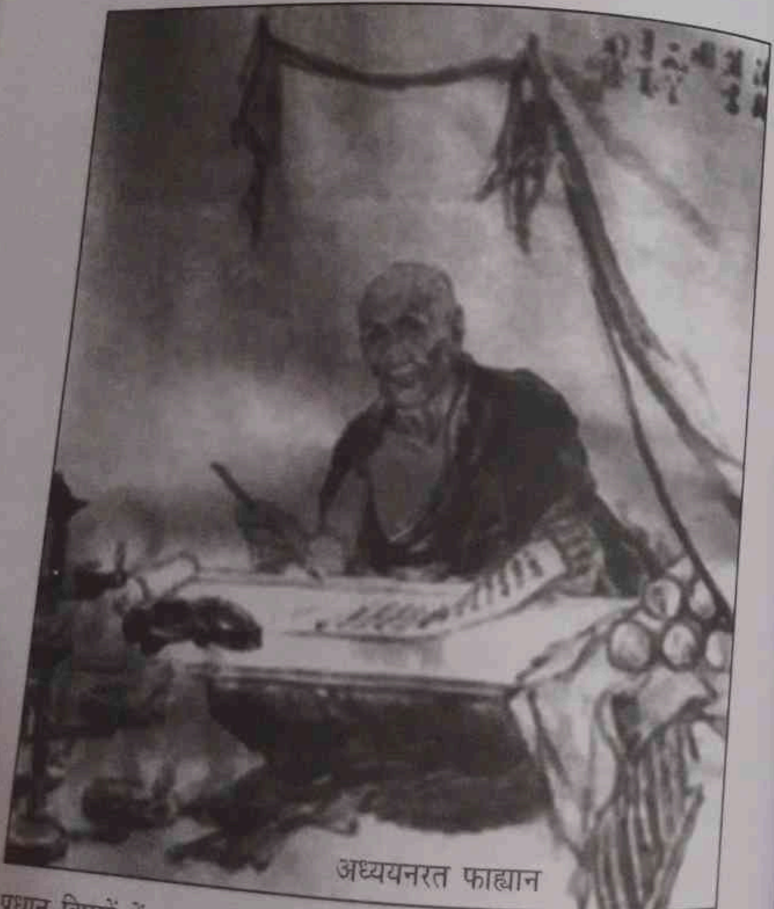

अध्ययनरत फाह्यान

प्रधान विषयों में समता और छोटे-छोटे विषयों में मतभेद रखते थे, जैसे, एक का अथ है तो दूसरे की इति।

एक और निकाय का विनय मिला, जो लगभग 700 गाथाओं का था। यह सर्वास्तिवाद निकाय का विनय था। चीन देश के भिक्खुसंघ में इसी का प्रचार था। इसकी भी शिक्षा गुरु परंपरा के अनुसार मौखिक ही चली आती थी, लिखित न थी। यहीं के इसी संघ में 'संयुक्त धर्म हृदय' लगभग 6,000 गाथा का मिला। एक और निकाय का सूत्र 2,500 गाथा का, परिनिर्वाण वैपुल्य सूत्र का एक अध्याय, 500 गाथा का—और महासांघिक अभिधम्म मिला।

Eighteen Collection तथा प्रोफेसर समद्दार ने अष्टादश संप्रदाय लिखा है।

अतः फाह्यान यहां 3 वर्ष रहा। संस्कृत भाषा और संस्कृत ग्रंथों का अभ्यास करता और विनयपिटक लिखता रहा। 'तावचिंग' जब मध्य देश में पहुंचा तो उसने श्रमणों को देखा। संघ का उत्कृष्ट आचार-व्यवहार और बात-बात में विनय का अनुसरण मिला, तो तावचिंग' को चीन की प्रांत भूमि के भिक्खुसंघ के अधूरे और विच्छिन्न विनय का स्मरण आया। उसने शपथ के साथ कहा, "अब से जब लों बुद्ध न हों प्रांत की भूमि में न जन्म लूं।" फिर वह यहीं रह गया और वापिस न लौटा। फाह्यान का तो मुख्य उद्देश्य था समग्र विनय ले जाकर हान के देश में प्रचार करना। निदान वह अकेला लौटा।

37

चंपा और ताम्रलिप्ति–सिंहल यात्रा

गंगा के किनारे पूर्व दिशा में 18 योजन उतरकर दक्षिणी तट पर चंपा[1] का महाजनपद पड़ा। भगवान बुद्ध का विहार चंक्रमण स्थान पर है। सभी बुद्धों के बैठने के स्थान पर स्तूप बने हैं। वहां श्रमण रहते मिले। इससे और पूर्व चलकर 50 योजन के अनुमान चलने पर ताम्रलिप्ति[2] जनपद में पहुंचा। यहां कई बंदरगाह हैं। इस जनपद में 24 संघाराम हैं। श्रमण संघ में रहते हैं। बुद्ध धम्म का भी अच्छा प्रचार है। फाह्यान यहां दो वर्ष रहा। उसने सूत्रों को लिखा, मूर्तियों के चित्र बनाए।

फिर व्यापारियों के एक वृहत्पोत (विशाल जलयान) पर चढ़ा, समुद्र में दक्षिण-पश्चिम की ओर चला। जाड़े का आरंभ, वायु अनुकूल। 14 दिन चलकर सिंहल जनपद में पहुंचा। जनपद के किनारे लोगों ने कहा कि 700 योजन के लगभग आए।

यह जनपद एक विशाल द्वीप है। पूर्व-पश्चिम 50 योजन, दक्षिण-उत्तर 30 योजन। दाएं-बाएं छोटे-छोटे द्वीप हैं। 100 के लगभग—अंतर 10 ली से 200 ली तक, पर सब महाद्वीप के अधीन। अनेक में विविध शुद्ध और चमकीले मणि मुक्ता निकलते हैं। एक में मुक्ता मणि निकलता है। यह 10 ली

1. यह भागलपुर जिले का एक विभाग है।

2. इसे तमलुक कहते हैं, जो बंगाल के मेदिनीपुर जिले में है।

वर्ग भूमि का होगा। राजा पहरे और रक्षा के लिए पुरुष नियत करता है। पानेवालों से मोतियों के 10 भाग में से 3 ले लेते हैं।

38

सिंहल पर्व्व

इस जनपद में पहले मनुष्य नहीं बसते थे। यक्ष और नाग (नाग जाति के बहादुर और शूरवीर लोग) रहते थे। सभी जनपद के व्यापारी वाणिज्य करते थे। वाणिज्य के समय यक्ष संदेह में दिखाई नहीं पड़ते थे। बहुमूल्य पदार्थों से मूल्य के चिट लगा रख देते थे। व्यापारी जन मूल्य के अनुसार क्रय (खरीद) करते और माल ले जाते थे।

व्यापारियों की आवाजाही से लौटने पर सब जनपद के लोगों ने इस भूमि की मनोहरता की चर्चा सुनी। सब दल के दल चले, बसने लगे, महाजनपद हो गया। यह जनपद सौम्य और सुहावना है। जाड़े-गर्मी में अंतर नहीं है। वनस्पति और वृक्ष सतत लहलहाते रहते हैं। कृषि लोगों की इच्छा पर (जब चाहें) होती है, कोई ऋतु नियम नहीं है।

भगवान बुद्ध[1] इस जनपद में आए। बहादुर नागों को (उपदेश से)

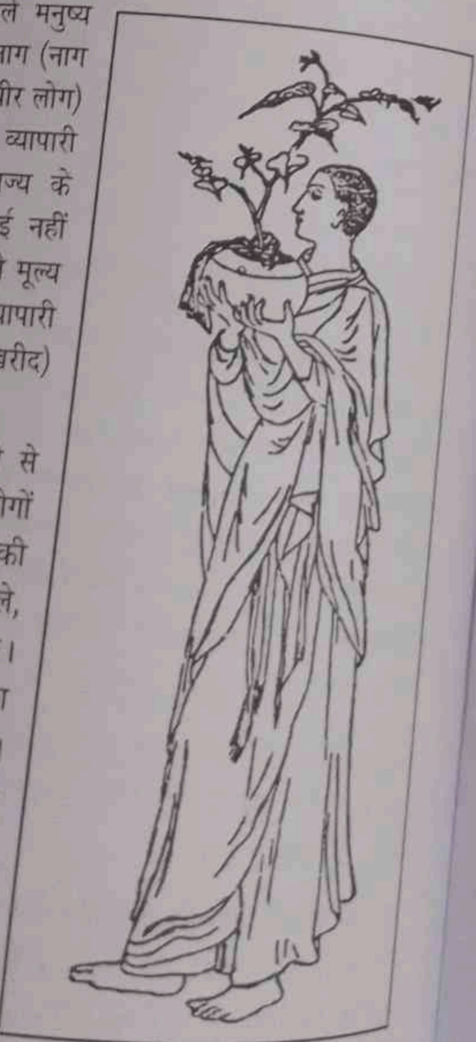

संघमित्रा बोधिवृक्ष शाखा के साथ

1. भगवान बुद्ध के सिंहल जाने का प्रमाण सिवाय इसके और नहीं है कि सिंहल के महावंस आदि ग्रंथों में इसका उल्लेख है।

सुधारना चाहा। अपने अमित (असीम) बल से उन्होंने एक पग राजा के नगर के उत्तर और दूसरा पग एक पर्वत के ऊपर रखा। दोनों पद-चिह्नों में 15 योजन का अंतर था। राजा ने नगर के उत्तर के पद-चिह्न पर एक वृहत धम्म स्तूप बनवाया, जो 400 हाथ ऊंचा सोने तथा चांदी और सर्वरत्न जटित है। उसने धम्म स्तूप के समीप एक संघाराम भी बनवाया था—नाम अभयगिरि है, यहां 5,000 श्रमण निवास करते हैं। यहां भगवान बुद्ध का एक मंडप भी है—उस पर सोने-चांदी की खुदाई और पच्चीकारी के काम चढ़े हैं—सर्वरत्न[1] लगे हैं। मध्य में हरित (लाजवर्त) नीलमणि की एक प्रतिमा है—20 हाथ ऊंची—सर्वांग सप्तरत्न से देदीप्यमान—प्रशांत भावयुक्त—वाणी से वर्णनातीत, दाहिने हाथ में एक अमूल्य मुक्ता है। फाह्यान को हान देश छोड़े कई वर्ष व्यतीत हो गए थे। जो बात करने को मिले सब भिन्न अपरिचित स्थल के मनुष्य। पर्वत, नदी, वनस्पति, वृक्ष कभी आंख नहीं पड़े थे। संगी-साथी सब अलग, मरे अथवा इतस्ततः हो गए। दूसरे की छाया नहीं, मन में निरंतर व्यग्रता। अचानक नीलमणि की मूर्ति की ओर देखा, एक व्यापारी श्वेत रेशम का पंखा चढ़ा रहा था। आंसू भर आए, आंखों से टप-टप गिरने लगे।

इस जनपद के एक प्राचीन राजा ने, मध्य देश को भेजकर (चल) पत्र[1] (पीपल वृक्ष की)[2] की डाली (शाखा) मंगाई और भगवान बुद्ध के मंडप के पास लगवाई। वह लगकर 200 हाथ का ऊंचा वृक्ष हो गई है। यह पेड़ पूर्व-दक्षिण को झुक गया था, राजा ने गिरने के भय से आठ-नौ 'बित्ता' गोलाई का एक लकड़ी का तक्का (उठगना) वृक्ष में लगवा दिया। वृक्ष निरंतर तक्के के स्थान से भीतर जमने लगा और लकड़ी को वेध कर नीचे पहुंचकर भूमि में घुस गया और उसने जड़ पकड़ ली, ऊपर 4 बित्ता (मोटा) गोला हो गया, तक्का के भीतर फार[3] है पर बाहर से जुड़ा है, लोगों ने पृथक नहीं किया है। वृक्ष के नीचे एक विहार बना है, भीतर मूर्ति स्थापित है। गृहस्थ-गृहत्यागी श्रद्धा से अविश्रांत दर्शन करते रहते हैं। नगर में भगवान बुद्ध के दांत का एक विहार है। सब सप्तरत्नमय निर्मित हैं।

राजा उत्कृष्ठ आचार का पालन करता है। नगर के आंतरिक लोगों में धर्म पर श्रद्धा और विश्वास का भाव भी अधिक है। जनपद के शासन के

1. लेगी महोदय ने सप्त (ख) लिखा है पर मूल में सर्वरत्न है।
2. महावंश में लिखा है कि अशोक से बोधिवृक्ष की शाखा मंगवाई थी।
3. अर्थात दरार सा फट गया है।

प्रतिष्ठित होने से, ईति, दुर्भिक्ष, विप्लव व अव्यवस्था नहीं हुई है। भिक्खुसंघ के कोश में अनेक बहुमूल्य रत्न और अमूल्य मणि हैं। एक राजा भिक्खुओं के कोश में बैठा और उसने सब देखा। मणि-मुक्ता को देख उसके मन में लोभ जागृत हुआ, उसने बलपूर्वक अपहरण करना चाहा, तीन दिन उपरांत उसे चेत हुआ, भिक्खुसंघ में जाकर उसने सिर नीचा किया, अपने मानसिक पाप पर पश्चाताप किया, सब स्पष्ट कह भिक्खुओं से विनती कर यह विधान स्थापित करवाया कि अब से फिर आगे राजा को कोश में जाने और देखने पर प्रतिबंध हो, भिक्खु भी चालीस वर्ष भिक्खु वेष में न रहा हो, तो अंदर प्रवेश न पाएं।

इस नगर में अनेक वैश्य श्रेष्ठ और साबा[1] व्यापारी बसे हैं। इन व्यापारियों के घर सुंदर और भव्य हैं। गली अंतरे साफ-सुथरे रहते हैं। सड़कों के चतुष्पथों पर धर्मोपदेश के लिए स्थान निर्मित हैं। महीने में अष्टमी, चतुर्दशी और[2] पंचदशी के दिन आसन बिछता है, ऊंची गद्दी लगती है, गृहस्थ और गृहत्यागी चारों ओर के एकत्रित होते हैं और धर्म चर्चा सुनते हैं। इस जनपद के लोग कहते हैं कि यहां 60,000 भिक्खु रहते हैं, जिन्हें संघ के भंडार घर से भोजन मिलता है। राजा का भी नगर में सत्र है जिसमें पांच-छह हजार लोगों को और धर्मार्थ मिलता है। संघ के भंडार में कमी होती है तो बड़ा भिक्खापात्र[3] उठाकर जाते हैं, जितना आता है लेते हैं, भर जाने पर लौटते हैं।

भगवान बुद्ध का दांत सदैव तीसरे महीने के मध्य में निकलता है, निकलने से 10 दिन पहले राजा एक भव्य अमारी (हौदा) बड़े हाथी पर रखवाता है, एक अच्छे वक्ता को चुनकर राज्य के वस्त्र-आभूषण पहना उसे हाथी पर चढ़ाता है और डंके के साथ यह घोषणा करवाता है—बोधिसत्व ने तीन असंख्य कल्पों में पुण्योपार्जन किया, अपनी देह को न बचाया, जनपद नगर में स्त्री, पुत्र (दिया), आंख निकाल दूसरे को (दी), कपोत के बदले मांस काटकर (दिया), अपना सिर काटकर दान किया, शरीर भूखी बाघिन को खाने को दिया, मस्तिष्क और भेजा (देने) में क्षोभ न किया। इस प्रकार

1. *अरब देश के व्यापारी*
2. *पूर्णिमा और अमावस्या*
3. *जैसे भारतवर्ष में साधू लोग भंडारे के लिए मटका लेकर भरवाने के लिए गांव-गांव फिरा करते हैं।*

वे भांति-भांति के क्लेश प्राणियों के लिए सहते रहे। पर जब बुद्ध हुए तो उन्होंने लोक में 45 वर्ष तक धर्म का उपदेश किया, शिक्षा दी, लोगों को सुधारा, अशांतों को शांति दी और डूबतों को पार लगाया, सब प्राणियों का हित संपादन कर महापरिनिर्वाण प्राप्त किया, परिनिर्वाण को 1467 वर्ष हुए। जगज्योति महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुई। सब प्राणी शोकग्रस्त हुए। देखो अब से 10 दिन बाद भगवान बुद्ध का दांत निकलेगा, अभयगिरि विहार में जाएगा, जनपद के सब भिक्खु और गृहस्थ लोग, धर्मसंचय के अभिलाषी मार्ग साफ-सुथरा रखो, गली-अंतरे सजाओ, ढेर-सा पुष्प और धूप पूजा के लिए संग्रह करो।

यह घोषणा हो जाने पर राजा के नियोग से मार्ग के दोनों ओर बोधिसत्व के 500 शिष्यों के रूप बनते हैं, जो समय पर उन्होंने धारण किए थे, कहीं सुदान बनते हैं, कहीं साम बनते हैं, कहीं गजराज बनते हैं, कहीं मृग-अश्व[1] बनते हैं। सभी छायाचित्रों के रंग चमकीले, बनावट भव्य होती है, देखने में वे जीवित समान जान पड़ते हैं। फिर भगवान बुद्ध का दांत निकलता है, सड़क के बीच से होकर गुजरता है, सब ओर से पूजा चढ़ती है, अभयगिरि विहार में पहुंचता है। भगवान बुद्ध के मंडप में भिक्खु और गृहस्थ लोग एकत्र रहते हैं। वे धूप जलाते, दीप प्रज्वलित करते और विविध प्रकार से उपचार करते हैं जो दिन-रात बंद नहीं होता। 90 दिन पूरे होने पर नगर के भीतर के विहार में उपोसथ दिवस आने पर पट खुलता है और यथाविधि आदर-सत्कार होता है।[2] 'अभयगिरि' विहार से 40 ली पर एक पर्वत है।

1. *(जातक कथाओं के अनुसार) भगवान बुद्ध ने छह बार हस्ती का, दस बार मृग का, और चार बार घोड़े का जन्म धारण किया था।*
2. *अब भगवान बुद्ध का दंतधातु 'मलिगाव' नामक विहार में है। वहां एक विहार के भीतर यह स्थित है। विहार एक नद के किनारे है, जिस के द्वार पर यह श्लोक लिखा है—*

सर्वज्ञ वक्र सरसीरुहराजहं सं
कुन्देन्दु सुन्दर रुचिं सुरद्रन्द वंद्यम्।
सहर्मचक्रमहजं जनपारिजातं
श्रीदंतधातुममलं प्रणमामि भक्तया।

धातु विहार में एक घंटाकार स्वर्ण संपुट में सिंहासन पर रखा है। संपुट के भी छह और संपुट हैं और बीच के संपुट में धातु है।

पर्वत में एक विहार है, जिसका नाम 'चैत्य' है। उसमें लगभग 2,000 भिक्खु होंगे। भिक्खुओं में एक बड़ा धार्मिक श्रमण है, नाम 'धर्मगुप्त'। इस जनपद के लोग उसे बड़े आदर से देखते हैं। एक पत्थर की गुफा में यह चालीस वर्ष से रहता है। वह इतनी दया दिखाता है कि सांप और चूहे एक साथ उस एक ही गुफा में रहते और परस्पर कुछ हानि नहीं पहुंचाते हैं।

39

एक अर्हत का दाह-संस्कार

नगर में दक्षिण 7 ली पर एक विहार है—नाम महाविहार। उसमें औसतन 300 भिक्खु बसते हैं, वहां एक बड़ा धर्मनिष्ठ श्रमण रहता था, जो पवित्र और विशुद्धचारी था। जनपद के लोग उसे अर्हत समझते थे। जब उसका अंत काल निकट आया तो राजा जांचने आया। उसने यथाधर्म सभी भिक्खुओं से पूछा कि क्या भिक्खु पूर्णतया मार्ग जान चुका है? उन्होंने नियोग मानकर जवाब दिया—हां, अर्हत पद प्राप्त हैं। अंतावसान पर राजा ने सूत्र विनयानुमोदित अर्हत के लिए, विधि अनुसार (समाधि करवाकर) विहार से पूर्व में चार-पांच ली पर सुंदर और विशाल चिता बनवाई। 30 हाथ की लंबी-चौड़ी और उतनी ही ऊंची। ऊपर से चंदन मुसव्वर और सब सुगंध काष्ठ चुनवाए, चारों ओर से चढ़ने के लिए आरोह बनवाया। फिर सुंदर श्वेत रेशम की भांति ऊर्ण (ऊन) वस्त्र में ऊपर से बार-बार लपेटा, फिर एक बड़ा रथ बना, जैसे हमारी शव ले जाने की गाड़ी[1] पर नाग और मछली नहीं थीं।

दाह के समय राजा और जनपद की प्रजा सब चारों ओर से झुंड की झुंड आकर एकत्रित हुई और फूल तथा धूप चढ़ाती, रथी के साथ-साथ समाधि स्थान[2] की ओर चली। वहां राजा ने फूल और गंध से पूजा की। पूजा हो चुकी तो अरथी उठाकर चिता पर रखी गई। तुलसी का तेल ऊपर चारों ओर डाला गया और अग्नि दी गई। आग जलने लगी, फिर प्रत्येक

1. चीन देश में शव को गाड़ी पर लादकर समाधि स्थान पर ले जाते हैं—उस गाड़ी पर नाग और मछली आदि के चित्र बने रहते हैं।
2. चीन देश में शव को समाधि देते हैं। इसीलिए चैत्यस्थान की जगह मूल में समाधि स्थान, समाधि आदि चिह्न हैं।

[illegible] ने आंतरिक भक्ति से ऊपर के कपड़े उतार डाले और सब पर के बड़े और छाते ज्वाला पर दूर से हिला-हिला दग्ध होने तक अग्नि को प्रज्वलित करते रहे। दाह हो चुका। अस्थिचयन हुआ और अस्थिसंचय कर स्तूप बनाने लगे। फाह्यान उनके जीवनकाल में पहुंच न सका, वह केवल उनकी समाधि ही देख पाया।

राजा बौद्ध-धम्म का दृढ़ विश्वासी था। उसने भिक्खुसंघ के लिए विहार बनवाना चाहा। पहले उसने महासंघ को आमंत्रित किया, भात खिलाया और उन्हें पूजा करके सुंदर बैलों की एक जोड़ी ली, उनके सींग चांदी से मढ़े जो बहुमूल्य रत्नों से जड़े हुए थे, फिर सुंदर सोने का हल बनवाया। राजा ने भूमि पर चारों ओर से जोता—फिर संघ को वहां की बस्ती, खेत, घर, ताम्रपत्र लिखकर दान दिया कि आगे कोई उसे विफल और परिवर्तन न कर सके।

फाह्यान ने इस जनपद में एक 'भारत से आए' को ऊंचे आसन पर बैठकर सूत्र की व्याख्या करते सुना कि "भगवान बुद्ध का भिक्खापात्र पहले वैशाली में था, अब गांधार में है, इतनी शताब्दी पीछे पश्चिम तुषार जनपद में जाएगा,[1] इतने सौ वर्ष में खोतन जाएगा, इतने सौ वर्ष पर खरश्वर[2] जाएगा, इतने सौ वर्ष पर हान की भूमि में जाकर पहुंचेगा, इतने सौ वर्ष पर सिंहल जनपद में जाएगा, इतने सौ वर्ष बाद मध्य भारत में लौटेगा। फिर वह तुषित लोक (स्वर्ग) पर आरोहण करेगा। बोधिसत्व मैत्रेय दर्शन कर कहेंगे—"अहा, शाक्यमुनि बुद्ध का भिक्खापात्र आ गया।" 7 दिन तक सभी देवताओं सहित फूल और गंध से पूजा करेंगे, सात दिन पश्चात वह जंबुद्वीप को लौटेगा, सिंधुनागराज उसे लेकर नागलोक में प्रवेश करेगा। मैत्रेय के बोधि-प्राप्त-काल में यह फिर चार[3] भाग (अलग) होकर 'अन्न' पर्वत पर जहां से आया था, लौटेगा। मैत्रेय जब बोधि प्राप्त होंगे तो चारों देवराज फिर मन में बुद्ध की चिंता (चिंतन) करेंगे। यही पहले के बुद्धों का नियम है। भद्र कल्प के सहस्र बुद्धों का यही एक भिक्खापात्र है। भिक्खापात्र जाते ही बुद्ध-धम्म भी क्रमशः लोप हो जाएगा। बुद्ध-धम्म के

1. फाह्यान ने व्याख्या में ठीक संख्या सुनी थी, पर भूल गया—चीनी टिप्पणीकार व लेखक।
2. शियनयान पर्वतमाला के मूल में वोष्टन हद के उत्तर में है।
3. भगवान बुद्ध का भिक्खापात्र चार भिक्खापात्रों को परस्पर दबाकर बनता है।

लोप होने पर मनुष्यों की आयु क्षीण हो जाएगी, अंत में 5 वर्ष की होगी। 5 वर्ष की होने पर चावल, घी, तेल सब लय हो जाएगी, निवासी परम दस्यु होंगे, वनस्पति वृक्ष जिसे छुएंगे तलवार लाठी हो जाएंगे, परस्पर मारकाट मचवाएंगे, उनमें धर्मवाले सहवास छोड़ पर्वत में जाएंगे, दस्यु जब परस्पर नाशवान हो जाएंगे जब लौटेंगे, आकर परस्पर कहेंगे, पूर्व के लोग परमायु होते थे, दस्युकर्म करने और परम अधर्मी बन जाने से हमारी आयु क्षीण हो गई है, घटते-घटते 5 वर्ष की रह गई है। हम सभी मिलकर सत्कर्म करें, करुणा और दया का भाव मन में उत्पन्न करें, शुभ कर्मों का प्रयत्नपूर्वक अनुष्ठान करें। जब वे इस प्रकार सत्कर्म का आचरण करने लगेंगे, आयु द्विगुण बढ़ती जाएगी और अंततः 80,000 वर्ष की हो जाएगी। मैत्रेय जब लोक में आएंगे और धर्मचक्र प्रवर्तन करने लगेंगे, जो सब से प्रथम वे शाक्य के शेष धर्मानुयाइयों में से उन्हें अपना शिष्य करेंगे तो प्रव्रज्या लेकर त्रिरत्न,[1] पंचोपादान पांच उपादान ये हैं–1. रूप, 2. वेदना, 3. सज्ञा, 4. संस्कार और 5. विज्ञान अष्टांग धर्म[2] और ग्रहण कर त्रिरत्न की पूजा करेंगे, फिर द्वितीय और तृतीय चार में पूर्व के सुकर्मियों को दीक्षा देंगे।

फाह्यान ने इसे सूत्र समझकर लिखना चाहा पर उस व्यक्ति ने कहा कि सूत्र नहीं है, मैं अपने मन से व्याख्यान करता हूं।

40

यात्रा का अंत

फाह्यान इस जनपद में दो वर्ष रहा और उसे 'महीशासक' विनयपिटक के दीघनिकाय, संयुक्तनिकाय और 'संयुक्त संचय पिटक' की प्रति मिली। सब हान देश में अज्ञात थे। इन संस्कृत प्रतियों को पाकर वह एक व्यापारी के बड़े पोत पर चढ़ा। उसमें 200 से ज्यादा व्यक्तियों के पीछे एक छोटी नौका समुद्रयात्रा की क्षति से रक्षार्थ बड़े पोत से बंधी हुई थी। सानुकूल वायु थी। पूर्व दिशा में जाकर 3 दिन पर प्रचंड तूफान का सामना करना पड़ा, पोत में छेद हो गया, पानी भरने लगा, व्यापारी छोटी नाव में जाना

1. बुद्ध, 2. धम्म, 3. संघ
2. सम्यककर्मांत, सम्यकदृष्टि, सम्यकसंकल्प, सम्यकवाचा, सम्यकाजीव, सम्यकव्यायाम, सम्यकस्मृति और सम्यकसमाधि

चाहते थे, छोटी नाव के लोगों ने बहुत से लोगों के चढ़ने के डर से रस्सी काट दी, व्यापारी बड़े भयभीत, जान का जोखम जान पड़ा, वे घबराए कि पोत में पानी न भर जाए, भारी-भारी बोझ 'असबाब' पानी में फेंकने लगे। फाह्यान ने भी जलपात्र[1] कुंडका और चीजों को समुद्र में फेंक दिया, वह डर गया कि व्यापारी कहीं सूत्रों और चित्रों को न फेंक दें। उसने मन में अवलोकितेश्वर का ध्यान किया, हान देश के भिक्खुसंघ को प्राण अर्पण किए, उसने कहा मैंने धर्म को ढूंढ़ने के लिए दूर देश की यात्रा की है, मुझे अपना तेज और प्रताप देकर लौटाकर अपने स्थान पर पहुंचाओ।

इस प्रकार तूफान रात-दिन 13 दिन तक रहा। एक द्वीप के किनारे लगे, बेड़ा थमने के पीछे पानी भरने के छेद का स्थान देखा गया, वह भरा गया, फिर आगे बढ़े, समुद्र के मध्य अनेक डाकू रहते हैं, उनसे मिलने पर बचकर नहीं जा सकते, यह समुद्र विस्तृत है, ओर-छोर नहीं, पूर्व-पश्चिम का ज्ञान नहीं, केवल सूर्य-चंद्रमा और तारों के देखने से ठीक मार्ग पर चलते हैं, आंधी-पानी में वायु द्वारा ले जाने पर जाते हैं निश्चित मार्ग नहीं, रात की अंधियारी में केवल ऊंची लहरें परस्पर थपेड़े खाती दिखाई पड़ती हैं, अग्निवर्ण ज्वाला निकली है, साथ ही साथ पानी पर बड़े-बड़े कछुए और अन्य निवासी जंतु निकलते व दिखाई पड़ते हैं। व्यापारी लोग भयभीत थे, जानते नहीं कि किधर जा रहे हैं, समुद्र गंभीर, कोई थाह नहीं। लंगर डालने और ठहरने का ठौर नहीं। आकाश खुल गया तो पूर्व-पश्चिम सूझने लगा, फिर लौटे, ठीक राह पर चले, कहीं गुप्त चट्टान पड़ी तो बचने का उपाय नहीं।

इस प्रकार 90 दिन से अधिक बीते, एक जनपद में पहुंचे, नाम जावा। इस जनपद में भारतीय धर्म के विभिन्न संप्रदायों का प्रचार था, बौद्ध-धम्म की कहीं खास चर्चा नहीं थी। इस जनपद में 5 महीने ठहरे, फिर व्यापारियों के एक वृहत पोत पर चढ़े–200 और यात्री भी थे, 50 दिन की सामग्री ले चौथे मास के 16वें दिन चले।

फाह्यान ने इस पोत पर ही वर्षा (वर्षावास) व्यतीत की। पूर्वोत्तर 'क्वांग चाव' (चीन का एक बंदरगाह) जा रहे थे। महीना, दिन बीतने पर रात्रि के दो पहर बीतते-बीतते काली आंधी आई, पानी बरसने लगा, व्यापारी यात्री

1. भिक्खुओं के लिए दो जलपात्रों का विधान है, कुंडी और कलसी का लोटा और गलास व गगरा, लोटा।

व्याकुल हो उठे, फाह्यान ने भी अवलोकितेश्वर और हान देश के श्रमण संघ का ध्यान करना शुरू किया और उनके प्रबल प्रताप से सवेरा हुआ। सवेरा होते ही ब्राह्मण विचार कर कहने लगे कि इस श्रमण के साथ ही हम लोगों पर यह विपत्ति आई और यह महासंकट पड़ा है, इस भिक्खु को उतारो, समुद्र के किसी द्वीप के किनारे छोड़ दो, एक मनुष्य के लिए हम सभी क्यों विपत्ति भोगें। फाह्यान के साथी एक सहृदय जन ने कहा–इस भिक्खु को उतारते हो, नहीं तो मुझे भी उतार दो, नहीं तो मुझे मार डालो, अन्यथा इस भिक्खु ही को उतारा तो हान देश में पहुंचूंगा, तो राजा के पास सब करनी कहूंगा। हान देश का राजा भी दृढ़ बौद्ध धर्मानुयायी है, भिक्खुसंघ का बहुत सम्मान करता है। यह सुन सब व्यापारी घबरा गए, उतारने का किसी का साहस न पड़ा।

उस समय आकाश में नितांत अंधकार छाया था, समुद्र के शिक्षक (नाखुदा) परस्पर ताकते, वे भ्रमित थे, 70 दिन से अधिक मार्ग में कष्ट सहन करते बीत चुके थे, दाना-पानी चुक गया, समुद्र के खारे पानी में भोजन पकाने लगे, अच्छा पानी बांट लिया, दो (दो) पाइंट प्रति मनुष्य मिला, झट वह भी चुक गया, व्यापारी लोग सोच-विचार कर बोले–चाल की गति के विचार से 50 दिन में 'कांगचाव' पहुंचना चाहिए, बहुत दिन बीत गए, राह तो नहीं भूले। पश्चिमोत्तर किनारे की जोह में चले, रात-दिन चलकर 12 दिन में 'चांगगांग'[1] प्रदेश की सीमा पर लाव पर्वत के दक्षिण तट पर पहुंचे, यहां पहुंचकर अच्छा पानी और शाक मिले, अनेक मुसीबतें झेलीं, बहुत दिन चिंताग्रस्त रहे, अचानक इस किनारे पर पहुंचे, लेह ओ कोःशाकों को देखा, इससे जान गए कि यह हान देश ही है–फिर न रहने वाले मनुष्य दिखाई पड़े और न कुछ चिह्न (जाने-आने का), जान नहीं पड़ता था कि कहां हैं, कोई कहता अभी 'कांगचाव' नहीं आए, कोई कहता छोड़ आए, कुछ निश्चित जान नहीं पड़ता था। निदान, एक छोटी नाव में बैठ एक खाड़ी में घुसे कि कोई आदमी दिखाई पड़े तो इस स्थान की पूछताछ करें, दो व्याधे मिले, साथ लेकर आए, फाह्यान को पूछने के लिए, बुलाया, फाह्यान ने पहले ढ़ाढस दिया, फिर पूछा तुम कौन लोग हो। उन्होंने जवाब

1. *नाव लाव पर्वत के किनारे "शानतुंग" में लगी थी। यह स्थान 'कयावं चाव' के उत्तर में है। अब यह लियाव चाव प्रदेश के 'फिंगहने' में सम्मिलित है।*

दिया कि हम भगवान बुद्ध के शिष्य हैं। फिर पूछा पर्वत में क्या खोजने आए थे। वे बात बनाने लगे कि कल सातवें मास की 15वीं तिथि है भगवान बुद्ध को चढ़ाने के लिए सफतालू की आवश्यकता थी। फिर पूछा यह कौन-सा जनपद है उन्होंने जवाब दिया सिंगचाव के अंतर्गत चांगकांग प्रदेश की सीमा है, जो सीन वंश के अधिकार में है। यह सुनते ही व्यापारी लोग प्रसन्न हो गए। उन्होंने झट रुपया और माल (अपने नौकरों से) मांगा और चांगकांग के प्रदेशाधिप के पास भेजा।

शासक लेए पक्का बौद्धधर्मावलंबी था। उसने जब सुना कि एक श्रमण सूत्रों और चित्रों को लेकर नाव पर समुद्र पार करके आया है, तो रक्षकजनों को साथ ले वह बंदरगाह पर आया। वह 'फाह्यान' से मिला और सूत्रों और चित्रों को ले (अपने) शासन स्थान पर आया। व्यापारी लोग वहां से यांगचाव की ओर लौट गए। सिंगचाव पहुंचकर 'फाह्यान' को एक जाड़ा और एक गर्मी भर के लिए रोका गया, वर्षा बिताकर 'फाह्यान' ने सब आचार्यों के वियाग में आतुर हो चांगगान जाना चाहा, पर वह विचार कर कि काम आवश्यक है वह दक्षिण के प्रांत[1] की ओर उतरा और उसने आचार्यों से मिल सूत्रों और विनय पिटक को दिखाया।

'फाह्यान' 'चांगगान' से चला, 6 वर्षों में मध्य देश में पहुंचा, 6 वर्ष वहां फिरा, लौटकर 3 वर्ष में 'सिंगचाव' पहुंचा, 30 से कुछ ही जनपदों में भ्रमण (घूमना) किया था, मरुभूमि से पश्चिम भारत तक, भिक्खुसंघ का सदाचार और धर्म के प्रभाव से प्रकृति का विपर्यय, वर्णन में नहीं आ सकता था। उसने यह विचारा कि आचार्य गण ने (उनका) पूर्ण विवरण नहीं सुना होगा। वह अपने तुच्छ जीवन की परवाह न कर समुद्र से लौटा, दोहरा दुख और कष्ट सहन किया। संयोग से तीनों उपास्यों के प्रताप से बाधाओं से बचकर आ गया। अतः यात्रा का विवरण लिख दिया कि पढ़ने वाले जानें कि उसने क्या-क्या सुना और देखा।

1. *"नानकिंग" नगर में जो दक्षिण प्रांत का शासन स्थान था।*

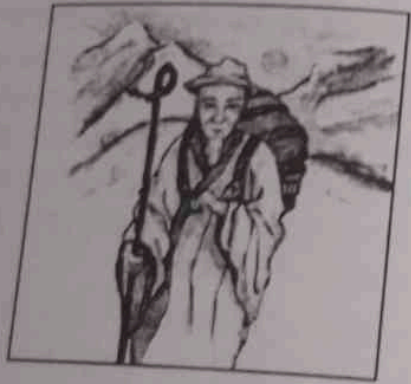

उपसंहार

सिन वंश के ये-हे के काल के 12वें वर्ष में वर्षाधिप कन्या से तुला में संक्रामित हुए। ग्रीष्मकाल में वर्षावास बीतने पर फाह्यान से मुलाकात हुई। आए तो हिमकक्ष में ठहराया। जब-जब बात हुई यात्रा विषयक प्रश्न करता रहा। वह नम्र और सुशील था, झट सत्य-सत्य कहता था। पहले संक्षेप में कहा फिर जब विवृत्ति पूछी तो सांगोपांग (आरंभ से अंत तक) कह गया। कहने लगे जब मैं कष्टों की ओर देखता हूं तो मेरा हृदय नहीं थमता, पसीना (रोमांच) आ जाता है। विपत्तियों का सामना किया, भयावह स्थानों पर गमन किया–कुछ उद्देश्य मेरा था–सिवाय सरलता और दृढ़ता से उसे पूरा करने के और दूसरा ध्यान नहीं था, मौत के स्थान में निडर गया कि जिसमें मनोरथ दस हजार (अंशों) में एक अंश भी सिद्ध हो। उन बातों का मुझ पर गहरा प्रभाव हुआ। मैंने तो जान लिया कि ऐसे मनुष्य पूर्व से आज तक हम हुए। जब से इस बड़े धर्म का पूर्व के देश में प्रचार हुआ (वहां) कोई भी निरपेक्ष और धर्म का जिज्ञासु आचार्य ('हियान' शब्द देखकर लेगी महोदय ने 'फाह्यान' लिखा है), पर हियान आचार्य को कहते हैं। सा नहीं हुआ। अतः मैं तो जान गया कि सत्य के प्रभाव को कोई रोक नहीं सकता, चाहे जितना बड़ा समुद्र हो, वह पार ही कर जाता है। मानसिक बल, जो काम चाहे, पूर्ण करने में चूकता नहीं। ऐसे कार्यों का संपादन, आवश्यक को भूलने और भूले को स्मरण करने से होता है।

॥ भवतु सब्बमंगलं ॥

परिशिष्ट

बोधिनी

अंगुलिमाल–यह श्रावस्ती के महाराजा प्रसेनजित (पसेनदि) के पुरोहित का पुत्र था। यह प्रचंड तांत्रिक और क्रूर था। यह किसी तांत्रिक प्रयोग के लिए तर्जनी (अंगुली) को काटकर माला बनाकर पहने रहता था। इसी कारण लोग इसे अंगुलिमाल कहते थे। श्रावस्ती में भगवान बुद्ध भिक्खा के लिए जाते थे। अंगुलिमाल ने उन्हें पुकारा और कहा, 'भिक्खु ठहर जा'। भगवान बुद्ध ने कहा 'मैं तो ठहरा हुआ हूं' और यह कहते हुए आगे बढ़ते गए। अंगुलिमाल ने कहा, भिक्खु आप तो चले जा रहे हैं और मिथ्या कहते हैं कि 'मैं ठहरा हुआ हूं'। भगवान बुद्ध ने कहा–हे बालक! मैं सत्य कहता हूं, संसार में मैं ही एक स्थिर (ठहरा हुआ) हूं और सब चल रहे हैं। यह अध्यात्मपूर्ण वाक्य सुन अंगुलिमाल को ज्ञान हो गया। वह उस ज्ञान से अर्हत पद प्राप्त हुआ।

अम्बपाली (आम्रमाली)–यह एक गणिका थी। इसे आम्रपाली और आम्रदारिका भी कहते थे। इसका जन्म आम के वृक्ष के नीचे हुआ था और दरिद्रतावश यह आम खाकर पली थी, इसीलिए इसका नाम अम्बपाली पड़ गया था। यह परम रूपवती और कला-कौशल प्रवीण थी। महाराज बिम्बिसार से इसको अधिक प्रेम था। वह बहुत दिनों तक राजगृह में रही थी और महाराज बिम्बिसार के संयोग से इसे एक पुत्र भी हुआ था, जिसका नाम विमल कौण्डिञ्य था। अम्बपाली कभी वैशाली में और कभी राजगृह में रहती थी। दोनों राजधानियों में उसके भव्य भवन और सुंदर बाग-बगीचे बने हुए थे। जब भगवान बुद्ध वैशाली गए तो उसने उन्हें संघ समेत अपने घर पर आमंत्रित कर भिक्खा प्रदान की और अपने अति मूल्यवान अम्बवन को यथाविधि भिक्खुसंघ के रहने के लिए दान दे दिया। भगवान बुद्ध के उपदेश

से अम्बपाली भिक्खुनी हो गई और फिर सतत ध्यान साधना करते हुए ज्ञान लाभकर अर्हत् पद को प्राप्त कर गई थी।

अजातशत्रु (पालि=अजातसत्तु)–राजगृह के महाराज बिम्बिसार का पुत्र। वह बचपन से ही अपने पिता बिम्बिसार के काबू से बाहर था। युवराज पद पर आसीन हो देवदत्त के कुचक्र में पड़ यह उसका परम भक्त और भगवान बुद्ध का विरोधी हो गया था। भगवान बुद्ध पर एक बार जब वे राजगृह में भिक्खा करने जाते थे अजातशत्रु ने देवदत्त के कहने से नालागिरी नामक एक मद हाथी को छुड़वा दिया था। पर हाथी उनके सामने पहुंचकर घुटने टेक कर बैठ गया। उसने भगवान बुद्ध के मारने के लिए धनुर्धरों को भी भेजा था पर वे भी स्तब्ध रह गए थे और उन्हें मार न सके थे। अजातशत्रु अपने पिता को बंदीगृह में डाल स्वयं उनके राज सिंहासन पर बैठ गया था। महाराज बिम्बिसार ने कारागृह में बड़े कष्ट से अपने प्राण दिए। एक दिन अजातशत्रु अपने पुत्र के जन्म का हाल अमात्यों से पूछकर लौट रहा था। तभी अजातशत्रु को उसके अमात्यों ने पुत्र-जन्म का लेख दिया। लेख पढ़कर वह खुशी के मारे झूम उठा। अब वह स्वयं पिता हो गया था। उसने स्वयं अनुभव किया कि पुत्र-स्नेह क्या होता है? उसने सोचा, 'मेरे जन्म लेने पर पिता को भी इसी प्रकार का स्नेह मेरे प्रति उमड़ा होगा, जैसे पुत्र प्राप्ति पर मुझे हो रहा है। वह चिल्ला उठा–'मेरे पिता को मुक्त करो, पिता को मुक्त करो, बंदीमुक्त करो।' अमात्यों ने पिता की मृत्यु का दूसरा लेख अजातशत्रु के हाथ में थमा दिया। पिता की मृत्यु का समाचार पढ़ते ही वह बेचैन हो गया। माता के पास दौड़ा-दौड़ा गया। 'अम्म! क्या मेरे पिता का मुझ पर स्नेह था। माता ने कहा–'अज्ञ! पुत्र!! यह तू क्या कहता है? बाल्यावस्था में तेरी उंगली में फोड़ा हो गया था, दर्द के कारण तू बहुत रो रहा था। सेवकों ने तुझे बहलाना चाहा, समझाना चाहा, उस समय तुम्हारे पिता विनिश्चय-शाला में बैठे थे। सेवकों ने तुम्हें चुप होता न देखकर तुम्हें लेकर विनिश्चय-शाला में ले गए। स्नेहभूत पिता ने तेरी उंगली अपने मुंह में रख ली। उंगली का फोड़ा फूट

गया। तुम्हारे स्नेह के कारण पीप को वे थूक न सके, पी गए। इस प्रकार तुम्हारे पिता का तुम्हारे ऊपर असीम स्नेह था। अजातशत्रु रोने लगा। उसने पिता की दाह-क्रिया करने का निश्चय किया। वह अपने पूर्वकृत कर्मों पर पश्चाताप कर विलाप करने लगा। अपने पिता के प्रति क्रूर व्यवहार के कारण वह अत्यंत मानसिक दुख से संतप्त रहता था कि भगवान बुद्ध राजगृह में पधारें। अजातशत्रु जीवक के परामर्श से उनके साथ भगवान बुद्ध के पास गया और उनके उपदेश से उसके मन को शांति प्राप्त हुई। राजा अजातशत्रु को वैशाली के लिच्छिवी राजवंश से बड़ी शत्रुता थी। वह उन पर आक्रमण करना चाहता था। इसी कारण उसने गंगा और सोन नदी के संगम पर पाटलिग्राम में अपनी छावनी बनाई थी। वही छावनी बसते-बसते पुष्पपुर और बाद में पाटलिपुत्र (पटना) हो गई। जिस समय पाटलिग्राम के पास उसकी छावनी थी और भगवान बुद्ध वहां गए थे तो पाटलिपुत्र के विषय में उन्होंने भविष्यवाणी की थी। राजा अजातशत्रु ने एक बार भगवान बुद्ध के पास यह पूछने के लिए अपने मंत्री को भेजा था कि लिच्छिवी राजवंश का उच्छेद कब होगा। उस समय भगवान ने कहा था कि जब तक लिच्छिवी के वज्जी सात (अपरिहाणीय धर्मों) का पालन करते रहेंगे। तब उनका कोई बाल बांका भी नहीं कर पाएगा। इन सात बातों में से एक मुख्य बात यह थी कि जब तक उनमें गण (Republic) शासन की प्रथा है उनका नाश न होगा। भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद जब आनंद थेर परिनिर्वाण के लिए वैशाली जा रहा था तो अजातशत्रु उनको लाने के लिए गंगा के किनारे तक गया। इधर से वैशाली के लोग उन्हें लेने चले। आनंद ने देखा कि दोनों राजा, एक आगे से और एक पीछे से, आ रहे हैं। वे मध्य गंगा में ठहर गए और वहीं योगाग्नि से परिनिर्वाण को प्राप्त हो उन्होंने अपने शरीर को भस्म कर दिया। उनके भस्म शरीर के दो भाग कर, दोनों राजा अपने-अपने देश को लौट गए और स्तूप बनवाकर उन्होंने उसे स्थापित कर दिया। अजातशत्रु का देहांत ईसा से 475 वर्ष पूर्व हुआ था।

अनागामी–अर्हत प्राप्ति के लिए चार अवस्थाएं साधनी आवश्यक हैं– 1. सोतापन्न, 2. सकृदागामी, 3. अनागामी, 4. निर्वाण। अनागामी का अर्थ–दोबारा लौटकर मानव योनी में न आना।

अनिरुद्ध–गौतमबुद्ध का चचेरा भाई। यह अमृतोदन का पुत्र था। जब भगवान बुद्ध कपिलवस्तु जाकर, वहां से वापिस लौटने लगे तो आनंद थेर भद्दिय, किम्बिल, भृगु और देवदत्त के साथ नापित उपालि को ले वह प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छा से उनके पास आया था। भगवान बुद्ध ने सबसे पहले उपालि को प्रव्रजित कर अपना शिष्य बनाया फिर अन्य राजकुमारों को प्रव्रज्या दी। अनिरुद्ध अर्हत हो गया था। भगवान बुद्ध के त्रयस्त्रिंश लोक में जाने पर इसी ने उन्हें अपनी सूक्ष्म दृष्टि से वहां देख आनंद थेर को उनके पास भेजा था। अनुरुद्ध थेर को भगवान बुद्ध का हृदय कहा गया है।

अर्हत–वह जो आर्य आष्टांगिक मार्ग के अवलंबन से निर्वाण प्राप्त हो जाता है। ऐसे लोग निर्वाण अवस्था को तो प्राप्त हो जाते हैं, पर बुद्ध नहीं होते।

अशोक–सम्राट अशोक, मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त का पौत्र। यह महाराजा बिंदुसार का पुत्र था। चंद्रगुप्त के शासित वृहत् साम्राज्य का शासक हो उसने कलिंग पर चढ़ाई की। वहां युद्ध में मारकाट और हताहत देख उसका मन भर आया। वह बड़ा दयालु और बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया। राजसिंहासन पर बैठने के पूर्व वह उज्जैन, तक्षशिला आदि का शासक रह चुका था। उसने भिन्न-भिन्न देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए उपदेशक भेजे थे और बौद्ध धर्म का प्रचार खुतन, वाल्हीक, बाख्तर से लेकर बर्मा और लंका देश तक में कराया। भगवान बुद्ध के अस्थि और धातुओं को स्तूपों से निकलवा कर उसने भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न स्थानों में स्तूप बनवाकर वहां उन्हें स्थापित किया। उसके बनवाए 84,000 स्तूप और स्तंभ आदि भारतवर्ष के अनेक स्थानों में पाए जाते हैं। इसके शिलालेख और आदेश वैराट, शहबाजपुर कालपी आदि अनेक स्थानों में मिलते हैं।

असंख्येयकल्प–कल्प का एक विभाग। एक कल्प में चार असंख्येयक कल्प होते हैं। चीन देश के बौद्ध इसे सत्रह शून्य के अंक का और तिब्बत और लंका के बौद्ध इसे 97 शून्य के अंक का मानते हैं। यह एक काल्पनिक अवधारणा है।

असित–एक मुनि का नाम। चीनी यात्री ने इसे 'आउ' लिखा है। यह बड़ा विद्वान था। यह हिमालय पर्वत की तराई में कपिलवस्तु के पास रहता था। गौतम बुद्ध का जन्म सुन यह उन्हें देखने के लिए शुद्धोदन के राजमहल में आया था। बालक के शरीर पर महापुरुषों के 32 लक्षण और 80 अनुव्यंजन देखकर उसने कहा था कि यह बालक या तो चक्रवर्ती सम्राट बनेगा अथवा धर्मचक्र का प्रवर्तक सम्यक सम्बुद्ध (आध्यात्मिक जगत का चक्रवर्ती सम्राट) होगा।

आगम–महायान में बौद्धों के त्रिपिटक की तरह चार आगम हैं–दीर्घागम, मध्यागम, संयुक्तागम और एकोत्तगम।

आनंद थेर–यह भगवान बुद्ध का चचेरा भाई था। यह भगवान बुद्ध के पास अनिरुद्ध, भद्दिय, किम्बिल, आनन्द, भृगु, देवदत्त और उपालि के साथ आया था और श्रावक (शिष्य) हुआ था। यह बड़ा स्मृतिमान और भगवान बुद्ध का परम प्रिय शिष्य और उनका उपस्थाक था। उनके परिनिर्वाण प्राप्त होने पर त्रिपिटक में से सुत्तपिटक का संग्रहकार आनन्द ही हुआ। इसका परिनिर्वाण गंगा के मध्य वैशाली की सीमा पर पाटलिपुत्र से एक योजन उत्तर में हुआ था। इसने अपना शरीर योगाग्नि से भस्म कर डाला और इसके शरीर की भस्म को अजातशत्रु और लिच्छिवी लोगों ने लेकर आधा-आधा बांटकर अपने-अपने देशों में धम्म स्तूप बनवाकर उनमें रखा। आनंद ने ही स्त्रियों को प्रव्रज्या देने के लिए भगवान बुद्ध से प्रार्थना की थी।

आर्य-सत्य–1. दुख, 2. दुख समुदय, 3. दुख निरोध 4. दुख निरोधगामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य यानी आर्य आष्टांगिक मार्ग।

उत्पला (उत्पलवर्णा)–एक भिक्खुनी का नाम। इसे उप्पलवण्णा भी कहते हैं। संकिसा में जब भगवान बुद्ध त्रयंस्त्रिंश लोक से उतरे थे तो यह उनके दर्शन के लिए बड़ी चिंतित थी। भगवान बुद्ध की पवित्र वाणी

में 80 भिक्खु श्रावकों की सूची में 24वां और श्राविकाओं में तीसरा स्थान प्राप्त कोसल-श्रावस्ती श्रेष्ठि कुलोत्पन्न उत्पलवर्णा ऋद्धिमतियों में अग्रणीय हुई।

उपसेन–इनका असली नाम अश्वजित था। यह पंचवर्गीय भिक्खुओं में एक थे। भगवान बुद्ध ने इन भिक्खुओं को ही काशी में सारनाथ के मृगदाव में सबसे पहले धर्मचक्र प्रवर्त्तन सूत्र का उपदेश दिया था। यह बड़ा निरपेक्ष और निराभिमान भिक्खु था। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन इसे राजगृह में भिक्खा मांगते समय मिले थे और इसी के आदेश से भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्होंने प्रव्रज्या ली थी।

उपालि–कपिलवस्तु का एक नापित। यह आनंद कुमार, अनिरुद्ध आदि शाक्य कुमारों के साथ भगवान बुद्ध के पास जब वे कपिलवस्तु से चले थे प्रव्रज्या लेने गए थे। भगवान बुद्ध ने उन्हें सबसे पहले प्रव्रजित करके अपना शिष्य बनाया था। भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण प्राप्त होने पर प्रथम धम्म संगीति में उपालि महाथेर ने विनयपिटक का संगायन (संग्रह) किया था। इसलिए उपालि को 'विनयधर' भी कहा जाता है। उपालि का परिनिर्वाण उदायी भद्द के चौथे राज्य काल वाले वर्ष में हुआ था। उपालि को भगवान के ललाट का तिलक (शोभा) कहा गया है।

एलापत्र–एक नाग का नाम। पूर्व जन्म में यह एक योगी था। एला के वृक्ष के नीचे ध्यान करता था। समाधि छूटने पर वह जब उठा तो उसके सिर से टक्कर खाकर वृक्ष का पत्ता टूट गया। इस पाप से वह नाग योनि को प्राप्त हुआ था। इसने भगवान बुद्ध से (मृगदाव में) वाराणसी में यह पूछा था कि मेरा परिनिर्वाण कब होगा?

ककुच्छंद (ककुसंध)–भगवान तथागत सम्यक सम्बुद्ध से पूर्व भी 27 बुद्ध और हो चुके हैं, पालि भाषा में इन्हें 'पच्चेक बुद्ध' और हिंदी भाषा में 'प्रत्येक बुद्ध' कहते हैं। सिरीलंकाई मूल के ऐतिहासिक ग्रंथ 'महावंस' के अनुसार ककुच्छंद प्रत्येक बुद्ध 22वें क्रम पर आते हैं। ककुच्छंद बुद्ध का जन्म खेम नामक नगर में हुआ था। अग्निदक्ष उनके पिता थे तथा माता का नाम विशाखा था। विधुर और सञ्जीव इनके प्रधान शिष्य थे। बुद्धिज नाम का इनका परिचारक था। सामा तथा चम्पका

इनकी प्रधान शिष्याएं थीं। शिरीष वृक्ष इनका बोधिवृक्ष था। इनका परिनिर्वाण काफी लंबी आयु में हुआ था।

कोणागमन–ये भी एक प्रत्येक बुद्ध हैं जो ककुसंध बुद्ध के बाद और काश्यप बुद्ध से पहले हुए थे। इनके नगर का नाम सोमवती था। यशदत्त इनके पिता थे। माता का नाम उत्तरा था। भीयस और उत्तर नामक उनके दो शिष्य थे। स्वस्जित नाम का उनका एक परिचारक था। तुभद्रा और उत्तरा दो प्रधान शिष्याएं थीं। उदुम्बुर (गूलर) के वृक्ष के नीचे उन्हें बोधि लाभ हुआ था। इनका हृष्ट-पुष्ट शरीर था और काफी लंबी आयु पाई थी।

कनिष्क–कुशानवंशी एक प्रसिद्ध राजा का नाम। यह पहली शताब्दी में तक्षशिला और पंजाब का शासक था। यह बड़ा प्रतापी विद्याप्रेमी था। एक बौद्ध भिक्खु के उपदेश से इसने बौद्ध धर्म ग्रहण किया और धर्म संघ को संगठित कर त्रिपिटक का संस्कृत संस्करण तैयार कराया जो अब महायानी साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है। चरक आदि इसी के काल में हुए थे। इन्होंने अनेक धम्म स्तूप बनवाए और संघाराम विहार आदि के निर्माण कराए।

काश्यप बुद्ध–ये भी एक प्रत्येक बुद्ध हैं। इनका जन्म बनारस (वाराणसी) नामक नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम ब्रह्मदत्त और माता का नाम धनवती था। तिस्स और भारद्वाज इनके प्रधान शिष्य थे। सर्वमित्र नाम का इनका परिचारक था। अतुला तथा उरुवेला नाम की इनकी दो शिष्याएं थीं। न्यग्रोधवृक्ष इनका बोधिवृक्ष हुआ। ये भी बहुत लंबी आयु तक जीवित रहे। काश्यप बंधु नाम से 3 प्रसिद्ध अग्निहोत्र परिव्राजक थे। इनके नाम थे उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप और गया काश्यप। इनकी आध्यात्मिक जगत में बहुत मान्यता थी। इन तीनों के क्रमशः 500, 300 और 200 शिष्य थे। सारनाथ के मृगदाव में धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त का उपदेश करने के बाद बुद्ध के संपर्क में ये तीनों काश्यप बंधु आए। तीनों ने बुद्ध का शिष्यत्व स्वीकारा था।

कौण्डिन्य–पंचवर्गीय भिक्खुओं में सबसे बड़े और वयोवृद्ध परिव्राजक। भगवान बुद्ध ने सारनाथ (मिगदाव) में जिन पंचवर्गीय भिक्खुओं को

प्रव्रजित किया था, उनमें से कौण्डिन्य ने सबसे पहले अर्हत पद प्राप्त किया था। इसलिए ये भगवान के प्रथम प्रव्रजित शिष्य माने जाते हैं। इन्हें प्रव्रज्या ग्रहण करने का अवसर भगवान ने मृगदाव में सबसे प्रथम धर्मोपदेश धर्मचक्र प्रवर्तन करते समय दिया था।

गौतम–शाक्य सिंह, नरसिंह, पुरुषोत्तम आदित्यबन्धु की भांति ही भगवान बुद्ध का एक नाम गौतम भी है।

चक्रवर्ती–सारे राज्यों को विजित करनेवाला राजा, जिन्हें राजाओं का राजा या विश्व का शासक (राजा) भी कह सकते हैं। अंगुत्तर निकाय में चक्कवत्ती सुत्त में इसकी विस्तृत व्याख्या की गई है।

चिंचा–चिंचा का अर्थ पालि भाषा में इमली होता है। मिथ्या तीर्थंकरों के कहने से भगवान बुद्ध पर इसने यह आक्षेप लगाया था कि उन्होंने उससे व्यभिचार किया था और उनसे उसे गर्भ ठहर गया था। वह अपने पेट पर लकड़ी की कठौती व वस्त्र लपेट कर गई थी। कहते हैं कि भगवान के साथ वार्तालाप करने के दौरान उसका पेट ढ़ीला पड़ गया तो पेट पर बंधी लकड़ी की कठौती उसके पैर पर गिर पड़ी। उसके पैर का अंगूठा लहू-लुहान हो गया। असत्य दोषारोपण का भेद खुल जाने के कारण वह अपनी जान बचाकर भागी और गहरी खाई में गिरकर मर गई।

छंदक–सिद्धार्थ का सारथी। इन्हें बौद्ध साहित्य में छन्न भी कहा गया है। यह कुमार सिद्धार्थ का रथ वाहक घोड़े पर उन्हें सवारी कराने वाला सेवक था। महाभिनिष्क्रिमण (लोककल्याणार्थ गृहत्याग) करते समय कुमार सिद्धार्थ ने छंदक की सेवा ली थी। छंदक अपने घोड़े कंथक की पीठ पर कुमार सिद्धार्थ को सवार करके कपिलवस्तु की सीमा से बाहर लाया था। भगवान बुद्ध ने अपने अंतिम उपदेश 'महापरिनिर्वाण सुत्त' में छंदक को ब्रह्मदण्ड (बहिष्कार) का दण्ड देने को कहा था।

जंबुद्वीप–भारतवर्ष का प्राचीन नाम। बौद्धों का कथन है कि इस द्वीप का आकार जंबु के पत्ते-सा है और इसके दक्षिण में मेरु है। एक मत के अनुसार इस देश में जामुन के पेड़ों की अधिकता थी। इसलिए इस भूमि का नाम जंबुद्वीप पड़ गया। एक अन्य मत यह भी है कि यहां

के निवासियों का रंग जामुन की तरह (गहरा) होता था, इस कारण इसे जंबुद्वीप कह दिया गया। जम्मू-कश्मीर का जम्मू क्षेत्र इसी बात का प्रमाण है।

जीवक–राजगृह के महाराज बिम्बिसार का एक पुत्र सालवती गणिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। अपने पराक्रम से यह बड़ा वैद्य बन गया था और इसने तक्षशिला के विश्वविद्यालय में शिक्षा का लाभ प्राप्त किया। यह भगवान बुद्ध का बड़ा भक्त और अजातशत्रु के दरबार में बड़ा प्रतिष्ठालब्ध राजवैद्य था। इसने राजगृह में अपना कीमती जीवकम्बवन नामक उद्यान में एक विहार बनवाकर भगवान बुद्ध को अर्पण किया था। इसने एक चिकित्सालय भी स्थापित की थी, जहां वह भिक्खुओं की धर्मार्थ चिकित्सा किया करता था।

तथागत–बुद्ध का एक नाम। जो व्यक्ति जैसा कहे वैसा ही करे और जो करे वैसा ही बताए यानी जो व्यक्ति यथाभाषी तथाकारी और यथाकारी तथाभाषी होता है–उसे तथागत कहते हैं।

तुषित–महायानी संकल्पना के अनुसार एक स्वर्ग का नाम। इसमें मैत्रेय बोधिसत्व रहते हैं।

त्रयस्त्रिंश लोक–मेरु के चार प्रधान शृंगों के मध्य बसे हुए तैंतीस नगर। बौद्ध धर्मावलम्बी मानते हैं कि तैंतीस नगरों के तैंतीस देवताओं का लोक तुषित लोक है, इसी को त्रयस्त्रिंश (तैंतीस) लोक भी कहते हैं। बौद्ध धर्मियों का कथन है कि मेरु के चार शृंगों पर चातुर्महाराजक की पुरी और चारों शृंगों के बीच आठ-आठ पुरी हैं और मध्य में हैं। इन नगरों के गृह और प्राचीरादि स्वर्णरचित हैं।

त्रिपिटक–भगवान बुद्ध के सारे उपदेशों के संग्रह को त्रिपिटक नाम दिया गया है। त्रिपिटक का अर्थ हुआ–बुद्ध उपदेशों के तीन पिटारे या गठरियां। ये तीन पिटारे हैं–1. सुत्तपिटक, 2. विनयपिटक और 3. अभिधम्मपिटक। सम्राट अशोक के पुत्र कुमार महेंद्र जब भिक्खु के रूप में धर्म प्रचारार्थ लंका द्वीप गए तो उन्होंने वहां इसी त्रिपिटक का उपेदश दिया था। लंका के विख्यात राजा वट्टगामणी के संरक्षण में त्रिपिटक को लिपिबद्ध किया गया था। इससे पहले तिपिटक

तिपिटक

विनयपिटक

1. महावग्ग
2. चुल्लवग्ग
3. पाचित्तिय
4. पाराजिक
5. परिवार

सुत्तपिटक

1. दीघनिकाय
2. मज्झिमनिकाय
2. संयुत्तनिकाय
4. अंगुत्तरनिकाय
5. खुद्दकनिकाय

खुद्दकनिकाय

1. खुद्दकपाठ
2. धम्मपद
3. उदान
4. इतिवुत्तक
5. सुत्तनिपात
6. विमानवत्थु
7. पेतवत्थु
8. थेरगाथा
9. थेरीगाथा
10. जातक
11. निद्देस
12. पटिसम्भिदामग्ग
13. अपदान
14. बुद्धदंस
15. चरियापिटक

अभिधम्मपिटक

1. धम्मसंगणि
2. विभंग
3. धातुकथा
4. पुग्गलपञ्ञत्ति
5. कथावत्थु
6. यमक
7. पट्ठान

विद्वानों को कण्ठस्थ अथवा कण्ठाग्र रूप में याद रखना पड़ता था। संपूर्ण तिपिटक साहित्य का परिचय प्राप्त करने के लिए निम्न तालिका देखें–

सकृदागामी–पुद्गल चार होते हैं–1. सोतापन्न, 2. सकृदागामी, 3. अनागामी और 4. अर्हत। सकृदागामी केवल एक बार ही प्रतिसंधि लेने वाले होते हैं। वे 6 प्रकार के होते हैं, यथा–

1. मनुष्य भूमि में सकृदागामी होकर इसी भव में अनागामी एवं अर्हत् होकर परिनिर्वाणगामी होता है।
2. मनुष्य भूमि में सकृदागामी होकर द्वितीयभव के देवभूमि में प्रतिसंधि लेकर परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला होता है।
3. उस देवभूमि में सकृदागामी होकर उसी देवभूमि के परिनिर्वाण को प्राप्त करने वाला होता है।
4. उस देवभूमि में सकृदागामी होकर द्वितीयभव के मनुष्यभूमि में प्रतिसंधि लेकर परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला होता है।
5. मनुष्य भूमि में सकृदागामी होकर द्वितीयभव के देवभूमि में प्रतिसंधि लेकर, तृतीयभव में पुनः इस मनुष्य भूमि में प्रतिसंधि लेकर परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला होता है एवं
6. देवभूमि में सकृदागामी होकर, द्वितीयभव के इस मनुष्य भूमि में प्रतिसंधि लेकर, तृतीयभव में पुनः देवभूमि में प्रतिसंधि लेकर परिनिर्वाण प्राप्त करने वाला होता है।

इस प्रकार सकृदागामी पुद्गल षड्विध होते हैं। शेष पुद्गल राग, द्वेष एवं मोह को दुर्बल करने के कारण सदृशोपचार से **सकृदागामी पुद्गल** कहे जाते हैं।

सकृदागामी पुद्गल एक बार ही इस लोक में आकर दुख का अंत करने में समर्थ होता है। वह काम-राग और व्यापाद के सम्पूर्णतः प्रहाण और दूसरी भूमि को पाने के लिए साधना करता है। वह इन्द्रिय, बल, बोध्यंग को मिलाकर उन्हीं संस्कारों को अनित्य, दुख,

अनात्म हैं—ऐसे ज्ञान से परिवर्तित करता है, विपश्यना की वीथि का अवगाहन करता है।

उसे ऐसे प्रतिपन्न होते हुए उक्त प्रकार से ही संस्कारोपेक्षा के अंत में एक आवर्जन से अनुलोम, गोत्रभू ज्ञानों के उत्पन्न होने पर, गोत्रभू के पश्चात् **सकृदागामी मार्ग** उत्पन्न होता है।

संगहो—963-64; विशुद्धि मार्ग, द्वि.भा., पृ. 265; द्र.—पु.प.अ., पृ. 48

त्रिरत्न—बुद्ध, धर्म और संघ को बौद्ध धर्म में त्रिशरण माना जाता है, इनकी तीन शरणों को त्रिरत्न (तीन रत्न) भी कहा जाता है।

दीपंकर—जातक कथाओं की निदान कथा के अनुसार प्रत्येक बुद्धों की परम्परा में दीपंकर प्रथम प्रत्येक बुद्ध (पच्चेक बुद्ध) हुए हैं। इनकी जन्मभूमि 'रम्मवती' नामक नगरी थी पिता का नाम सुदेव खत्तिय और माता का नाम सुमेधा था। दीपंकर बुद्ध के 'सुमंगल' और 'तिस्स' नाम के दो शिष्य थे। सागत नाम का उनका उपस्थाक था। नंदा और सुनंदा नाम की इनकी दो शिष्याएं थीं। इनको भी पीपल के पेड़ के नीचे ही बोधि प्राप्त हुई थी। इनका शरीर भी लंबा-चौड़ा और परिनिर्वाण के समय आयु भी बहुत अधिक थी।

देवदत्त—एक देवदहवासी कोलिय कुमार—यह कुमार आनंद आदि शाक्य कुमारों के साथ भगवान बुद्ध के पास जाकर उनका शिष्य हुआ था। प्रव्रज्या ग्रहण कर वह भिक्खुसंघ पर अपना अधिकार जमाना चाहता था। और उसने भगवान बुद्ध से संघ के भिक्खुओं के लिए अनेक कठिन नियम निर्धारण करने के लिए अनुरोध किया, पर भगवान बुद्ध ने उस पर न तो स्वीकृति दी और न उसे संघ का उपनायक ही माना। इसके परिणामस्वरूप वह कुछ भिक्खुओं को बहकाकर अपने साथ लेकर अपना एक अलग संघ बनाकर भगवान बुद्ध के समय ही में अलग हो गया। उन लोगों के नियम बौद्ध भिक्खुओं से कुछ अधिक कठोर थे। देवदत्त ने अजातशत्रु को अपने कहने में कर लिया था और यह भी संभव जान पड़ता है कि उसने ही अजातशत्रु को भड़का कर उससे उसके पिता

बिम्बिसार को जेल में डलवा दिया। देवदत्त को भय था कि बिम्बिसार भगवान बुद्ध का श्रद्धासंपन्न अनुयायी था और उसे बिना सत्ता से हटाए भगवान बुद्ध को कष्ट पहुंचाने का अवसर प्राप्त न होगा। अजातशत्रु को भड़काकर उसने अनेक बार भगवान बुद्ध के प्राण लेने का षड्यंत्र रचा था। उसने नालागिरि हाथी को उनके मारने के लिए छुड़वाया और धनुर्धरों को उनके तीर से मारने के लिए भिजवाया, पर भगवान बुद्ध का बाल भी बांका न हुआ। गृध्रकूट पर चंक्रमण करते समय एक बार उसने खुद उन पर पत्थर भी फैंका था जिससे उनके पैर का अंगूठा जख्मी हो गया था। वह सप्तपर्णी गुफा के पास रहता था और अंत समय में प्रायश्चित करने के उद्देश्य से श्रावस्ती में भगवान बुद्ध के पास गया था। पालि ग्रंथों का मत है कि वह क्षमा प्रार्थना करने के लिए जाते समय श्रावस्ती में एक तालाब में नहाने के लिए उतरा और वहीं दलदल में समा गया, पर फाह्यान ने लिखा है कि वह अपने नख में विष पोत भगवान बुद्ध के प्राण लेने के लिए गया था और धरती में समा गया। देवदत्त के कुछ अनुयायी फाह्यान के काल तक थे। वे अन्य तीन बुद्धों को तो मानते थे, पर शाक्यसिंह बुद्ध को नहीं मानते थे।

धर्मवर्द्धन—अशोक के एक पुत्र का नाम जो फाह्यान के कथनानुसार गांधार का शासक था।

धातु—भगवान बुद्ध, बुद्ध व किसी अर्हत के दाह-संस्कार के पश्चात जो फूल (अस्थियां) बचती हैं उन्हें बौद्ध धर्म में शरीर-धातु, भस्म व अस्थि कहते हैं।

नंद—महाराजा सुद्धोदन की दो पत्नियां थीं। महामाया और प्रजापति। महामाया से सिद्धार्थ का जन्म हुआ था और प्रजापति गौतमी से कुमार नंद का। इस कारण कुमार नंद, सिद्धार्थ के विमातृ (सौतेले) भाई थे। सिद्धार्थ के जन्म के समय नंद प्रजापति के गर्भ में थे। महामाया की मृत्यु के पश्चात माता का लाड-प्यार और संरक्षण सिद्धार्थ को प्रजापति गौतमी ने ही दिया था। नंद भगवान से कद में चार इंच

छोटा था। कुछ समय बाद जब नंद का जन्म हुआ तो प्रजापति ने अपने पुत्र को दाइयों को सौंप कर कुमार सिद्धार्थ का पालन-पोषण खुद ही किया था। बुद्धत्व प्राप्ति के अगले वर्ष जब भगवान बुद्ध अपने पिता के बुलावे पर कपिलवस्तु पधारे तो उसी दौरान एक दिन कुमार नंद का जनपद कल्याणी के साथ विवाह, राज्याभिषेक और गृहप्रवेश का कार्यक्रम था। महाराजा सुद्धोदन ने इस अवसर पर आशीर्वाद देने के लिए भगवान बुद्ध को भी बुला लिया। भगवान बुद्ध वहां आए तो सही मगर नंद को एक प्रकार से विवाह-मण्डप से उठाकर ले गए और उन्हें प्रव्रज्या देकर (भिक्खु बनाकर) अपने विशाल भिक्खुसंघ में शामिल कर लिया।

भगवान की पवित्रवाणी में भिक्खु श्रावकों में 37वां स्थान प्राप्त कर शाक्यकुलभूषण, कपिलवस्तु क्षत्रिय कुलोत्पन्न, महाप्रजापति गौतमी पुत्र नंद जितेन्द्रियों में अग्र हुए।

***निकाय*—पांच निकाय**—सुत्त-पिटक के ग्रंथों को पांच निकायों में विभक्त करने में सुत्तों के विषय का नहीं, किंतु उनके आकार-प्रकार का विचार किया गया है। लंबे-लंबे सुत्तों का संग्रह करके उसका नाम **'दीघनिकाय'** रखा गया। उसी तरह, मध्यम प्रमाण के सुत्तों के संग्रह को **'मज्झिम निकाय'** तथा छोटे-छोटे सुत्तों के संग्रह को **'खुद्दक निकाय'** कहा। कुछ छोटे-बड़े दोनों प्रकार के सुत्तों के संग्रह का नाम **'संयुत्त निकाय'** रखा गया। संयुत्त निकाय में पांच वर्ग हैं—1. सगाथ वर्ग, 2. निदान वर्ग, 3. स्कंध वर्ग, 4. षडायतन वर्ग और 5. महावर्ग। इसी निकाय के भीतर वर्गों का विभाजन विषय की दृष्टि से किया गया है। दूसरे निकायों में भाग या वर्ग का विभाजन विषय की नहीं, किंतु सुत्तों के आकार की ही दृष्टि से किया गया है।

एकक निपात, द्विक निपात, तिक निपात आदि **अंगुत्तर निकाय** में ग्यारह निपात हैं। एक-एक धर्म बताने वाले सुत्त एकक निपात में, दो-दो धर्म बताने वाले सुत्त द्विक निपात में—तथा ग्यारह-ग्यारह धर्म बताने वाले सुत्त एकादस निपात में हैं। जैसे—

एकक निपात

नाहं भिक्खवे अञ्ञं एकधम्मम्पि समनुपस्सामि, यो एवं महतो अनत्थाय संवत्तति, यदिदं भिक्खवे पापमित्तता। पापमित्तता भिक्खवे महतो अनत्थाय संवत्तति।''

अर्थात—भिक्खुओ! मैं किसी भी दूसरी चीज को नहीं देखता हूं, जो इतनी ज्यादा अनर्थकर हो, जितनी 'पाप मित्रता'। भिक्खुओ! पापमित्रता बहुत अनर्थकारी है।

द्विक निपात

"द्वे मे भिक्खवे, असनिया फलन्तिया न सन्तसन्ति। कतमे द्वे? भिक्खू च खीणासवो, सीहो च मिगराजा। इमे. खो भिक्खवे, द्वे असनिया फलन्तिया न सन्तसन्तीति।"

अर्थात—भिक्खुओ! बिजली कड़कने पर दो ही प्राणी चौंक नहीं पड़ते हैं। कौन से दो? क्षीणाश्रव भिक्खु और मृगराज सिंह। भिक्खुओ! यही दो बिजली कड़कने पर चौंक नहीं पड़ते। 1. क्षीणास्रव भिक्खु नहीं चौंक पड़ता है, क्योंकि उसका 'अहं-भाव' बिलकुल निरुद्ध हुआ रहता है। मृगराज सिंह नहीं चौंक पड़ता है, क्योंकि उसका 'अहं-भाव' अत्यंत प्रबल होता है; चौंकने के बदले वह और गरज उठता है कि कौन दूसरा उसकी बराबरी करने आ रहा है।

निग्रंथ—इसे 'नाथपुत्र' या 'नाटपुत्त' भी कहते हैं। यह एक कृषक का पुत्र था। जैनी लोग पार्श्वनाथ के अनुयायी को नाथपुत्त कहते हैं। यह प्रधान तैर्थियों में से एक था। फाह्यान का कथन है कि इतने भगवान बुद्ध को विषाक्त भोजन खिलाने के लिए आमंत्रित किया था। निग्रंथ का अर्थ निर्वस्त्र भी किया जाता है यानी बिना वस्त्रों के नंगे रहने वाले जैन मुनि (साधु)।

पंचशिखा—एक देव गंधर्व का नाम। इसे शक्र अपने साथ लेकर भगवान बुद्ध के पास 42 प्रश्न पूछने राजगृह में आया था और उसने 42 प्रश्न पृथ्वी पर एक-एक रेखा खींच कर किए थे।

पिसुन—मार का एक नाम। दे. मार।

प्रत्येक बुद्ध–गौतम बुद्ध से पूर्व 27 बुद्ध हो चुके हैं उन्हें प्रत्येक बुद्ध (पच्चेक बुद्ध) कहा जाता है। गौतम बुद्ध को 'सम्यक सम्बुद्ध' कहा जाता है। अर्थात बुद्धत्व प्राप्त ऐसा बुद्ध जो अपने बुद्धत्व का आनंद स्वयं भोगता रहे, पर उसका अन्य लोगों में प्रचार न करे, पर अन्यों को अपने ज्ञान का उपदेश न करे।

पसेनदि (प्रसेनजित)–कौशल राज्य के एक राजा का नाम। ये भगवान बुद्ध के समकालीन थे। इसकी भगवान बुद्ध के प्रति बहुत श्रद्धा और समर्पण था। भगवान बुद्ध ने इनके अनुरोध पर श्रावस्ती के कई विहारों में अधिक काल तक धर्मोपदेश किए थे। श्रावस्ती में ही भगवान ने सर्वाधिक यानी 45 में से 25 वर्षावास महाराजा पसेनदि की राजधानी श्रावस्ती में ही बिताए थे।

बुद्ध–बुद्धत्व प्राप्त करने वाला बोधिसत्व। बुद्ध दो प्रकार के होते हैं–(1) बुद्ध और (2) प्रत्येक बुद्ध। बुद्ध वह है जो बुद्धत्व (परम ज्ञान) प्राप्त कर समस्त संसार को धर्म का उपदेश करे। बुद्ध से पहले 27 प्रत्येक बुद्ध हो चुके हैं।

भगवान बुद्ध–गौतम बुद्ध व शाक्यमुनि का एक प्रचलित नाम।

बोधिसत्व–बुद्धत्व प्राप्ति के लिए कृत-संकल्प सत्त्व (प्राणी), बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व, पूर्व का सिद्धार्थ गौतम का परिचायक नाम। बुद्ध प्राप्ति के लिए बोधिसत्व अवस्था को प्राप्त करना आवश्यक है।

महाकाश्यप–भगवान बुद्ध के एक प्रधान शिष्य का नाम। यह राजगृह के पास महातीर्थ नामक गांव के रहनेवाले थे। इनके पिता का नाम कपिल था। इसका पूर्व नाम पिप्पल था। ये परम विद्वान थे। इन्हें भगवान बुद्ध ने अपने तीसरे वर्षावास में राजगृह में प्रव्रज्या ग्रहण कराई थी। सप्तपर्णी गुफा में भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण पर 500 भिक्खुओं के साथ महाराजा अजातशत्रु के संरक्षण में आयोजित प्रथम बौद्ध संगीति का इन्होंने अध्यक्ष पद संभाला था। इनके कुशल नेतृत्व में त्रिपिटक का प्रथम बार संगायन किया गया था। इनमें 32 महापुरुष लक्षणों में से 7 लक्षण विद्यमान थे। इन्हें भगवान बुद्ध के धुतवादी (धुतागंधारी) शिष्यों में अग्रणीय माना गया है।

महाप्रजापती–कुमार सिद्धार्थ (भगवान बुद्ध) की विमाता। यह महामाया की छोटी बहिन थी। इसी ने कुमार सिद्धार्थ का बाल्यावस्था में पालन-पोषण किया था। महाराज शुद्धोदन के देहांत हो जाने पर वह प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए भगवान बुद्ध के पास गई। भगवान बुद्ध ने स्त्रियों को प्रव्रज्या देने से साफ इंकार किया पर जब आनंद से अनुरोध किया तो उन्होंने उन सहित 500 शाक्य महिलाओं को प्रव्रज्या ग्रहण कराई थी। इसके एक ही पुत्र नंद नाम का था जिसे भगवान बुद्ध कपिलवस्तु में जाकर शुद्धोदन के जीवन काल ही में प्रव्रज्या देकर अपने साथ ले आए थे। इनकी एक पुत्री भी थी जिसका नाम 'नंदा' था। भिक्खुनीसंघ की प्रथम नायिका होने का गौरव प्राप्त हुआ।

महामौद्गल्यान–यह राजगृह के पास कोलित ग्राम का रहनेवाला सुजात नामक ब्राह्मण का पुत्र था। यह सारिपुत्र के साथ राजगृह में भगवान बुद्ध का शिष्य हुआ था। पहले यह संजय परिव्राजक का अंतेवासी था। यह सप्तपर्णी गुहा के प्रथम धर्मसंघ में महाकाश्यप के त्रिपिटक के संग्रह में सम्मिलित था। जब भगवान त्रयस्त्रिंश स्वर्ग में अपनी माता को अभिधर्म का उपदेश देने गए थे तो अनिरुद्ध ने इसी को उनके पास यह पूछने के लिए भेजा था कि अब और कहां उतरेंगे।

महिशासक–सर्वस्तिवाद निकाय के चार निकायों में से एक निकाय।

मुचलिंद (नाग जाति का व्यक्ति)–एक नाग का नाम। यह गया के पास ह्रद में रहता था। ह्रद के पास ही मुचलिंद का एक पेड़ भी था। भगवान बुद्ध बोधिज्ञान प्राप्त कर जब उस ह्रद के पास गए तो सात दिन तक मूसलाधार वर्षा हुई थी। उस समय इस नाग ने भगवान बुद्ध को अपने फन से सात दिन तक वर्षा से बचाकर रखा था।

मैत्रेय–ये एक बोधिसत्व हैं जो भविष्य के बुद्ध होंगे। ये इस समय तुषित स्वर्ग में हैं।

मोगल्लान–दे. महामौद्गल्यान।

योजन–यों तो पुराणों के अनुसार चार कोस व 8 मील का योजन होता है पर फाह्यान का योजन 6.5 मील का और सुएनच्वांग का योजन 4.5 मील से कुछ अधिक का पड़ता है।

राहुल–गौतमबुद्ध के पुत्र का नाम। इसे भगवान बुद्ध ने कपिलवस्तु पहुंचकर सारिपुत्र से प्रव्रज्या दिलवाई थी। यह वैभाषिक नामक दर्शन का आचार्य था। यह सामनेरों का अग्रगण्य और पूज्य माना जाता है।

ली–चीन देश का दूरी मापने का एक पैमाना जो एक मील के छठवां हिस्से के बराबर होता है।

वज्रपानि–मल्लराज-कुश नगर के राजा का नाम।

बिम्बिसार–मगध के एक राजा का नाम। ये बुद्ध के समकालीन राजा थे। इनकी राजधानी राजगृह (गिरिव्रज) थी। भगवान बुद्ध को इनसे बड़ा प्रेम था। इसके कारण भगवान बुद्ध राजगृह में प्रायः जाते रहते थे। अजातशत्रु इसका पुत्र था। वह वृद्धावस्था में उत्पन्न हुआ था। राजा बिम्बिसार ने एक और नगर राजगृह नामक गिरिव्रज से अलग बनाया था। जब अजातशत्रु बड़ा हुआ तो वह अपने पिता को बंदी करके स्वयं राज्य पर बैठा। राजा बिम्बिसार बंदीगृह में पड़ा बड़ी यातनाएं भोगकर गिरिव्रज में मरा। फाह्यान ने गिरिव्रज को प्राचीन राजगृह लिखा है और बिम्बिसार को उसका बसाने वाला लिखा है।

विनय–(1) आचार, सदाचार। (2) त्रिपिटक के तीन पिटकों में दूसरा पिटक है विनयपिटक, जिसमें भिक्खुओं के आचार-व्यवहार विधिव निषेधों का वर्णन है। विनयपिटक को भिक्खुसंघ का संविधान माना जाता है। दे. त्रिपिटक।

विमोक्ष स्तूप–ऐसा धम्म स्तूप जिसमें द्वार हो और उसमें यथासमय धातु रखी व उससे बाहर निकाली जा सके।

विडूडभ–यह श्रावस्ती के राजा प्रसेनजित का पुत्र था। यह शाक्यों की एक महिला वासभखत्तिया से उत्पन्न हुआ था। इसने शाक्यों पर आक्रमण किया था, पर भगवान बुद्ध उसे मार्ग में मिल गए थे और उन्होंने इसे लौटा दिया था। फिर कुछ दिन बीतने पर फिर उसने कपिलवस्तु पर आक्रमण किया और कपिलवस्तु के शाक्यों का संहार कर डाला। कपिलवस्तु में विनाशलीला करने के बाद श्रावस्ती लौटते समय वह अपनी सेना सहित नदी किनारे सोते हुए बह गया। विडूडभ को विरुद्धक कहना सरासर गलत है।

विशाखा–इसे महाप्रज्ञावती विशाखा भी कहते हैं। यह प्रसेनजित (पसेनदि) के कोषाध्यक्ष पुण्यवर्द्धन की स्त्री थी। इसने भगवान बुद्ध के लिए पूर्वाराम नामक एक विहार बनवाया था। यह बड़ी दानशील और प्रज्ञावती थी।

विहार–भिक्खुसंघ के रहने का स्थान। बौद्ध भिक्खुओं का विहार। इसे बुद्ध विहार या संघाराम भी कहते हैं। पर बुद्ध विहार को बौद्ध विहार कहना गलत है।

शक्र–एक काल्पनिक देवता इंद्र व देवराज। यह त्रयस्त्रिंश लोक का राजा है। यह चातुर्महाराज के अंतर्गत भी है। दे. त्रयस्त्रिंश।

शाक्यमुनि–गौतमबुद्ध के बहुत से नाम हैं। उनमें से एक नाम शाक्यमुनि भी है। शाक्य जाति में उत्पन्न एक महान मुनि।

श्रमण–बौद्ध भिक्खु जिसने प्रव्रज्या ग्रहण की हो।

स्रोतापन्न–वह उपासक, श्रावक अथवा भिक्खु जो निर्वाण की ओर उन्मुख है। चार प्रकार के श्रावकों में प्रथम श्रेणी का श्रावक।

संघाटी–भिक्खु के चीवर के तीन भाग होते हैं। यथा–1. अन्तरवासक (=लुंगी), 2. उत्तरासंग (=चादर), और 3. संघाटी (=दोहरी चादर)। वर्षा के अंत में यानी कार्तिक पूर्णिमा के दिन उपासकों द्वारा भिक्खुओं को संघाटी दान में दी जाती है। कारण यह कि इस समय से सर्दी के मौसम की शुरुआत हो जाती है। इस संघाटी को भिक्खुसंघ अपनी ओर से किसी सम्मानित भिक्खु को देता है। इसी चीवर को कठिन चीवर भी कहते हैं, क्योंकि इसकी प्राप्ति बहुत कठिन है। (विनयपिटक, 20-47, पृ. 79, सम्यक प्रकाशन)

सकृदागामी–वह श्रावक जो शीघ्र अनागामी व अर्हत होनेवाला हो। वह श्रावकों में दूसरी श्रेणी है।

सप्तरत्न–1. सोना, 2. चांदी, 3. मरकत, 4. हीरा, 5. मणि, 6. पद्मराग और 7. स्फटिक।

सर्वास्तिवाद–बौद्ध धर्म के चार प्रधान निकायों में से एक निकाय। इसके चार आवांतर निकाय थे। थेरवाद, वज्जिपुत्रक, महिसासक और धर्मगुप्तिक।

साबी–अर्बी सावन। इसे अंग्रेजी में (Sabian) कहते हैं। अरब देशवासी।

सामनेर (श्रामनेर)–बौद्ध ब्रह्मचारी जिसने विधिवत प्रव्रज्या ग्रहण न की हो।

सूत्र–बुद्ध वचन को पालि भाषा में सुत्त और हिंदी में 'सूत्र' कहते हैं। त्रिपिटक में सूत्रों का ही संग्रह है।

सारिपुत्र–भगवान बुद्ध के एक प्रमुख शिष्य का नाम। यह उपतिष्य ग्राम निवासी वंगन्त नामक ब्राह्मण का पुत्र था। भगवान बुद्ध का यह परम विश्वासपात्र भिक्खु था, इस कारण इन्हें 'धम्म सेनापति' भी कहा जाता था। भगवान बुद्ध के जीवन काल ही में इनका परिनिर्वाण अपने गांव के घर में ही हुआ था।

सुदत्त–इन्हें अनाथपिण्डिक भी कहते थे। उनका यह नाम अनाथ लोगों को पिण्ड (भोजन) का दान कराते रहने के कारण पड़ा था। यह श्रावस्ती का एक धनाढ्य सेठ और महाराजा प्रसेनजित (पसेनदि) का खजांची था। इसने 54 करोड़ ,स्वर्ण मुद्रा खर्च करके जिसमें 18 करोड़ जमीन मूल्य, 18 करोड़ निर्माण खर्च, 18 करोड़ उद्‌घाटनोत्सव खर्च सम्मिलित है। श्रावस्ती में जेतवन विहार बनवाया था। जेतवन की भूमि को उसने सारी पृथ्वी पर मोहर बिछाकर खरीदा था। भगवान बुद्ध को यह विहार बहुत प्रिय लगता था। सुदत्त बहुत दानशील था।

सुभद्र–भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के समय सुभद्र नामक एक परिव्राजक कुसिनारा (कुशीनगर) में ठहरा हुआ था। उसने जब यह सुना कि आज रात के अंतिम पहर में भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण हो जाएगा। तब उसके मन में आया कि मैंने बड़े-बड़े आचार्यों और ज्ञानवान लोगों को यह कहते सुना है कि बुद्ध जैसा पूर्ण ज्ञानी महापुरुष न पहले कोई पैदा हुआ है और न आगे होगा। मेरे मन में धर्म के विषय में कुछ संशय है। मुझे विश्वास है कि भगवान बुद्ध अपने परम ज्ञान के द्वारा मेरे संशयों को दूर कर देंगे। ऐसा विचार कर सुभद्र मल्लों के शालवन में पहुंचकर आनंदथेर के निकट जाकर बोला, "भंते! मुझे पता चला है कि भगवान बुद्ध आज ही रात्रि के पिछले पहर में परिनिर्वाण को प्राप्त होंगे। मुझे धर्म के विषय में कुछ संदेह है। मैं भगवान बुद्ध के दर्शन करके उनसे अपना संदेह दूर करना चाहता

हूं।" यह सुनकर भिक्खु आनंद बोले, "नहीं सुभद्र अब नहीं, भगवान को अब कष्ट मत दो। वह परिनिर्वाण शय्या पर हैं और विश्राम कर रहे हैं।" सुभद्र ने दूसरी और तीसरी बार भी अपनी बात दोहराई। तीनों बार आनंद ने सुभद्र को एक ही उत्तर दिया।

भगवान लेटे-लेटे ही आनंद थेर और सुभद्र परिव्राजक के बीच की बातचीत को सुन रहे थे। जिस महापुरुष ने 45 वर्षों तक अखिन्न चित से लोगों के लिए धम्म-अमृत की वर्षा की हो, वह अन्तिम समय में अपनी महान करुणा को कैसे भूल सकते हैं। भगवान बुद्ध ने आनंद को बुलाकर कहा, "आनंद! सुभद्र को तथागत के पास आने से मत रोको। सुभद्र हमसे जो पूछेगा वह केवल सत्य को जानने की इच्छा से ही पूछेगा, हमें कष्ट देने के उद्देश्य से नहीं। उसके पूछने पर हम जो कुछ उसे समझा देंगे, वह बहुत जल्दी समझ जाएगा।" तब आनंद ने सुभद्र के पास जाकर कहा, 'सुभद्र! अब तुम भगवान बुद्ध के पास जा सकते हो। भगवान तुमको बुला रहे हैं।' तब सुभद्र परिव्राजक भगवान बुद्ध के निकट जाकर प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए सुभद्र ने भगवान बुद्ध से हाथ जोड़कर प्रश्न किया, 'भगवान! ये जितने भी धर्म-गुरु हैं, जिनके पीछे समूह हैं, जो प्रसिद्ध हैं, जो धर्मों के संस्थापक के रूप में ज्ञात हैं, जिन्हें जनता संत मानती है। जैसे पूरणकस्सप, मक्खलिगोसाल, अजित केसकम्बली, पकुध कच्चायन, सञ्जयबेलट्ठीपुत्त तथा निगण्ठ-नाथपुत्त (महावीर) इन सब ने जैसा वे कहते हैं कि उन्होंने सत्य ज्ञान प्राप्त किया है। भगवान क्या ये सभी आचार्य सत्य ज्ञान के जानकार हैं। या इनमें से कोई जानकार है और कोई-कोई नहीं।'

भगवान बुद्ध बोले, 'सुभद्र! इस चक्कर में मत पड़ो कि किसी ने ज्ञान प्राप्त किया है या नहीं किया। मैं तुम्हें सच्चे धर्म का उपदेश देता हूं। इसे ध्यान से सुनो।"

'भगवान बहुत अच्छा'।

तब भगवान ने कहा, "सुभद्र! जिस धम्म विनय में आष्टांगिक मार्ग नहीं है; उसमें कोई सत्य ज्ञान प्राप्त आचार्य भी नहीं है। जिस धम्म

विनय में आष्टांगिक मार्ग है, उसी धम्म में सत्य ज्ञान प्राप्त आचार्य भी हैं। सुभद्र मेरे धर्म का मार्ग आष्टांगिक मार्ग है। इसलिए मेरे धर्म में श्रमण भी हैं, स्रोतापन्न भी हैं और अर्हत भी हैं। सुभद्र उन्तीस वर्ष की आयु में मैं कल्याण पथ का पथिक बना। अब पचास वर्ष से अधिक हो गए हैं, जब से मैं धम्म (सच्चे धर्म) का पक्ष ग्रहण किए हुए हूं।"

भगवान बुद्ध के उपदेश को सुनकर सुभद्र बोला, 'भगवान! आपके मुखारविन्द से धम्म उपदेश सुनकर मेरे ज्ञान-नेत्र खुल गए हैं। आपने मुझे सत्य का ज्ञान करा दिया। इसलिए मैं आपके धम्म की शरण ग्रहण करता हूं।' इसके बाद भगवान बुद्ध ने भिक्खुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्खुओ! हो सकता है कि तुम यह सोचने लगो कि अब हमारे गुरु चले गए। अब हमारा कोई मार्ग-दर्शक नहीं रहा। तुम्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए। मेरे बाद मेरा दिया हुआ धम्म ही तुम्हारा शास्ता होगा और वही मेरा उत्तराधिकारी होगा। भिक्खुओ! यदि तुम में से किसी को भी बुद्ध, धम्म, संघ इन तीनों के विषय में कोई शंका हो, तो अभी समय है, पूछ लो। बाद में न पछताना कि हमारा धर्मगुरु हमारे सम्मुख था, हमने पूछकर अपनी शंका न मिटाई।" ऐसा कहने पर भी भिक्खु चुप रहे। तब दूसरी बार और तीसरी बार भी भगवान बुद्ध ने अपनी बात दोहराई, फिर भी भिक्खु मौन ही रहे। तब भगवान बुद्ध ने कहा, "हो सकता है कि मेरे प्रति सम्मान होने के कारण तुम चुप हो। निडर होकर पूछो।" तब भी भिक्खु चुप ही रहे। तब भिक्खु आनंद ने भगवान बुद्ध को कहा, "भगवान यह कैसी अद्भुत और आश्चर्यजनक बात है कि आप अपने इस भिक्खुसंघ से ऐसी बात कहते हैं। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इस भिक्खुसंघ में ऐसा कोई एक भी नहीं है, जिसे बुद्ध के बारे में शंका हो, धम्म के बारे में शंका हो और संघ के बारे में शंका हो।"

इसके बाद भगवान बुद्ध ने भिक्खु आनंद थेर को कहा, "आनंद! यदि मेरे जाने के बाद कोई छोटा-मोटा नियम जो बुद्ध धम्म और बुद्ध के अनुयायियों के लिए हानिकारक सिद्ध हो तो उसका सुधार भी किया जा सकता है और आनंद! चुन्द अथवा अन्य किसी को यह ख्याल न हो कि चुन्द का भोजन खाने के कारण भगवान बुद्ध का

परिनिर्वाण हो गया। तुम इस बात का पूरा ख्याल रखना कि जनता में यह बात न फैलने पाए। क्योंकि इससे चुन्द मुसीबत में पड़ सकता है। इसके बाद भगवान बुद्ध ने सभी को संबोधन करके अपने अंतिम वाक्य बोले, **"समस्त संयोग और संयोगों से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं का वियोग और विनाश अवश्य होता है। तुम लोग सचेत और एकाग्र-चित्त होकर अपने-अपने लक्ष्य की प्राप्ति करो।"** इस प्रकार संसार के सर्वोपरि महान धर्मगुरु अपनी अंतिम अवस्था में अपने शिष्यों को अंतिम उपदेश देकर इस संसार से अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर गए। इस प्रकार संसार का वह दीप (भुवन-प्रदीप) बुझ गया।

सुरंगमसूत्र–इसे सुरंगम-समाधि-सूत्र भी कहते हैं। यह महायान के सूत्रपिटक में सूत्र के अंतर्गत है।

स्तूप–एक घंटाकार भवन। यह दो प्रकार का होता है। एक वह जिसमें अवकाश खाली होता है और भीतर जाने का मार्ग होता है। इसे 'विमोक्ष स्तूप' कहते हैं। दूसरा वह जिसमें भीतर जाने का मार्ग नहीं होता यानी अंदर से ठोस होता है। दोनों के भीतर धातुगर्भ होता है। द्वितीय प्रकार का स्तूप भगवान बुद्ध व अर्हतों के परिनिर्वाण स्थान व उनके जीवन से संबंधित घटनास्थलों पर बनता है। परिनिर्वाण स्थान के स्तूप में प्रायः शरीर-धातु रखे होते हैं और शेष स्थानों में धातु नहीं होते। स्तूप भीतर गर्भ में धातुओं को रखकर उनके ऊपर स्तूप बनाया जाता है। इन्हें चैत्य भी कहते हैं।

॥भवतु सब्बमंगलं॥

सम्यक प्रकाशन : एक परिचय

सम्यक प्रकाशन भगवान बुद्ध और उनके द्वारा स्थापित बौद्ध धर्म, बोधिसत्व बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आंबेडकर, महान सम्राट अशोक तथा देश के अन्य सामाजिक क्रांतिकारियों, समाज सुधारकों व उन महान विभूतियों से सम्बंधित साहित्य के प्रकाशन एवं उनके मिशन के व्यापक प्रचार-प्रसार और पुनर्स्थापन को समर्पित है। यह प्रकाशन सस्ते और रियायती मूल्य पर मूल्यवान, दुर्लभ एवं सचित्र साहित्य उपलब्ध कराता है। अब तक सम्यक प्रकाशन द्वारा 14 भाषाओं में 2000 से अधिक छोटी-बड़ी महत्वपूर्ण पुस्तकें बौद्धाचार्य शांति स्वरूप बौद्ध प्रकाशित की जा चुकी हैं। समाज के प्रमुख क्रांतिकारियों एवं समाज-सुधारकों के जीवन के विभिन्न पहलुओं को दृष्टिगत रखते हुए सरल भाषा में सचित्र पुस्तकें तैयार करने में इस प्रकाशन का बहुत बड़ा योगदान है। इसकी स्थापना विश्व प्रसिद्ध चित्रकार बौद्धाचार्य शांति स्वरूप बौद्ध ने की है, जो सरकारी राजपत्रित पद को तिलांजलि देकर सांस्कृतिक, कलात्मक, साहित्यिक सामाजिक क्रांति की सफलता के लिए अपने जीवन और समस्त साधनों सहित पूर्णतः समर्पित हैं।

सम्यक प्रकाशन का संपादक मंडल प्रतिष्ठित एवं जनप्रिय विद्वानों से युक्त है, जो उचित जांच-परख और समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पुस्तकों का चयन व प्रकाशन का अनुमोदन करता है। सम्यक प्रकाशन की विगत वर्षों में बौद्ध तथा आंबेडकरी साहित्य के अनेक महत्त्वपूर्ण अमूल्य ग्रंथों के प्रकाशन में प्रमुख भूमिका उल्लेखनीय है। भविष्य में भी यह प्रकाशन अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण समर्पित रहेगा। नारी कल्याण व समाज को अंधविश्वास, ढोंग और पाखंड के चंगुल से निकालने हेतु शीर्ष स्तरीय लोकोपयोगी साहित्य के प्रकाशन के लिए सम्यक प्रकाशन पूर्णतः कटिबद्ध है।

सम्यक प्रकाशन बौद्ध साहित्य, इतिहास एवं संस्कृति से सम्बद्ध साहित्य को गौरवशाली ढंग से प्रकाशित करने के लिए प्रयासरत है। वास्तव में इस प्रकाशन द्वारा प्रकाशित साहित्य इस देश के दलित, शोषित, प्रताड़ित, वंचित एवं महिला समाज के लिए एक वैकल्पिक मीडिया की भूमिका निभा रहा है। हर्ष का विषय यह है कि इस प्रकाशन द्वारा प्रकाशित अनेक ग्रंथ राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा पुरस्कृत किए जा चुके हैं। बेरोजगार युवकों को साहित्य की बिक्री के माध्यम से रोजगार उपलब्ध कराना परम ध्येय है।

सम्यक प्रकाशन

32/3, पश्चिम पुरी, नई दिल्ली—110063

फो. : 9810249452, 9818390161

Email : hellosamyak1965@gmail.com

Web : www.samyakprakashan.in

ISBN : 978-93-89285-07-9

₹ 250

सम्यक प्रकाशन द्वारा चीनी यात्रियों पर प्रकाशित अन्य पुस्तक

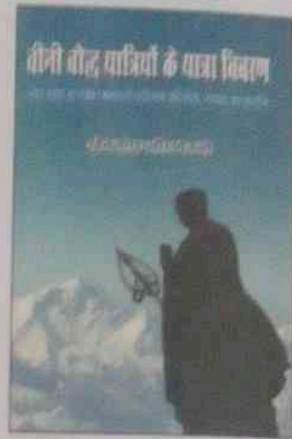

₹ 350

₹ 200

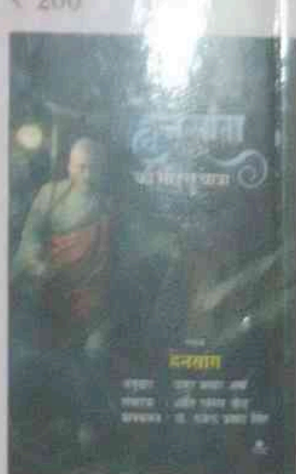

₹ 475

₹ 375